श्री सप्तशती गीता
(दुर्गा)

मन्त्र, अन्वय, हिन्दीभावार्थ तथा
भाव-महिमा-प्रकाशिनी टीका सहित।

"অঞ্জলি"

মা

মা,

নূতন পথে - যাত্রা - আমার -
এই-যে সুরু হ'লো,
আমায় - এ - অজানা - পথে -
কভু যদি ঘনিয়ে আসে কালো
তোমার - উজল আশিষ ধারায়
তোমার - জ্ঞানের - দীপ্ত - শিখায়
আঁধার পথে ছড়িয়ে দিও আলো।-

দেবী-যে তুমিই আমার -
আমার - ভগবান -
স্বর্গ আমার - ধর্ম্ম - আমার -
উপাস্য - মোর - তুমিই মূর্ত্তিমান -। -

মোর - যাত্রা কালের শুভক্ষণে -
তোমার - দুটি শ্রীচরণে -
লুটিয়ে পড়ুক - সকল প্রণাম
অসীম ভক্তি-ভরে -
অঞ্জলি লও ফুলেরি - মোর -
চরণপদ্ম পরে -। -"

শ্রী বীরেন্দ্রনাথ বন্দ্যোপাধ্যায়

श्री जगन्मात्रे नमः

वाणी-पुस्तक-माला संख्या ३

श्री सप्तशती गीता

(दुर्गा)

मंत्र, अन्वय, हिन्दी मन्त्रार्थ तथा मातृमहिमा-प्रकाशिनी

टीका–सहित

द्वितीय संस्करण
२०००
सं० १९९८

सन् १९४१

मूल्य
साधारण जिल्द १)
कपड़ेकी जिल्द १।)

श्रीमती विद्यादेवी-
द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित
श्री वाणी-पुस्तक-माला कार्यालय,
जगतगंज, बनारस ।

मुद्रक—
कृ० ब० पावगी,
हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, बनारस ।

श्री जगन्मात्रे नमः

दूसरे संस्करणकी प्रस्तावना ।

परम करुणामयी श्री जगदम्बाकी असीम कृपासे दुर्गा सप्तशतीका यह दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। इसका पहला संस्करण प्रायः दश वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था। अपनी विशेषताके कारण इसको जनताने बड़े प्रेमसे अपनाया। क्योंकि हिन्दी भाषामें दुर्गा सप्तशती गीताका ऐसा कोई संस्करण अबतक प्रकाशित नहीं हुआ था, जिसमें सर्व-साधारणके समझ सकनेके योग्य सरल अन्वय एवं अन्वयार्थ दिया गया हो। इसके अतिरिक्त इसकी टीका भी अपने ढङ्गकी अद्वितीय है, जिसके द्वारा जिज्ञासु दुर्गा सप्तशतीके गूढ़ आध्यात्मिक अधिदैविक तथा आधिभौतिक त्रिविध रहस्योंको समझ सकें। सब श्रेणीके व्यक्ति इससे लाभ उठा सकें, इसलिये इसका मूल्य भी बहुत ही कम केवल लागतमात्र ही रखा गया था, परन्तु दुर्दैववश जनता उस प्रथम संस्करणसे विशेष लाभ नहीं उठा सकी; क्योंकि छपनेके बाद ही वह एक कम्पनीको कमिशनपर विक्रीके लिये दिया गया। दुर्भाग्यवश उस कम्पनीके फेल हो जानेसे इसके प्रचार और विक्रीका काम बन्द हो गया। वे पुस्तकें भी वापस नहीं मिलीं; परन्तु जनताकी माँग बराबर जारी रही। इस कारण अब यह दूसरा संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण प्रकाशित किया गया। प्रथम संस्करणमें कई अनिवार्य्य कारणोंसे जो त्रुटियाँ रही थीं, उनको इस दूसरे संस्करणमें दूर कर दिया गया है। टीकामें भी स्थान-स्थान पर जहाँ आवश्यक था, विशेष स्पष्टीकरण किया गया है।

गीताग्रन्थोंमें जिस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता ज्ञानकाण्डका सर्वोपयोगी और लोकप्रिय ग्रन्थ है, वैसे ही दुर्गासप्तशती उपासनाकाण्ड और कर्म-काण्डमें सर्वोपयोगी, प्रत्यक्ष फलदायक एवं लोक-प्रिय है। यही कारण है कि, लाखों-लाखों मनुष्य नित्य श्रद्धापूर्वक इसका पाठ और अनुष्ठा-नादि करते हैं। इस प्रचण्ड कलि-कालमें भी दैवजगत्का प्रत्यक्ष करानेवाला एवं प्रत्यक्ष-फल-प्रद यदि कोई ग्रन्थ है, तो वह दुर्गा-सप्तशती गीता ही है। इसी कारण सप्तशती गीताका माहात्म्य असा-धारण और सर्ववादी-सम्मत है। समाधिगम्य सब विषय ही त्रिभावा-त्मक होते हैं, क्योंकि यही उनकी पूर्णताका परिचायक है। किन्तु आज तक किसी भाषामें दुर्गासप्तशतीकी ऐसी टीका प्रकाशित नहीं हुई थी कि, जिसमें इसके विज्ञानका अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतरूपी त्रिविध-स्वरूप विस्तारपूर्वक प्रकाशित किया गया हो। ऐसी टीकाके अभावसे इस उपनिषद्-ग्रन्थकी आध्यात्मिक महिमा तथा ज्ञानकाण्ड-मेंकी इसकी उपयोगिता अब तक लुप्तप्राय ही थी। योग-तपो-निष्ठ परमाराध्य परमपूज्यपाद श्रीगुरुदेवने अपनी अहेतुकी दयासे इसपर मातृ-महिमा-प्रकाशिनी नाम्नी टीका लिखवानेकी कृपा की थी जिससे समय पाकर यह बड़ा भारी अभाव भी दूर हो गया। शान्त-चेता सुधिगण अनायास ही समझ सकेंगे कि, विना योगयुक्त अन्तः-करण और जगन्नियन्त्री जगदम्बाकी पूर्ण कृपा हुए ऐसी टीका प्रका-शित नहीं हो सकती है। इस अपूर्व टीकाके द्वारा संसारमें दैवजगत् पर विश्वास एवं श्रद्धाकी वृद्धि, राजसिक अन्तःकरणमें श्रीदुर्गासप्तशती गीताकी महिमाकी स्थापना और कर्मकाण्ड एवं उपासनाकाण्डमें उपयोगिताके साथ ही साथ ज्ञानकाण्डमें भी इस मन्त्र-ग्रन्थकी उपयोगिता प्रमाणित होगी। सप्तशतीगीताका त्रिविध स्वरूप प्रकाशित

करनेके लिये भूमिका और कर्मकाण्ड एवं उपासनाकाण्डकी सहायताके लिये परिशिष्ट भी दिया गया है। आशा है, इससे, सर्वसाधारणका विशेष कल्याण-साधन होगा।

दुर्गासप्तशतीके इस दूसरे संस्करणके प्रकाशनका मंगलमय श्रेय परमधार्मिका परमसौभाग्यवती धर्मसावित्री **श्रीमती लक्ष्मीरानी काटजू महोदया धर्मपत्नी श्रीमान् पं० कैलाशनाथ काटजू महोदय एम. ए. एलएल. बी, एडवोकेट इलाहाबाद एवं भूतपूर्व न्यायमन्त्री यू. पी. गवर्नमेण्टको** है। श्रीमतीका जैसा नाम है, गुण भी उसके अनुरूप ही है। श्रीमतीका सुन्दर सौम्य स्वभाव, स्वधर्मप्रेम, कर्त्तव्यनिष्ठा और सभी पुण्यकार्य्योंमें सहायता देनेकी प्रवृत्ति अन्य गृह-देवियोंके लिये अनुकरणीय है। श्रीमतीके ही आर्थिक दानसे यह संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इस उदारताके लिये श्रीमती समग्र हिन्दूजातिकी धन्यवादार्ह एवं कृतज्ञताकी भाजन हैं। श्रीजगदम्बा श्रीमतीके श्री-सौभाग्यकी अभिवृद्धि करें, आध्यात्मिक उन्नति करें और सब प्रकारका अभ्युदय करके श्रीमतीको धर्मकार्य्यमें यशस्विनी बनावें यही प्रार्थना है।

गुरुपूर्णिमा
काशीधाम सम्वत् १९९८

विद्यादेवी

❀ श्री दुर्गादेव्यै नमः ❀

भक्ति-पुष्पाञ्जलि

हिन्दूजातिके इस घोर दुर्दिनमें, करालकलिके इस दुर्दमनीय प्रवाहके विरुद्ध अपने सब सुख-स्वार्थोंकी तिलाञ्जलि देकर चिरन्तन वर्णाश्रम-धर्मकी अस्तित्वरक्षाके लिये दृढव्रत हो जो अतिधीर, गम्भीर और निश्चलभावसे तत्पर हैं, आर्य्यजातिकी गौरव-रक्षा और सनातनधर्मकी मर्य्यादा-रक्षाके लिये इस वार्द्धक्यावस्थामें भी चिरयुवककी तरह जिनका अनवरत, अक्लान्त परिश्रम है, चिर प्रसिद्ध धर्म और जातीय नौकाको डूबते हुए देख, उसके बचानेके लिये, जिन्होंने युवावस्थामें ही अपने प्रचुर ऐश्वर्य्यों, वैभवों, विभूतियों एवं सब सुखोंपर लात मारकर कठिन यति-व्रतको ग्रहण किया है, जिनकी उग्र तपस्या, कठोर संयम और अखण्ड ब्रह्मचर्य्यके प्रभावसे काल भी नतमस्तक है, जिनकी अतुलनीय असाधारण प्रतिभा एवं अद्भुत, असीम आध्यात्मिक ज्ञान-शक्तिके विलासरूप अनेक लुप्त दर्शन, संहितादि ग्रन्थरत्नसमूह प्रकाशित हो मोहमूर्च्छित, अज्ञान-जाल-विजड़ित, त्रिताप-जर्जरित, अगाध भवसागर-निमग्न जीवोंके लिये एकमात्र आश्रय और स्तम्भ स्वरूप है,

जिनकी उपस्थित प्रज्ञा और ऋषि-दुर्लभ प्रतिभाको देख बुद्धिमान तो मोहित होता ही है, शत्रु भी सिर झुकानेको बाध्य होता है, जिनकी द्वन्द्व-सहिष्णुता और उदारता अनुपमेय है, जो पुरुषोत्तम शिवके समान आशुतोष, विष्णुके समान बुद्धि एवं ज्ञानसम्पन्न और ब्रह्माके समान क्रियाशक्तिविशिष्ट हैं, जिनके श्रीमुखसे निःसृत सुधा-धारा जिज्ञासुओंके अज्ञान-तिमिरनाशके लिये प्राणमय दिवाकर-किरणरूप है, जिनके कमनीय-कान्तिमय सदा सुप्रसन्न मनोहर मुखमण्डलके ब्रह्म-तेजकी आभासे पाप-ताप लज्जित होकर दूर भागता है, जिनके अगाध कृपासिन्धुके बिन्दुमात्रसे मेरे समान अकिञ्चन भी धन्य होता है, यह मातृ-महिमा-प्रकाशिनी टीका जिनके ही मानस-सरोवरका विकसित सरोज है, उन्हीं योगेश्वरेश्वर परमाराध्यदेव श्रीगुरुदेव श्री १११०८ श्रीदेशिकेन्द्र श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य परमपूज्यपाद यतीन्द्र श्रीस्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज गुरुवर्य्यप्रभुके श्रीपादपङ्कजोंमें गंगाजलसे गंगापूजाके समान भक्ति-पुष्पाञ्जलिरूपसे यह ग्रन्थ समर्पित हो।

श्रीपादपद्माश्रिता।

अध्यायसूची

अध्यायसूची समाप्त।

टीकाकी विषयसूची

टीकाकी विषयसूची समाप्त ।

ओं तत्सत्।

श्रीसप्तशती गीता।

भूमिका।

देवि ! प्रपन्नार्तिहरे ! शिवे ! त्वं,
वाणीमनोबुद्धिभिरप्रमेया।
यतोऽस्यतो नैव हि कश्चिदीशः,
स्तोतुं स्वशब्दैर्भवतीं कदाचित्॥
त्वं निर्गुणाकारविवर्जिताऽपि,
त्वं भावराज्याच्च बहिर्गताऽपि।
सर्वेन्द्रियागोचरतां गताऽपि,
त्वेका ह्यखण्डा त्रिगुरद्वयाऽपि॥
स्वभक्तकल्याणविवर्द्धनाय,
धृत्वा स्वरूपं सगुणं हि तेभ्यः।
निःश्रेयसं यच्छसि भावगम्या,
त्रिभावरूपे ! भवतीं नमामः॥

त्वं सच्चिदानन्दमये स्वकीये,
ब्रह्मस्वरूपे निजविज्ञभक्तान् ।
तथेशरूपे च विधाप्य मात-
रुपासकान् दर्शनमात्मभक्तान् ॥
निष्कामयज्ञावलिनिष्ठसाधकान्,
विराट्स्वरूपे च विधाप्य दर्शनम् ।
श्रुतेर्महावाक्यमिदं मनोहरम्,
करोष्यहो "तत्त्वमसीति" सार्थकम् ॥ ❋

शक्तिमान् और शक्तिमें वस्तुतः अभेद है । शक्तिमान् और शक्तिकी पृथक् पृथक् सत्ता जब तक परोक्षानु-

---

❋ हे देवि ! हे प्रपन्नार्तिहरे ! हे शिवे ! तुम वाणी, मन और बुद्धिके अगोचर हो । इस कारण इस संसारमें ऐसा कोई नहीं है, जो शब्दद्वारा तुम्हारी स्तुति कर सकता हो । तुम आकाररहित, भावातीत, गुणातीत, अखण्ड, अद्वितीय, विभु और सब इन्द्रियोंके द्वारा अग्राह्य होनेपर भी अपने भक्तोंके कल्याणके अर्थ ही सगुणरूप धारण करके भावगम्य होकर उनको निःश्रेयस प्रदान करती हो । हे त्रिभावरूपिणि ! आपको प्रणाम है । तुम अपने ज्ञानी भक्तोंको सच्चिदानन्दमय ब्रह्मरूपमें दर्शन देकर, उपासक भक्तोंको ईश्वरी रूपमें दर्शन देकर और निष्काम यज्ञनिष्ठ भक्तोंको विराट्रूपमें दर्शन देकर "तत्त्वमसि" महावाक्यकी चरितार्थता करती हो ।

भूति अथवा अपरोक्षानुभूतिद्वारा प्रत्यक्ष की जाती है, तब तक यह मानना ही पड़ेगा कि, शक्तिमान्से शक्तिका प्राधान्य है। एक गायक जिसमें अलौकिक गायनशक्तिका विकाश है, उसकी अपेक्षा उसकी गायनशक्तिका आदर, उपयोग और महत्त्व अधिक पाया जायगा। वह गायक यदि अपनी गानशक्तिका प्रयोग करे, तो उसका दर्शन न करके भी उसकी मधुर शब्दमयी सृष्टिके विलासमें जगत् मुग्ध होता है, परन्तु वह जब अपनी शक्तिको अपनेमें अव्यक्त रखता हो, उस समय उसके स्वरूपको देखकर कोई भी मुग्ध नहीं हो सकता है। इसी कारण शक्ति-उपासनाका विस्तार, शक्ति-उपासनाका उपयोग और शक्ति-उपासनाका महत्त्व, पुराण, तन्त्र आदि शास्त्रोंमें अधिक पाया जाता है। वस्तुतः उपासना सगुण ब्रह्मकी होती है, जब तक द्वैतभान है, तभी तक उपासनाका सम्बन्ध रह सकता है, और द्वैतभान तभी तक रह सकता है, जब तक सगुणत्व है। इसी कारण वेद-सम्मत यावत् शास्त्रोंमें सगुण उपासनाका ही अधिक विस्तार है। सगुण उपासनाके पांच भेदोंमेंसे चित्भावआश्रयकारी विष्णु-उपासना, सत्भाव आश्रयकारी शिव-उपासना, भगवत्तेजका आश्रयकारी सूर्य्योपासना, भगवद्भावमयी बुद्धिका आश्रयकारी धीश-उपासना और भगवत्शक्तिका आश्रयकारी शक्ति-उपासना है। ब्रह्मानन्द-विलास-रूपी सृष्टिदशामें ब्रह्मपदसे घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाले चित्, सत्, तेज, बुद्धि और शक्ति, ये ही

पाँच हैं । चित्सत्ता जगत्को दिखाती है, सत्सत्ता जगत्के अस्तित्वका अनुभव कराती है, तेज जगत्को ब्रह्मकी ओर आकर्षण करता है, बुद्धि सत् ब्रह्म और असत् जगत्का भेद बताती है, और शक्ति, सृष्टि, स्थिति, लय करती हुई जीवको बद्ध भी कराती है तथा मुक्त भी कराती है । इसी कारण इन पाँचोंके अवलम्बनसे सगुण पंचोपासनाका विज्ञान निर्णीत हुआ है । उपासक इन्हीं पाँचोंके अवलम्बनसे ब्रह्मसान्निध्य प्राप्त करके अन्तमें ब्रह्म-सायुज्य प्राप्त कर लेता है । पंच उपासनाओंकी पाँच गीताएँ इसी कारण जगज्जन्मादिकारण मान कर ब्रह्मरूपसे अपने इष्टको निर्देश करती हैं ।

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डमय दृश्य-प्रपंच ब्रह्मशक्तिका ही विलास है । ब्रह्मशक्ति ही सृष्टि-स्थिति-लय करती है, वही अविद्या बनकर जीवको बन्धन-जालमें फँसाती है और विद्या बनकर उसको ब्रह्म-साक्षात्कार कराके मुक्त करती है; दूसरीओर ब्रह्मशक्ति और ब्रह्ममें 'अहं ममेति-वत्' भेद नहीं है । शक्तिमान्से शक्तिकी विशेषता कैसी है, सो गायक और गानशक्तिके उदाहरणसे ऊपर कही ही गयी है । उसी ब्रह्मशक्तिके भेद वेद और शास्त्रोंने चार प्रकारके कहे हैं । ब्रह्ममें सर्वदा लीन रहनेवाली तुरीया शक्ति कहाती है, यही ब्रह्मशक्ति सच्चिदानन्दमय स्वस्वरूपकी प्रकाशिनी है । ब्रह्मा-विष्णु-महेशकी जननी, निर्गुण ब्रह्मको सगुण दिखानेवाली, ब्रह्म-आलिङ्गित महाशक्ति कारणशक्ति कहाती है । यही

शक्ति कभी विद्या बन जाती है, कभी अविद्या बन जाती है, ब्रह्मशक्तिके तमःप्रधान और सत्त्वप्रधान दो पृथक् भाव ही इसके कारण हैं । ब्रह्मशक्तिकी तीसरी अवस्था सृष्टि करानेवाली ब्राह्मीशक्ति, स्थिति करानेवाली वैष्णवी-शक्ति और लय करानेवाली शैवीशक्तियां समझी जाती हैं; ये ही तीनों सूक्ष्म शक्ति कहाती हैं। चाहे स्थावर सृष्टि हो, चाहे जंगम सृष्टि हो, चाहे ब्रह्माण्ड-सृष्टि हो, चाहे पिण्ड सृष्टि हो, सर्वत्र सृष्टि, स्थिति और लयके क्रम एवं अस्तित्वको रखनेवाली ये ही सूक्ष्म ब्रह्मशक्तियाँ हैं। भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिव जो प्रत्येक ब्रह्माण्डके नायक हैं, वे इन्हींकी सहायतासे अपना अपना कार्य्य सुसम्पन्न करते हैं । उस महाशक्तिकी चतुर्थ अवस्था स्थूलशक्ति कहाती है। स्थूलशक्तिका अनुभव पदार्थविद्याकेद्वारा भी होता है। स्थूल जगत्की अवस्थाओंका परिवर्त्तन, उसका धारण आदि सब कार्य्य इस शक्तिके द्वारा सुसिद्ध होते रहते हैं। तड़ित-शक्ति आदि अनेक इसके भेद हैं। इस कारण भी शक्ति-उपासनाका विस्तार और महत्त्व अधिक है।

समष्टि-व्यष्टिरूपी ब्रह्माण्ड-पिण्डात्मक-सृष्टि ब्रह्म-शक्तिका ही विलास है। वह चतुर्दश लोकमय है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें भू, भुवः, स्व आदि सात ऊर्द्ध्वलोक और अतल, वितल आदि सात अधोलोक हैं। सात ऊर्द्ध्व लोकोंमें देवताओंका वास है और सात अधोलोकोंमें असुरोंका वास है। यह मृत्युलोक ऊर्द्ध्व सप्तलोकोंमेंसे भूलोकका

एक बहुत छोटासा अंश है। इसमें जीवगण मातृगर्भ से उत्पन्न होते हैं और मृत्युको प्राप्त होते हैं, इस कारण इसका नाम मृत्युलोक है । अन्य सब लोकोंमें मातृगर्भ से जन्म नहीं होता है । भारतवर्षरूपी मृत्युलोकके ही जीव अपने अपने कर्मोंके वश होकर मृत्युके अनन्तर आतिवाहिक देहकेद्वारा उन नाना दैवलोकोंमें दैवी सहायतासे पहुंचते हैं। पिण्ड तीन श्रेणीका होता है। एक सहज पिण्ड उद्भिज्जादि योनियोंका, दूसरा मानव-पिण्ड मनुष्योंका और तीसरा दैवपिण्ड देवताओंका कहाता है। मृत्युलोकके अतिरिक्त जितने लोक हैं, वे सब देवलोक कहाते हैं, उनमें दैवपिण्डधारी देवताओंका ही वास है । सहजपिण्डधारी अथवा मानवपिण्ड-धारी जीव दैवपिण्डधारी जीवोंको देख नहीं सकते हैं। यदि देवतागण इच्छा करें, तभी वे देख सकते हैं। देव-लोक हमारे पार्थिव लोकसे अतीत और सूक्ष्म हैं। सुर जिस प्रकार दैवपिण्डधारी हैं, उसी प्रकार असुर भी दैवपिण्डधारी हैं। भेद इतना ही है कि, देवताओंमें आत्मोन्मुख वृत्तिकी प्रधानता है। असुरोंमें इन्द्रियो-न्मुख वृत्तिकी प्रधानता है। यही कारण है कि, सूक्ष्म देवलोकमें देवासुरसंग्राम प्रायः हुआ करता है। परन्तु देवतागण आत्मोन्मुख होनेसे वे कदापि असुरराज्यको छीननेकी इच्छा नहीं करते, अपने ही अधिकारके लोकमें तृप्त रहते हैं । असुरगण विषयलोलुप होनेके कारण उनकी प्रवृत्ति सदा दैवराज्य छीननेकी ओर बनी रहती

है। यही देवासुर-संग्रामका मूल कारण है। मृत्युलोकमें भी मानवपिण्ड देवासुर-संग्राम के लिये दुर्गरूप हैं। उनको असुरगण और देवतागण अपने अपने ढंगपर अपने अपने अधिकारमें लानेका प्रयत्न करते रहते हैं। यही मनुष्यपिण्डमें पाप-पुण्यसे सम्बन्धयुक्त कुमति और सुमतिका युद्ध है। देवासुर-संग्राममें जब जब असुरोंकी जय होने लगती है, तब ब्रह्मशक्ति महामायाकी कृपासे ही पुनः असुरोंका पराभव होकर सूक्ष्म दैवराज्यमें शान्ति स्थापित होती है। उसका उदाहरण पिण्डमें भी देखने योग्य है, मनुष्य जब पाप-पंकमें फंस जाता है, तब पुनः उसका उस दलदलसे निकलना कठिन होता है। ऐसे समयमें गुरुबल अथवा दैवबल, ये ही उसके सहायक होते हैं; ये सब उस अखिललोकजननी महाशक्तिकी कृपाका ही रूपान्तर है।

जगत्कारण परमात्मा ब्रह्म जिस प्रकार सत्, चित् और आनन्दरूपसे त्रिभावद्वारा जाने जाते हैं, पुनः पराभक्तिके अधिकारी भावुक भक्तगण जिस प्रकार उनके इन तीनों भावोंके अनुसार ब्रह्म, ईश्वर और विराट्‌रूपसे अपने हृदय-मन्दिरमें पृथक् पृथक् भावसे उनके दर्शन करके आनन्द सागरमें अवगाहन करते हैं, वैसे ही संसारकी सब वस्तुएं भी त्रिभावात्मक हैं। कारण-ब्रह्ममें जिसप्रकार तीन भाव हैं, उसीप्रकार कार्य्य-ब्रह्म भी त्रिभावात्मक है। इसी कारण वेद और वेदसम्मत-शास्त्र भी त्रिविध अर्थमय हुआ करते हैं। इसी

सर्वतन्त्रसिद्धान्त-स्वरूप प्राकृतिक नियमके अनुसार देवासुर-संग्रामके भी तीन स्वरूप हैं। देवासुर-संग्रामका अध्यात्म स्वरूप प्रत्येक पिण्डमें क्लिष्ट और अक्लिष्ट अर्थात् पाप-जनक और पुण्यजनक वृत्तिके नित्य युद्धद्वारा प्रकट होता है। उस युद्धका अधिदैव स्वरूप सूक्ष्म दैवराज्यमें देवराज और असुरराजकी सेनाओंके द्वारा प्रकट होता है, जैसा कि, शुम्भ निशुम्भ और महामायाका युद्ध और उसका अधिभूतरूप इस मृत्युलोक में नाना सामाजिक और राजनैतिक युद्धके द्वारा प्रकट होता रहता है और भगवदवतारोंकी सहायतासे देवासुर-संग्राम जैसा कि, रामरावणका युद्ध तथा कौरव-पाण्डवोंका युद्ध आदि।

सप्तशती-गीताका प्रसंग पूर्वकथित दार्शनिक रहस्योंसे भरा हुआ है। जिसको दार्शनिक बुद्धि-सम्पन्न भक्तगण समझकर आनन्दसे गद्गद् होते हैं। अन्य जितनी गीताएँ जो प्रचलित हैं, वे सब प्रायः ज्ञान-प्रधान हैं, और ज्ञानकाण्डके विस्तारमें तत्पर हैं। कलि-युगमें वेदका बहुत अधिक हिस्सा लुप्त हो जानेसे वे सब गीतायें वेदकी साररूपसे प्रकाशित हुई हैं, श्रीमद्भगवद्गीताकी महिमा तो सर्वोपरि है, क्योंकि वह ज्ञानकाण्ड और उपासनाकाण्ड दोनोंके लिये परम अवलम्बनीय है। वह उपनिषदोंका सार भी है। परन्तु श्रीसप्तशती गीतामें दैवी शक्तियोंका पूर्ण समावेश होनेके कारण वह कलियुगमें कर्मकाण्डका परम सहायक

है और उपासकोंकी मातारूपिणी है। सप्तशती गीताका विशेषत्व यह है कि, वह प्रथमतः उपासनाकी परम सहायक है। द्वितीयतः कलियुगके लिये कर्मकाण्डके सब प्रयोगोंका प्रधान अङ्गीभूत है। तृतीयतः उसमें पूर्ण दैवीशक्ति निहित रहनेके कारण कर्मकाण्डका सब काम उससे निकल सकता है। चतुर्थतः निष्काम भक्तके लिये सप्तशती गीता पराविद्यारूपिणी होकर भक्तको मोक्ष-मार्गमें अग्रसर करनेमें समर्थ है। अलौकिकता यह है, कि सप्तशती गीताका प्रत्येक शब्द सिद्धमन्त्र है। कलियुगमें जीवोंके सब मनोरथ पूर्ण करनेमें वह कल्पतरुरूप है। जो शब्द अथवा शब्दसमूह दैवराज्यसे सम्बन्ध रखते हैं, और जिनका प्रभाव दैवराज्यपर पड़ता है, वे मन्त्र कहाते हैं। सप्तशतीगीता कलियुगमें वैदिक मन्त्रोंसे भी अधिक शक्तिशालिनी है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षफल देनेवाली सप्तशतीगीताका समुज्ज्वल महत्त्व अति विलक्षण ही है। यह पहले ही कहा गया है कि, शक्ति और शक्तिमान्‌का 'अहं ममेति वत्' अभेदत्व है। उदा-हरणसे यह भी दिखाया गया है कि, सृष्टिमें शक्तिमान्‌से शक्तिका ही आदर और विशेषता होती है। उपासनामें इन्हीं दोनोंके विचारसे भगवत्‌सान्निध्य प्राप्त करनेकी शैली बांधी गई है। किसी किसी उपासना-प्रणालीमें शक्तिमान्‌को प्रधान रखकर उसकी शक्तिके अवलम्बनसे उपासनाकी साधनप्रणाली निर्णीत हुई है। कहीं कहीं शक्तिको प्रधान मानकर शक्तिमान्‌का अनुमान करते

हुए उपासना-प्रणाली बनाई गई है। पहली दशाके उदाहरणमें, वेद और शास्त्रोक्त निर्गुण तथा सगुण उपासनाके प्रायः सब भेद पाये जाते हैं। दूसरी दशा जो अपेक्षाकृत आत्मज्ञान-रहित है, उसमें केवल अनुमान बुद्धिद्वारा एक ईश्वर हैं, ऐसा जानकर उनके नाना गुणोंका स्मरण करके विभिन्न धर्म-मतों और पन्थोंके उपासक उस सर्वहितकारी भगवान्‌की ओर अग्रसर होकर कृत-कृत्य होते हैं। पहली अवस्थामें आत्मज्ञान रहनेसे भगवत् स्वरूपका विकाश यथावत् भागवतके मनोमन्दिरमें बना रहता है और दूसरी दशामें आत्मज्ञानका विकाश न रहनेसे भक्त केवल भगवान्‌की मनोमुग्धकारिणी शक्तियोंके अवलम्बनसे मन-बुद्धिसे अगोचर परमात्माको मनोमन्दिरमें बैठानेका प्रयत्न करता है। श्रीभगवान्‌को मातृ-भावसे उपासना करनेकी अनन्त वैचित्र्यपूर्ण जो शक्ति-उपासनाकी प्रणाली है, वह पूर्वोक्त उन दोनोंसे विलक्षण ही है। इस उपासना-विज्ञानमें शक्ति और शक्तिमान्‌का अभेद लक्ष्य सदा रक्खा गया है। वे ही शक्तिरूपमें उपास्य-उपासकका सम्बन्ध स्थापन करते हैं और वे ही शक्तिमान्‌रूपसे शक्तिभावापन्न भक्तको अपनेमें मिलाकर मुक्त कर देते हैं, यही इस अनुपम शैलीका मधुर और गम्भीर रहस्य है।

उदाहरणरूपसे समझ सकते हैं कि, दार्शनिक सिद्धान्तके अनुसार वेद और शास्त्रके ज्ञाता बुधजनोंका यह सिद्धान्त है कि, चाहे गणपति-उपासक हो,

चाहे सूर्य्य-उपासक हो, चाहे विष्णु-उपासक हो, चाहे शिव-उपासक हो और चाहे अवतारादिकी उपासना करनेवाले हों, सभी वस्तुतः शक्तिकी उपासना ही करते हैं। यहां तक कि, जो वैदिक मतानुयायी या अवैदिक मतानुयायी व्यक्ति नामके निर्गुण ब्रह्म-उपासक कहाते हैं, वे भी प्रकारान्तरसे भगवत्शक्तिकी ही उपासना करते हैं। गाणपत्यगण बुद्धि-तत्त्वको ही अन्तिम अवलम्बन मानते हैं और बुद्धि ब्रह्मशक्तिका ही परिणाम है, इस कारण गणपति-उपासनासे ब्रह्मशक्तिकी ही उपासना होती है। इसी प्रकार सूर्य्य-उपासनामें अन्तिम अवलम्बन तेज रहता है, जो परमात्माकी आकर्षण-कारिणी शक्ति है। इसी प्रकार विष्णु-उपासनामें चित्सत्ता और शिव-उपासनामें सत्-सत्ताका जो अन्तिम अवलम्बन माना जाता है, वह भी द्वैतात्मक होनेके कारण ब्रह्मशक्तिके विलाससे बाहरकी वस्तु नहीं है। अवतार-उपासनामें तो अवतार-लीलाका साक्षात् सम्बन्ध रहता है। इस कारण मानना ही पड़ेगा, कि सगुण उपासनामात्र ही शक्तिकी उपासना है। दूसरी ओर जो उपासक निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करनेका दावा करते हैं, वे जब उपासनामें प्रवृत्त होते हैं, तो उस समय सगुण ब्रह्मरूपी ईश्वरके किसी न किसी भाव विशेषमें ही मनको लगानेका यत्न करते हैं, उस समय उनका मन जिस भावमें लगता है, वह शक्तिका ही वैभव है। दार्शनिक विचारके इस दिग्दर्शनद्वारा यह सिद्ध

हुआ, कि उपास्य-उपासक सम्बन्ध स्थापन करके उपासनाके रूपमें जो कुछ क्रिया की जाती है, वह सब शक्तिकी ही उपासना है।

सप्तशती गीता शक्ति उपासनामार्गका परम सहायक और उसका प्रधान प्रवर्त्तक उपनिषद्‌ग्रन्थ है। इस औपनिषदिक गाथाका प्रसंग नाना प्रकारसे वेद और वेद-सम्मतशास्त्रोंमें पाया जाता है। सप्तशती गीताका प्रसंग पुराणोंमें इस प्रकार पाया जाता है:—प्राचीन कालमें भगवान् व्यासके शिष्य महर्षि जैमिनि सांग-वेद और नाना शास्त्रोंके पारदर्शी होने पर भी श्रीमहा-भारतके बहुत कठिन स्थलोंको समझ नहीं सके थे; उस समय उनके गुरुमहाराजको अवकाश न रहनेसे उन्होंने परम विज्ञ महर्षि मार्कण्डेयके निकट जाकर बहुतसे रहस्योंकी जिज्ञासा की थी। तब महर्षि मार्क-ण्डेयजीने आज्ञा की थी कि, मुझे सन्ध्यावन्दनादिके लिये जाना है, अवकाश नहीं है, आप पितृशापग्रस्त पक्षीरूपधारी पिङ्गाख्य, विराध, सुपुत्र और सुमुख नामक सर्वशास्त्र विशारद चार मुनिपुत्र हैं, उनके पास जाकर इन सब प्रश्नोंकी जिज्ञासा करें। तुरत ही आपके सब सन्देह दूर हो जायँगे। महर्षि जैमिनिने इस प्रकारसे गुरुकृपा लाभ करके उन पक्षी शरीरधारी महात्मा-ओंके निकट जाकर जिज्ञासा की थी। तब मार्कण्डेय-क्रौष्टुकी सम्वादके उपक्रमद्वारा उन्होंने नाना प्रकारकी शंकाओंका समाधान करके महर्षि जैमिनिको तृप्त

किया था । क्रमशः चतुर्दश मन्वन्तरके प्रसंगमें उन्होंने कहा था कि, राजा सुरथ ही ब्रह्ममयी भगवतीकी कृपासे अष्टम मन्वन्तराधिपति सावर्णि नामक मनु होंगे। भविष्यत्‌के सावर्णि नामक मनु जब साधारण राजा थे, तब किस प्रकारसे उन्होंने जगदम्बा ब्रह्ममयीकी कृपा प्राप्त की थी, जगत्-कल्याण-वासनासे आत्मज्ञानी महर्षि मार्कण्डेयने पहले ही क्रोष्टुकीको उस प्रसंगका उपदेश किया था और उस समय अवकाशका अभाव होनेसे उन्होंने पक्षी-शरीरधारी मुनियोंके निकट महर्षि जैमिनिको भेजा था। वही सम्वाद 'मार्कण्डेय उवाच' वचनद्वारा प्रारम्भ किया है; जो त्रिलोकपवित्रकर, त्रिलोक-रक्षक, सर्वकामप्रद और सर्वजीवहितकारी है।

इति शम्

श्रीदेव्यै नमः ।

श्रीसप्तशतीगीता पाठविधि ।

पूर्व या उत्तर मुख हो पवित्र आसन पर बैठकर आचमन और प्राणायाम करके महासंकल्प अथवा निम्नलिखित रूपसे संकल्प करे, संकल्प यथा—

ताम्रपातमें कुश, तिल और जल ले पातितवाम-जानु होकर निम्न लिखित मन्त्र पाठ करे—

ओंतत्सदद्य अमुकसंवत्सरे अमुकअयने अमुक-ऋतौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकराशिस्थिते सूर्य्यें अमुकलग्ने अमुकगोत्रः श्रीअमुकः अमुककामः (अथवा श्रीचण्डीप्रीतिकामः) गणपत्यादिपूजापूर्वकं श्रीचण्डीपूजापूर्वकञ्च श्रीकृष्णद्वैपायनाभिधानमहर्षिवेद-व्यासप्रोक्तजयाख्यमार्कण्डेयपुराणान्तर्गतं सावर्णिक-मन्वन्तरीयं "मार्कण्डेय उवाच, ओं सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः" इत्यादि सूर्य्याज्जन्म समासाद्य सावर्णि र्भविता मनुः" इत्यन्तदेवीमाहात्म्यप्रकाशक-स्तोत्रस्य एकावृत्तिपाठमहं करिष्ये। (दूसरोंके लिये करना हो तो अमुकगोत्रस्य अमुकस्य करिष्यामि) इस प्रकार

पाठ करना होगा। इसके बाद सामान्यार्घ्यदान, आसन शुद्धि, और भूतशुद्धि करके शालग्रामशिलामें या घटमें या श्रीसप्तशतीगीताके ऊपर गणपति, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वास्तुपुरुष, गंगा, यमुना और सरस्वती देवीकी पूजा गंध पुष्पोंसे करनी चाहिये। इसके बाद ऋष्यादिन्यास, करन्यास, अंगन्यास करके कूर्म्ममुद्रासे हाथमें पुष्प लेकर निम्नलिखित ध्यान करे—

या चण्डी मधुकैटभादिदलनी या माहिषोन्मूलिनी,
या धूम्रेक्षणचण्डमुण्डमथनी या रक्तबीजाशनी।
शक्तिःशुम्भनिशुम्भदैत्यदलनी या सिद्धिलक्ष्मीः परा,
सा देवी नवकोटिमूर्तिसहिता मां पातु विश्वेश्वरी ॥

इस तरहसे ध्यान करके उस पुष्पको अपने मस्तक पर रखकर मानसोपचारसे देवीकी पूजा करे। तदनन्तर विशेषार्घ्य स्थापन करके पुनः गणपति, शिव, सूर्य्य, विष्णु और नवग्रहोंकी पूजा, करन्यास, अंगन्यास और पूर्वोक्त ध्यानमन्त्रसे देवीका ध्यान करके देवीका आवाहन करे और अपने हृदयस्थित देवी सम्मुखस्थ पीठाधार पर स्थित होगई हैं, ऐसी चिन्ता करे। इसके बाद यथा-शक्ति उपचारसे देवीकी पूजा करके यथा-शक्ति देवीका मूलमन्त्र जप करे। तदनन्तर गंधपुष्पोंसे सप्तशती चण्डी (पुस्तक) की पूजा और चण्डीकी गायत्रीका पाठ करके तीन बार पुष्पाञ्जलि देवे। चण्डीकी गायत्री यथा—ॐ

चामुण्डायै विद्महे त्रिपुरायै धीमहि तन्नो गौरि प्रचोदयात्। इसके बाद ओं ऐं ह्रीं क्लीं ह्रीं ह्रीं क्लीं नमः अथवा—ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे इन दोनोंमें से किसी एक मन्त्रका १०८ बार जप करके घंटाध्वनि करे। इसके बाद अर्गला, कीलक, चण्डीकवच, और ऋषिछन्दस्त्रय पाठ करके सप्तशती का पाठ आरम्भ करना चाहिये। सप्तशतीके पाठ समाप्त होनेपर पाठापराध-क्षमापन स्तोत्रका पाठ और फिर पूर्वकथित मन्त्रका १०८ बार जप आदिके बाद आरति करके देवीको प्रणाम करना चाहिये। पाठ शुद्ध होना चाहिये कदापि अशुद्ध न हो। क्योंकि ये सब मन्त्र हैं। अशुद्ध मन्त्रके पाठसे हानि होती है।

चण्डीपाठक्रमः।

(चण्डीपाठनियमे मार्कण्डेयं प्रति ब्रह्मवाक्यम्)

अर्गलं कीलकञ्चादौ पठित्वा कवचं पठेत्।
जपेत् सप्तशतीं पश्चात् क्रम एष शिवोदितः॥

अर्गलान्तेऽपि

इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः।
सप्तशतीं समाराध्य वरमाप्नोति दुर्लभम्॥

कवचमध्येऽपि–

जपेत् सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा कवचमादितः ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

ब्रह्मन् ! केन प्रकारेण दुर्गामाहात्म्यमुत्तमम् ।
शीघ्रं सिध्यति तत्सर्वं कथयस्व महामते ॥
अर्गलं कीदृशं प्रोक्तं विस्तरेण वदस्व तत् ।
प्रसन्नो यदि मे ब्रह्मन् ! श्रोतुं कौतुहलं महत् ॥

ब्रह्मोवाच ।

विधाय पूजनं देव्या यथाशक्ति यथाविधि ।
समाहितमना भूत्वा प्रपठेदर्गलं ततः ॥
अर्गलं पापजातस्य दारिद्र्यस्य तथापहम् ।
इदमादौ पठित्वा तु पश्चात् श्रीचण्डिकां जपेत् ॥

अथ चण्डीपाठनियमः ।

आधारे स्थापयित्वा च पुस्तकं वाचयेत् स्फुटम् ।
हस्ते संस्थापनादेव हरत्यर्द्धफलं यतः ॥
यावन्न पूर्यतेऽध्यायस्तावन्न विरमेत् पठन् ।
अनुक्रमं पठेद्देवि शिरःकम्पादिकं त्यजेत् ॥
यदि प्रमादादध्यायमध्ये च विरमेत् प्रिये !
पुनरध्यायमारभ्य पठेत् सर्वस्तवे विधिः ॥

२

नातः परतरं स्तोत्रं किञ्चिदस्ति वरानने ! ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं पावनानां च पावनम् ॥
अर्गलं दुरितं हन्ति कीलकं फलदं तथा ।
कवचं रक्षते नित्यं चण्डिकात्रितयं दिशेत् ॥
अर्गलं हृदये यस्य स चार्गलमयः सदा ।
भविष्यतीति निश्चित्य शिवेन रचितं पुरा ॥
कीलकं हृदये यस्य स कीलितमनोरथः ।
भविष्यति न सन्देहो नान्यथा शिवभाषितम् ॥
कवचं हृदये यस्य स ब्रह्मकवचः खलु ।
ब्रह्मणा निर्म्मितं पूर्वमिति निश्चित्य चेतसा ॥

अथार्गलास्तोत्रम् ।

ॐ नमश्चण्डिकायै ।

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥१॥
जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणि ।
जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥
मधुकैटभविद्रावि विधातृवरदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ३ ॥

महिषासुरनिर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ४ ॥

धूम्रनेत्रवधे देवि धर्मकामार्थदायिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ५ ॥

रक्तबीजवधे देवि चण्डमुण्डविनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ६ ॥

निशुम्भशुम्भनिर्णाशि त्रैलोक्यशुभदे नमः।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ७ ॥

वन्दितांघ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ८ ॥

अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रुविनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ९ ॥

नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१०॥

स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥११॥

चण्डिके सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१२॥

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि देवि परं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१३॥

विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१४॥

विधेहि देवि कल्याणं विधेहि विपुलां श्रियम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१५॥

सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टचरणाम्बुजे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१६॥

विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तञ्च मां कुरु ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१७॥

देवि प्रचण्ड-दोर्दण्डदैत्यदर्पनिषूदिनी ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१८॥

प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१९॥

चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२०॥

कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२१॥

हिमाचलसुतानाथसंस्तुते परमेश्वरि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२२॥
इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२३॥
देवि भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२४॥
पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्त्यनुसारिणीम्।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम् ॥ २५ ॥
इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः।
सप्तशतीं समाराध्य वरमाप्नोति दुर्लभम् ॥२६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे अर्गलास्तोत्रं समाप्तम्।

अथ कीलकस्तोत्रम्।

मार्कण्डेय उवाच।

विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे।
श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे ॥ १ ॥

सर्वमेतद्विजानीयान्मन्त्राणामभिकीलकम् ।
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्यतत्परः ॥ २ ॥

सिध्यन्त्युच्चाटनादीनि कर्म्माणि सकलान्यपि ।
एतेन स्तुवतां देवि स्तोत्रमात्रेण सिद्ध्यति ॥ ३ ॥

न मन्त्रो नौषधं तत्र न किञ्चिदपि विद्यते ।
विना जाप्येन सिध्येत सर्वमुच्चाटनादिकम् ॥ ४ ॥
समग्राण्यपि सेत्स्यन्ति लोकशंकामिमां हरः ।
कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभम् ॥ ५ ॥
स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुप्तं चकार सः ।
समाप्नोति सुपुण्येन तां यथावन्नियन्त्रणाम् ॥६॥
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेव न संशयः ।
कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः ॥७॥
ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति ।
इत्थं रूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम् ॥ ८ ॥
यो निष्कीलां विधायैनां नित्यं जपति संस्फुटम् ।
स सिद्धः स गणः सोऽपि गन्धर्वो जायते ध्रुवम् ॥९॥
न चैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापीह जायते ।
नापमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥१०॥

ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत न कुर्वाणो विनश्यति ।
ततो ज्ञात्वैव सम्पूर्णमिदं प्रारभ्यते बुधैः ॥११॥
सौभाग्यादि च यत्किंचिद्दृश्यते ललनाजने ।
तत्सर्वं तत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदं शुभम् ॥१२॥
शनैस्तु जाप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे संपत्तिरुच्चकैः ।
भवत्येव समग्रापि ततः प्रारभ्यमेव तत् ॥१३॥
ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यसंपदः ।
शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः ॥१४॥
चण्डिकां हृदयेनापि यः स्मरेत् सततं नरः ।
हृद्यं काममवाप्नोति हृदि देवी सदा वसेत् ॥१५॥
अग्रतो वै महादेव्याः कृत्वा कीलकवारणम् ।
निष्कीलञ्च तदा कृत्वा पठितव्यं समाहितैः ॥१६॥

इति भगवत्याः कीलकस्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ देवीकवचम् ।

ॐ अस्य देवीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिरनुष्टुप्छन्दो महिषमर्दन्यादयो देवता श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थे सप्तशतीपाठाङ्गजपे विनियोगः । ॐ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डेय उवाच ।

यद्गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम् ।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥

ब्रह्मोवाच ।

अस्ति गुह्यतमं विप्र ! सर्वभूतोपकारकम् ।
देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने ॥ २ ॥
प्रथमं शैलपुत्रीति द्वितीयं ब्रह्मचारिणी ।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥ ३ ॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनी तथा ।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ॥ ४ ॥
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्त्तिताः ।
उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥ ५ ॥
अग्निना दह्यमानास्तु शत्रुमध्ये गता रणे ।
विषमे दुर्गमे चैव भयार्त्ताः शरणं गताः ॥ ६ ॥
न तेषां जायते किञ्चिदशुभं रणसङ्कटे ।
नापदं तस्य पश्यामि शोकदुःखभयं न हि ॥ ७ ॥
यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषामृद्धिः प्रजायते ।
ये त्वां स्मरन्ति देवेशि ! रक्षसि तान्न संशयः ॥ ८ ॥

प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना ।
ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ॥ ९ ॥
नारसिंही महावीर्य्या शिवदूती महाबला ।
माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना ॥१०॥
लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया ।
श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना ॥११॥
ब्राह्मी हंससमारूढ़ा सर्वाभरणभूषिता ।
इत्येता मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः ॥१२॥
नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः ।
श्रेष्ठैश्च मौक्तिकैः सर्वा दिव्यहारप्रलम्बिभिः ॥१३॥
इन्द्रनीलैर्महानीलैः पद्मरागैः सुशोभनैः ।
दृश्यन्ते रथमारूढ़ा देव्यः क्रोधसमाकुलाः ॥१४॥
शंखं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम् ।
खेटकं तोमरं चैव परशुम्पाशमेव च ॥१५॥
कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् ।
दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च ॥१६॥
धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै ।
नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोरपराक्रमे ॥१७॥

महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि ।
त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्धिनि ॥१८॥

प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता ।
दक्षिणेऽवतु वाराही नैर्ऋत्यां खड्गधारिणी ॥१९॥

प्रतीच्यां वारुणी रक्षेत् वायव्यां वायुदेवता ।
उदीच्यां पातु कौवेरी ईशान्यां शूलधारिणी ॥२०॥

ऊर्ध्वं ब्रह्माणी मे रक्षेदधस्ताद्वैष्णवी तथा ।
एवं दशदिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना ॥२१॥

जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः ।
अजिता वामपार्श्वेतु दक्षिणे चापराजिता ॥२२॥

शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ।
मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी ॥२३॥

नेत्रयोश्चित्रनेत्रा च यमघण्टा च पार्श्वके ।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन भ्रुवोर्मध्ये च चण्डिका ॥२४॥

शंखिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी ।
कपालं कालिका रक्षेत् कर्णमूले तु शाङ्करी ॥२५॥

नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका ।
अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती ॥२६॥

दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका।
घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥२७॥
कामाक्षी चिबुकं रक्षेत् वाचं मे सर्वमङ्गला।
ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी ॥२८॥
नीलग्रीवा बहिःकण्ठे नलिकां नलकूबरी।
स्कन्धयोःखड्गिनी रक्षेद्बाहू मे वज्रधारिणी ॥२९॥
हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चाङ्गुलीषु च।
नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत् कुक्षौ रक्षेन्नलेश्वरी ॥३०॥
स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनःशोकविनाशिनी।
हृदयं ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ॥३१॥
नाभौ च कामिनी रक्षेद्गुह्यं गुह्येश्वरी तथा।
भूतनाथा च मेढ्रं मे ऊरू महिषवाहिनी ॥३२॥
कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी।
जङ्घे महाबला रक्षेत् सर्वकामप्रदायिनी ॥३३॥
गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु कौशिकी।
पादांगुलीषु श्रीरक्षेत्तलं पातालवासिनी ॥३४॥
नखान्दंष्ट्राकराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी।
रोमकूपेषु कौमारी त्वचं योगेश्वरी तथा ॥३५॥

रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती ।
अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी ॥३६॥

पद्मावती पद्मकोशे कक्षे चूड़ामणिस्तथा ।
ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसन्धिषु ॥३७॥

शुक्रं ब्रह्माणी मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा ।
अहङ्कारं मनो बुद्धिं रक्षेन्मे धर्म्मधारिणी ॥३८॥

प्राणापानौ तथा व्यानमुदानञ्च समानकम् ।
वज्रहस्ता च मे रक्षेत्प्राणान् कल्याणशोभना ॥३९॥

रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी ।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा ॥४०॥

आयू रक्षतु वाराही धर्मं रक्षतु पार्वती ।
यशः कीर्तिं च लक्ष्मीं च सदा रक्षतु वैष्णवी ॥४१॥

गोत्रमिन्द्राणी मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके ।
पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी ॥४२॥

धनेश्वरी धनं रक्षेत्कौमारी कन्यकां तथा ।
पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमंकरी तथा ॥४३॥

राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता ।
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु ॥४४॥

तत्सर्वं रक्ष मे देवि ! जयन्ती पापनाशिनी ।
सर्वरक्षाकरं पुण्यं कवचं सर्वदा जपेत् ॥४५॥

इदं रहस्यं विप्रर्षे ! भक्त्या तव मयोदितम् ।
पादमेकन्न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मनः ॥४६॥

कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति ।
तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सर्वकामिकः ॥४७॥

यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् ॥४८॥

निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः ।
त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृतः पुमान् ॥४९॥

इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम् ।
यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः ॥५०॥

दैवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः ।
जीवेद्वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ॥५१॥

नश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूताविस्फोटकादयः ।
स्थावरं जङ्गमञ्चैव कृत्रिमं चैव यद्विषम् ॥५२॥

अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले ।
भूचराः खेचराश्चैव कुलजाश्चोपदेशिकाः ॥५३॥

सहजाः कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा ।
अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः ॥५४॥
ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः ॥५५॥
नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचेनावृतो हि यः ।
मानोन्नतिर्भवेद्राज्ञां तेजोवृद्धिः परा भवेत् ॥५६॥
यशोवृद्धिर्भवेत् पुंसां कीर्तिवृद्धिश्च जायते ।
तस्माज्जपेत् सदा भक्तः कवचं कामदं मुने ॥५७॥
जपेत्सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा ।
निर्विघ्नेन भवेत्सिद्धिश्चण्डीजपसमुद्भवा ॥५८॥
यावद्भूमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम् ।
तावत्तिष्ठति मेदिन्यां सन्ततिः पुत्रपौत्रकी ॥५९॥
देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः ॥६०॥
तत्र गच्छति गत्वासौ पुनश्चागमनं न हि ।
लभते परमं स्थानं शिवेन समतां व्रजेत् ॥६१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे हरिहरब्रह्मविरचितं
देव्याः कवचं समाप्तम् ।

विशेषपद्धति ।

परिशिष्टके पूर्वार्द्धमें साधारण पद्धति दी गयी है और जिस शास्त्रीय वचनके अनुसार दी गयी है, वह वचन भी उसमें दिया गया है। जो साधारण पाठ करेंगे उनको ऊपर लिखित क्रमके अनुसार पाठ और पूजन आदि करके सप्तशती गीताका पाठ करना चाहिये । परन्तु विशेष अनुष्ठानके विषयमें शास्त्रान्तरोंमें जो पद्धति है, उसके और और अंश नीचे लिखे जाते हैं। इसमें पूर्व उल्लिखित सब अङ्ग अवश्यही रहेंगे। उनके अतिरिक्त निम्नलिखित अङ्ग भी किये जायँ। अथवा साधकका जैसा सङ्कल्प और अधिकार हो उसके अनुसार विषय समावेश करलेवे अथवा सब विषयोंका ही समावेश करलेवे ।

नवार्णमन्त्रजपविधिः । *

॥ ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्माविष्णुरुद्रा ऋषयः गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः ॥ ऐं बीजम् ॥ ह्रीं शक्तिः ॥ क्लीं कीलकम् ॥ श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ॥ ब्रह्माविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः

* यद्यपि ऊपर लिखित प्रमाणमें नवार्ण जपकी विधि नहीं है परन्तु शास्त्रान्तरोंमें इसकी विधि होनेसे दियागया है।

शिरसि ॥ गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः मुखे ॥ महाकाली महालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः हृदि ॥ ऐं बीजाय नमः गुह्ये ॥ ह्रीं शक्तये नमः पादयोः ॥ क्लीं कीलकाय नमः नाभौ ॥ इति मूलेन करौ संशोध्य ॥ ॐ ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः ॥ ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः ॥ ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः ॥ ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः ॥ ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॥ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयादि ॥ ततोऽक्षरन्यासः ॥ ॐ ऐं नमः शिखायाम् ॥ ॐ ह्रीं नमः दक्षिणनेत्रे ॥ ॐ क्लीं नमः वामनेत्रे ॥ ॐ चां नमः दक्षिणकर्णे ॥ ॐ मुं नमः वामकर्णे ॥ ॐ डां नमः दक्षिणनासायाम् ॥ ओं यैं नमः वामनासायाम् ॥ ॐ विं नमः मुखे ॥ ॐ च्चें नमः गुह्ये ॥ एवं विन्यस्याष्टवारं मूलेन व्यापकं कुर्यात् । ॐ ऐं प्राच्यै नमः ॥ ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः ॥ ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः ॥ ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः ॥ ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः ॥ ॐ क्लीं वायव्यै नमः ॥ ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः ॥ ॐ विच्चे ईशान्यै नमः ॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः ॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः ॥ इति नवार्णविधिः ।

अथ तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम् ।

विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ॥
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच ॥

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ॥
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ॥२॥
अर्धमात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ॥
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि ! जननी परा ॥३॥
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ॥
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥४॥
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ॥
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥५॥
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ॥
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ॥६॥
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ॥
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥७॥
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ॥
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥८॥
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ॥
शंखिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥९॥
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ॥
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥१०॥
यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाऽखिलात्मिके ॥
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ॥११॥
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पातात्ति यो जगत् ॥
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥१२॥

विष्णुश्शरीरग्रहणमहमीशान एव च ॥
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान्भवेत्॥१३॥
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि ! संस्तुता ॥
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥ १४ ॥
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ॥
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥ १५ ॥

इति तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम् ।

ऋषिछन्दस्त्रयम् ।

प्रथमचरितस्य ब्रह्माऋषिर्महाकाली देवता गायत्रीच्छन्दो नन्दा शक्ती रक्तदन्तिकाबीजमग्निस्तत्त्वं ऋग्वेदस्वरूपमहाकालीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः । ॐ खड्गं चक्रगदेषु चापपरिघान् शूलं भुशुण्डीं शिरः, शङ्खं सन्दधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्। यामस्तौत् स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभं, नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकाम् ॥

मध्यमचरितस्य विष्णुर्ऋषिर्महालक्ष्मीर्देवता उष्णिक् छन्दः शाकम्भरी शक्तिर्दुर्गाबीजं, वायुस्तत्त्वं यजुर्वेदस्वरूपमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः । ओं अक्षस्रक्परशुं गदेषु कुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां, दण्डं शक्तिमसिञ्च चर्म्मजलजं घण्टां सुराभाजनम् । शूलं पाशसुदर्शनञ्च दधतीं हस्तैः प्रवालप्रभां सेवे सैरिभमर्द्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥

उत्तरचरितस्य रुद्रऋषिर्महासरस्वती देवता अनुष्टुप्छन्दो भीमाशक्तिर्भ्रामरी बीजं सूर्यस्तत्त्वं सामवेदस्वरूपमहासरस्वतीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः। ओं सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्या चतुर्भिर्भुजैः, शङ्खं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता। आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीक्वणन्नूपुरा, दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला॥

इति ऋषिछन्दस्त्रयं समाप्तम्।

अथ वैदिक देवीसूक्तम्।

ओं अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरा-
म्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्य-
हमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥ १॥

अहं रुद्रेभिः (एकादशभिः रुद्रैः) वसुभिः आदित्यैः उत विश्वदेवैः चरामि (रुद्राद्यात्मना चरामीत्यर्थः) अहं (एव) उभा (उभौ) मित्रावरुणा (मित्रावरुणौ) बिभर्म्मि (धारयामि) अहं इन्द्राग्नी (बिभर्म्मि), अहं उभा (उभौ) अश्विना (अश्विनौ) (च बिभर्मि)॥ १॥

देवी अम्भृण ऋषिकी वाङ्नाम्नी कन्याके मुखसे कह रही हैं—मैं एकादशरुद्ररूपसे विचरण करती हूँ,

मैं अष्ट वसुओंके रूपमें अवस्थान करती हूँ। मैं ही विष्णु आदि द्वादश आदित्य होकर विचरण करती हूँ, मैं ही समस्त देवताओंके रूपमें अवस्थान करती हूँ। मैं ही आत्माके रूपमें अवस्थान करके मित्र और वरुण को धारण करती हूँ, मैं ही इन्द्र एवं अग्निको धारण करती हूँ, मैंने ही दोनों अश्विनीकुमारोंको धारण कर रक्खा है ॥ १ ॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं,
त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते,
सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥ २ ॥

अहं आहनसं (शत्रूणां आहन्तारं) सोमं बिभर्मि, (तथा) अहं त्वष्टारं उत (अपि च) पूषणं भगं (च बिभर्मि), (तथा) हविष्मते (हविर्युक्ताय) सुप्राव्ये (शोभनं हविः देवानां प्रापयित्रे) सुन्वते (सोमाभिषवं कुर्वते) यजमानाय द्रविणं (यागफलरूपं धनं) अहं (एव) दधामि (धारयामि) ॥ २ ॥

देवताओंके शत्रुनाशक सोमको मैं ही धारण करती हूँ, मैं ही त्वष्टाको धारण करती हूँ, मैं ही पूषा और भग को धारण करती हूँ। सोमयज्ञके द्वारा जो देवताओंको तृप्त करता है, उसको उस यज्ञका फलरूप धनादि मैं ही प्रदान किया करती हूँ ॥ २ ॥

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां,
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा,
भूरिस्थात्रां भूर्य्यावेशयन्तीम् ॥ ३ ॥

अहं राष्ट्री (सर्वस्य ईश्वरी) (तथा) वसूनां (धनानां) सङ्गमनी (प्रापयित्री) चिकितुषी (ब्रह्ममयी) यज्ञियानां (उपास्यानां) प्रथमा (मुख्या)। तां (एवंगुणविशिष्टां) भूरिस्थात्रां (बहुभावेन अवतिष्ठमानां) भूरि (भूरीणि भूतजातानि) आवेशयन्तीं (जीवभावेन आत्मानं प्रवेशयन्तीं) मा (मां) पुरुत्रा (अनन्त-ब्रह्माण्ड वासिनः) देवाः व्यदधुः (विदधति) ॥ ३ ॥

मैं निखिल ब्रह्माण्डकी ईश्वरी हूँ, मैं उपासक-गणकी धनादि-इष्टफलदात्री हूँ। मैं ब्रह्ममयी हूँ, अतः उपास्य देवताओंमें मैं ही प्रधान हूँ, मैं ही सर्वत्र सब जीवदेहमें विराजमान हूँ, अनन्त ब्रह्माण्डवासी देवतागण, जहाँ कहीं रहकर जो कुछ करते हैं, वे सब मेरी ही आराधना करते हैं ॥ ३ ॥

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति
यः प्राणिति यः श्रृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मान्त उपक्षीयन्ति
श्रुधि श्रुत ! श्रद्धिवन्ते वदामि ॥ ४ ॥

यः (लोकः) अन्नं अत्ति (भक्षयति) सः (शक्तिरूपया) मया (एव) (अत्ति), यः च विपश्यति (आलोकयति) प्राणिति (श्वासोच्छ्वासादि व्यापारं करोति) यः (च) उक्तं शृणोति, सः (शक्तिरूपया मया एव एतत् सर्वं करोतीत्यर्थः) (ये ईदृशीं मां न जानन्ति), ते मां अमन्तवः (अजानन्तः) उपक्षीयन्ति (हीना भवन्ति), हे श्रुत ! (विश्रुत !) ते (तुभ्यं) श्रद्धिवं (श्रद्धायुक्तेन लभ्यं ब्रह्मात्मकं वस्तु) वदामि श्रुधि (शृणु) ॥ ४ ॥

मैं ही सबके भोजनकी शक्तिरूपा हूँ, मैं ही दर्शन-शक्तिरूपा हूं, मैं ही जीवनी-शक्तिरूपा हूँ, मैं ही श्रवण-शक्तिरूपा हूँ, इसलिये मेरेद्वारा ही लोग भोजन करते हैं, देखते हैं और मेरेद्वारा ही लोग जीवित रहते हैं, मेरे द्वारा ही लोग श्रवणादि सब कार्य्य किया करते हैं। जो लोग मुझको तत्त्वतः नहीं जानते हैं, वे लोग संसार में जन्म-मृत्युरूप क्लेशसे पीड़ित होते हैं। हे बहुश्रुत ! तुमको यह दुर्लभ उपदेश प्रदान करती हूँ, सुनो ॥ ४ ॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि
जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ५ ॥

अहं स्वयं एव देवेभिः (देवैः) उत मानुषेभिः (मानुषैः) जुष्टं (सेवितं) इदं (ब्रह्मात्मकं वस्तु)

वदामि, (अहं) यं यं (पुरुषं) कामये (रक्षितुं वाञ्छामि) तं तं उग्रं (सर्वेभ्यः अधिकं) कृणोमि (करोमि), (तथा) तं तं ब्रह्माणं (स्रष्टारं करोमि), ऋषिं (अतीन्द्रियार्थदर्शिनं) तं सुमेधां (शोभनप्रज्ञं) (च) (कृणोमि) ॥ ५ ॥

देवताओं और मनुष्योंद्वारा सेवित मैं यह दुर्लभ तत्त्व स्वयं तुमको कहती हूँ। मैं जिसको चाहती हूँ, उसको इच्छामात्रसे ब्रह्मा बनाती हूँ, ऋषि—अतीन्द्रियार्थदर्शी बनाती हूँ और तत्त्वज्ञानी बनाया करती हूँ ॥ ५ ॥

अहं रुद्राय धनुरातनोमि
ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं
द्यावापृथिवी आविवेश ह ॥ ६ ॥

(त्रिपुरवधसमये) ब्रह्मद्विषे (ब्राह्मणानां द्वेष्ट्रे), शरवे (हिंसकाय असुराय) हन्त वा उ (तं हन्तुमित्यर्थः) रुद्राय (रुद्रस्य महादेवस्य) धनुः अहं आतनोमि (मौर्व्या आततं करोमि), अहं जनाय (जनरक्षणाय) समदं (शत्रुभिः सह संग्रामं) कृणोमि (करोमि), (तथा) द्यावापृथिवी ह आविवेश (प्रविष्टवती) ॥ ६ ॥

रुद्रने जो त्रिपुरासुरका नाश किया था, सो मेरा ही कार्य्य था, मैंने ही उस ब्राह्मणोंके शत्रु त्रिपुरासुरको मारनेके लिये अपनी शक्तिद्वारा रुद्रके धनुषको विस्तृत

किया था। मैं ही साधुओंकी रक्षाके लिये युद्ध किया करती हूँ, मैं ही इस विश्व-ब्रह्माण्डके बाहर और भीतर ओत-प्रोत भावसे प्रविष्ट होकर विराजमान हूँ॥ ६॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्द्धन्–
मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वितिष्ठे भुवनानु विश्वो–
तामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि॥ ७॥

अस्य (परमात्मनः) मूर्द्धन् (उपरि कारणभूते) पितरं (आकाशं) अहं सुवे (जनयामि), मम (च) योनिः (कारणं) अप्सु अन्तःसमुद्रे (परमात्मनि), ततः विश्वा (विश्वानि) भुवना (भुवनानि) अनु (अनुप्रविष्टा) (भूत्वा) वितिष्ठे (विविधं व्याप्य तिष्ठामि) उत (अपि च) अमूं द्यां (स्वर्गलोकं) वर्ष्मणा (मायात्मकेन देहेन) उपस्पृशामि॥ ७॥

सब भूतोंका मूल कारणस्वरूप आकाशको मैं ही उत्पन्न करती हूँ, अपने परमात्मरूपसे आकाशादिको प्रकाशित करती हूँ, मैं चैतन्यरूपसे इस भुवनमें परिव्याप्त हूँ। मैं ही प्रकृतिरूपसे सबमें प्रविष्ट हूँ॥ ७॥

अहमेव वात इव प्रवाम्या–
रभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यै–
तावती महिमा सम्बभूव॥ ८॥

अहं एव वातः (वायुः) इव विश्वा (विश्वानि) भुवनानि आरभमाणा (कारणस्वरूपेण उत्पादयन्ती) स्वयं एव प्रवामि (प्रवर्त्ते) परो दिवा (आकाशस्य परस्तात्) एना पृथिवी (अस्याः पृथिव्याः परस्तात्) महिमा (महिम्ना) एतावती सम्बभूव ॥ ८ ॥

मैं स्वयं इस त्रिभुवनकी सृष्टि करके इसके अन्तर और बाहर वायुकी तरह विराजमान हूँ, पृथिवी आदि सब स्थानोंमें ही मैं अपनी महिमासहित अधिष्ठान करती हूँ, किन्तु मैं स्वयं निर्लिप्त हूँ ॥ ८ ॥

इति वैदिक देवीसूक्तम्।

विघ्नोत्सारण और आत्मरक्षण।

देवासुरसंग्रामका विस्तारित वर्णन भूमिकामें आ चुका है। सप्तशती गीताका अनुष्ठान तो महापुण्य कार्य्य है। इसमें आसुरी विघ्न होना सम्भव होता है, अतः यदि साधक सावधान होना चाहे तो निम्न लिखित पद्धतिके अनुसार आत्मरक्षण करके अनुष्ठान प्रारम्भ करे। सकाम साधनके लिये यह विशेष आवश्यकीय है।

मूलं पठन् दिव्यदृष्ट्यावलोकनेन दिव्यान् विघ्नानुत्सारयामि। ॐ फडिति प्रोक्षणेनाऽन्तरिक्षान् विघ्नानुत्सारयामि। ॐ फडिति वामपादपार्ष्णिघातेन भौमान् विघ्नानुत्सारयामि। ॐ अस्त्राय फडिति तालत्रयेण

दिग्बन्धनं कृत्वा ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट् इति मन्त्रेण छोटिकया वह्निप्राकारत्रयं विभाव्य भूतशुध्यादिकं कुर्य्यात् ।

विशेष सिद्धि ।

विशेष सिद्धिकी इच्छा रखनेवाले साधकको निम्नलिखित शास्त्रीय पद्धतिका अनुष्ठान करना उचित है। विशेषतः जब साधारण अनुष्ठानसे फलमें विलम्ब हो तो सिद्ध-महापुरुषोंकी निम्नलिखित पद्धति अनुसरणीय है ।

कृष्णायां वा चतुर्दश्यां अष्टम्यां वा समाहितः ।
ददाति प्रतिगृह्णाति नाऽन्यथैषा प्रसीदति ॥

कृष्णचतुर्दश्यां कृष्णाऽष्टम्यां वा समाहितः एकाग्रः सन् उपासकः निजं सर्वधनं न्यायेनाऽर्जितं देव्यै ददाति समर्पयति । पश्चात् संसारयात्रानिर्वाहार्थं गृहाणेदं द्रव्यं मत्प्रसादभूतमिति देव्या अनुज्ञां मनसा गृहीत्वा तद्द्रव्यं प्रसादबुद्ध्या प्रतिगृह्णाति, गृहीत्वा च तन्मध्ये पञ्चमं भागं गुरवे निवेद्य तत्पुत्रादिभ्यो वा दत्वा चतुर्थं भागं स्वेन क्रियमाणं निष्कामपञ्चमहायज्ञादिधर्मव्ययार्थं नियोजयित्वा अवशिष्टत्रिभागात्मकं स्वार्थे नियोजयेत् । एवं निरन्तरं प्रतिमासं कुर्वन् देव्यधीनो भवति तस्यैषा सप्तशती प्रसन्ना भवति नाऽन्यथेतिभावः ।

चण्डीपाठफलम् ।

चण्डीपाठफलं देवि ! शृणुष्व गदतो मम ।
एकावृत्त्यादिपाठानां प्रत्यहं पठतां नृणाम् ॥
सङ्कल्प्य पूज्यां सम्पूज्य न्यस्याङ्गेषु मनून् सकृत् ।
पश्चाद्बलिप्रदानेन फलमाप्नोति मानवः ॥
उपसर्गोपशान्त्यर्थं त्रिरावृत्तं पठेन्नरः ।
ग्रहदोषोपशान्त्यर्थं पञ्चावृत्तं वरानने ॥
महाभये समुत्पन्ने सप्तवृत्तमुदीरयेत् ।
नवावृत्त्या भवेच्छान्तिर्वाजपेयफलं लभेत् ॥
राजवश्याय भूत्यै च रुद्रावृत्तमुदीरयेत् ।
अर्कावृत्त्या कामसिद्धिर्वैरिनाशश्च जायते ॥
मन्वावृत्त्या रिपुर्वश्यस्तथा स्त्री वश्यतामियात् ।
सौख्यं पञ्चदशावृत्त्या श्रियमाप्नोति मानवः ॥
कलावृत्त्या पुत्रपौत्रधनधान्यागमं विदुः ।
राजभीतिविनाशाय वैरस्योच्चाटनाय च ॥
कुर्यात् सप्तदशावृत्तं तथाष्टादशकं प्रिये ।
महाव्रणविमोक्षाय विंशावृत्तं पठेन्नरः ॥
पञ्चविंशावर्त्तनाच्च भवेद्बन्धविमोक्षणम् ।
सङ्कटे समनुप्राप्ते दुश्चिकित्स्यामये सदा ॥

जातिध्वंसे कुलच्छेदे आयुषो नाश आगते।
वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ धननाशे तथा क्षये॥
तथैव त्रिविधोत्पाते तथा चैवातिपातके।
कुर्यात् यत्नाच्छतावृत्तं ततः सम्पद्यते शुभम्॥
विपदस्तस्य नश्यन्ति ततो याति परां गतिम्।
श्रियो वृद्धिः शतावृत्त्या राजवृद्धिस्तथापरा॥
मनसा चिन्तिता देवी सिध्येदष्टोत्तराच्छतात्।
शताश्वमेधयज्ञानां फलमाप्नोति सुव्रते।
सहस्रावर्त्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा।
भुक्त्वा मनोरथान् कामान् नरो मोक्षमवाप्नुयात्॥
यथाश्वमेधः क्रतुराट् देवानाञ्च यथा हरिः।
स्तवानामपि सर्वेषां तथा सप्तशतीस्तवः॥
अथवा बहुनोक्तेन किमनेन वरानने।
चण्ड्याःशतावृत्तिपाठात् सर्वाःसिध्यन्ति सिद्धयः॥

इति चण्डीपाठफलम्।

सम्पुट चण्डीपाठविधि।

सम्पुटित करनेका नियम यह है कि, जिस मन्त्र-का सम्पुट किया जाता है, चण्डीपाठके पहले और अन्त में एक एक सौ बार उस मन्त्रका जप करना चाहिये

और चण्डीपाठके समय प्रतिश्लोकके आदि और अन्तमें उस मन्त्रका पाठ करना चाहिये । अब जिस मन्त्र-के पाठ करनेसे जैसा फल मिलता है, कात्यायनी-तन्त्रसे उद्धृत करके वह नीचे दिया जाता है।

'त्र्यम्बकं यजामहे' इस मन्त्रसे पुटित करनेसे अपमृत्युका भय नष्ट होता है। 'शरणागतदीनार्त्त' इस मन्त्रसे पुटित करनेसे सर्वकार्यकी सिद्धि होती है। "करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी" इस मन्त्रार्द्धसे पुटित करनेसे सब तरहकी कामनाकी पूर्त्ति होती है। "एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः। " सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः" इस मन्त्रसे पुटित करनेसे अभीष्ट वरकी प्राप्ति होती है। केवल "दुर्गा" मन्त्रसे पुटित करनेसे सब तरहकी विपत्तियोंका नाश होता है। "सर्वा बाधाविनिर्म्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः, मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः" इस मन्त्र के एक लक्ष जपसे मन्त्रकथित फल लाभ होता है। "इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति । तदा तदावतीर्य्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्।" इस मन्त्रके एक लक्ष जपसे महामारीकी शान्ति होती है। "ततो व्रवे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि । अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात्॥" इस मन्त्रके एक लक्ष जपसे पुनः राज्यलाभ होता है। "हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य्य याजगत्" इस मन्त्रका पाठ करते हुए

दीपके साथ बलिदान करनेसे बालग्रहकी शान्ति होती है। 'दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः' इस मन्त्रके पाठ करनेसे सब तरहकी विपत्तियोंका नाश होता है। "ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा। बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥" इस श्लोकका जप करने वाला सबको विमोहित कर सकता है और इस श्लोकके सम्पुट करनेसे यही फल होता है। "रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्" इस श्लोकके जप करनेसे या सम्पुट करनेसे विद्याकी प्राप्ति होती है। "भगवत्या कृतं सर्वं न किञ्चिदवशिष्यते" यह मन्त्र सर्मकामप्रद है और सब तरहकी विपत्तियोंका नाश करनेवाला है। "देवि प्रपन्नार्त्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य" इस मन्त्रके जप करनेसे सब तरहकी आपत्तियोंका नाश और सब वासनाओंकी पूर्णता होती है। प्रति श्लोकको यथा विधिसे सम्पुट करके प्रतिदिन तीन तीन आवृत्ति पाठ करनेसे ४१ एकतालिस दिनमें सब कार्य्यकी सिद्धि होती है। इसी नियमके अनुसारप्रतिदिन १३ तेरह आवृत्ति पाठ करनेसे एक्कीस दिनमें वशीकरण होता है। प्रतिश्लोक "ऐं" इस मन्त्रसे सम्पुट करके शत आवृत्ति पाठ करनेसे विद्याकी प्राप्ति होती है।

अथ चण्डीयाग-प्रकरणम् ।

देवमन्दिरके पास अथवा पवित्र स्थानमें द्वारवेदी से युक्त और ध्वजा तोरणके सहित शास्त्रोक्त मण्डपकी रचना करे । स्नानादि नित्यक्रिया समाप्त करके जितेन्द्रिय, सदाचारी तथा सत्यवादी ब्राह्मणोंका वरण करे। पाँच, सात, नव या ग्यारह दिनमें शतचण्डीयज्ञ समाप्त होना चाहिये । मधुपर्कके विधानानुसार उन व्रती ब्राह्मणोंको जपके लिये आसन, माला और भोजन देना चाहिये । ब्राह्मण ब्रह्मचर्य्य व्रत करते हुए हविष्यान्न भोजन करके भूमिपर शयन करते हुए मन्त्रार्थमें चित्त को निमग्न करके सप्तशतीगीताका पाठ करें और नवार्ण चण्डीकाके मन्त्रका अयुतसंख्या जप करें । दो वर्षसे लेकर दश वर्षतककी कुमारियोंकी अलग अलग पूजा करें । उन कुमारियोंके नाम निम्न लिखित ये हैं ।

दो वर्षकी कन्या का नाम कुमारी, तीन वर्षकी बालिका का नाम त्रिमूर्ति, चार वर्षकी कन्याका नाम कल्याणी, पाँच वर्षकी रोहिणी, छः वर्षकी कालिका, सात वर्षकी चण्डिका, आठ वर्षकी शाम्भवी, नव वर्षकी बालिका दुर्गा, दश वर्षकी बालिका सुभद्रा, इस प्रकार प्रत्येकके नामसे अलग अलग पूजा करनी चाहिये । सनातन धर्म्मके अनुसार मूर्त्ति आदिकी पूजा नहीं की जाती है । मूर्त्ति, पट, अग्नि-जल, स्थण्डिल और कुमारी आदिमें पीठ बना कर सर्व व्यापक देवताकी पूजा उस पीठमें की जाती है ।

पीठके भेद अनेक हैं। कुमारीपूजा जीवयान्त्रिक पीठ-पूजा कहाती है। कुमारीमें देवीका आवाहन करके उसको देवीमय समझा जाता है।

प्रत्येक कुमारीकी पूजा करनेके लिये निम्नलिखित पृथक्-पृथक् मन्त्र हैं।

जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥
त्रिपुरां त्रिपुराधारां त्रिवर्षां ज्ञानरूपिणीम् ।
त्रैलोक्यवन्दितां देवीं त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम् ॥
कालात्मिकां कलातीतां कारुण्यहृदयां शिवाम् ।
कल्याणजननीं देवीं कल्याणीं पूजयाम्यहम् ॥
अणिमादिगुणाधारामकाराद्यक्षरात्मिकाम् ।
अनन्तशक्तिकां लक्ष्मीं रोहिणीं पूजयाम्यहम् ॥
कामाचारीं शुभां कान्तां कालचक्रस्वरूपिणीम् ।
कामदां करुणोदारां कालिकां पूजयाम्यहम् ॥
चण्डवीरां चण्डमायां चण्डमुण्डप्रभञ्जनीम् ।
पूजयामि सदा देवीं चण्डिकां चण्डविक्रमाम् ॥
सदानन्दकरीं शान्तां सर्वदेवनमस्कृताम् ॥
सर्वभूतात्मिकां लक्ष्मीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम् ॥

दुर्गमे दुस्तरे कार्ये भवदुःखविनाशिनीम् ।
पूजयामि सदा भक्त्या दुर्गां दुर्गार्तिनाशिनीम् ।
सुभद्रजननीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम् ।
एतैर्मन्त्रैः पुराणोक्तैस्तां तां कन्यां समर्चयेत् ॥

इस प्रकारसे अलग अलग मंत्रद्वारा विभिन्न अधिकारकी कुमारीको नाना उपचारसे पूजा करना विहित है। कुमारीकी पूजा क्या चण्डीयागमें और क्या चण्डीके अनुष्ठानादिकमें और क्या नित्य नैमित्तिक पाठमें सबमें हितकारी मानी गयी है। एक कुमारी की पूजा करके भी याग करना किसी-किसीके मतमें विहित है। चण्डी-याग पाठात्मक भी हो सकता है और हवनात्मक भी हो सकता है और चण्डीयागके शत-चण्डी, सहस्रचण्डी, अयुतचण्डी और लक्षचण्डी याग-रूपसे कई भेद हैं, सो चण्डी-यागकी विस्तृतपद्धतिमें देखनेयोग्य हैं। चाहे शतचण्डी याग हो चाहे लक्षचण्डी याग हो, साधनका क्रम एक ही है। केवल मंत्र, ब्राह्मण, द्रव्य आदिकी न्यूनाधिकताकी अपेक्षा है। कलियुग-में शतचण्डी याग, सहस्रचण्डी याग आदि यदि विधि-पूर्वक हों, तो बड़ेसे बड़े वैदिक यागका फल प्राप्त हो सकता है ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है।

इति श्री सप्तशती गीताकी पाठ-विधि समाप्त हुई।

ॐ तत्सत् ।

श्री श्रीसप्तशती गीता ।

ॐ नमश्चण्डिकायै ।

ओं ऐं मार्कण्डेय उवाच ॥ १ ॥

सावर्णिः सूर्य्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः ।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच,—सूर्य्यतनयः (सूर्यपुत्रः) सावर्णिः (सवर्णाया अपत्यं), यः अष्टमः मनुः कथ्यते (कथयिष्यते जनैः) तदुत्पत्तिं (तस्य मनोः उत्पत्तिं) विस्तरात् (विस्तरेण) गदतः (कथयतः) मम (सकाशात्) निशामय (शृणु) ॥२॥

मार्कण्डेय मुनिने क्रोष्टुकीसे कहा कि, सूर्य्यपुत्र सार्वणि जो अष्टम मनु कहलावेंगे, उनकी उत्पत्तिका वर्णन मैं विस्तारपूर्वक करता हूँ, तुम सुनो ॥ २ ॥

टीका—पुराण शास्त्र, वेदके भाष्य रूप हैं। जिस प्रकार वेद त्रिकालदर्शी हैं, उसी प्रकार पुराण शास्त्र भी त्रिकाल के विषयों को प्रकट करते हैं । इस कारण यह गाथा

महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः ।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः ॥ ३ ॥

महाभागः सः सावर्णिः महामायानुभावेन (महामायाप्रसादेन) रवेः तनयः (सन्) यथा मन्वन्तराधिपः बभूव (तत् मम सकाशात् शृणु) ॥ ३ ॥

वे महाभाग सावर्णि महामायाकी कृपासे जिस प्रकार सूर्य्यसे जन्म लेकर मन्वन्तरके अधिपति होंगे सो भी कहता हूँ सुनो ॥ ३ ॥

पुराणोंमें प्रकट हुई है। अनादि अनन्त महाकाल नाना प्रकारसे विभक्त किये जाते हैं, यथा—मन्वन्तरसे भगवान् ब्रह्माजीके दिन और आयुका काल अधिक है। उसी प्रकार भगवान् ब्रह्माकी आयुसे भगवान् विष्णुका दिन और आयुका परिमाण बहुत अधिक है। उसी प्रकार भगवान् विष्णुसे भगवान् शिवका दिवस तथा आयु और भी अधिक है। क्योंकि, वे ब्रह्माण्डका प्रलय करनेवाले हैं, उनकी आयुके साथही ब्रह्माण्डकी आयु समझी जाती है। चौदह मन्वन्तरमें भगवान् ब्रह्माका एक दिन होता है। भगवान् मनु कालके नियन्ता देवता हैं। जिस प्रकार वसु, रुद्र, आदित्य, इन्द्र आदि सूक्ष्म दैवराज्यके पद हैं, वैसेही मनु भी स्थायी पद है। केवल पदधारी बदला करते हैं। आठवें मन्वन्तरमें मनुपदपर

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः ।
सुरथो नाम राजाऽभूत् समस्ते क्षितिमण्डले ॥४॥

पूर्वं (पूर्वस्मिन् काले) स्वारोचिषे अन्तरे (स्वारोचिष नामके द्वितीयमन्वन्तरे) चैत्रवंशसमुद्भवः (चैत्रः स्वारोचिषनाम्नः मनोः ज्येष्ठःपुत्रः; तस्य वंशे समुत्पन्नः) सुरथः नाम (प्रसिद्धः) समस्ते क्षितिमण्डले (पृथिवीतले) राजा अभूत् (जातवान्) ॥ ४ ॥

प्राचीन कालमें स्वारोचिष मन्वन्तरमें चैत्रवंशमें उत्पन्न सुरथ नामके राजा सारे भूमण्डलके अधिपति हुए थे ॥ ४ ॥

नवीन अभिषिक्त होनेवाले देवताके पूर्व जन्मका वर्णन इसमें किया गया है। चतुर्दश मनुके नाम यथा,—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि। कालधर्मके पालन करानेमें मनु सदा तत्पर रहते हैं। मनुका अधिकार बहुत बड़ा है ॥ २ ॥

टीका—वेद और पुराणोंमें तीन प्रकारकी वर्णनशैलियाँ प्रचलित हैं। उन वर्णनशैलियोंके नाम समाधि भाषा, लौकिकी भाषा और परकीया भाषा है।

तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तथा ॥५॥
तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डिनः ।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥ ६ ॥

औरसान् पुत्रान् इव सम्यक् प्रजाः पालयतः तस्य (सुरथस्य) कोलाविध्वंसिनः (अनार्य्याः) भूपाः (राजानः शत्रवः बभूवुः तथा (तथा शब्दः पादपूरणे) अतिप्रबलदण्डिनः (अति प्रबलानपि दण्डयितुं सामर्थ्यं यस्य) तस्य (सुरथस्य) तैः (अनार्य्यजातिविशेषैः सह) युद्धम् अभवत् (अभूत्) (ततः) न्यूनैः (अल्पसैन्यैः) अपि तैः कोलाविध्वंसिभिः सः (सुरथः) युद्धे जितः (पराभूतः) ॥ ५-६ ॥

वे अपने औरस पुत्रके समान बड़ी अच्छी तरहसे प्रजाका पालन करते थे, उसी समय कोलाविध्वंसी (अनार्य्यजाति विशेष) राजागण उनके शत्रु हो गये । उन राजाओंके साथ अतिप्रबल पराक्रमी राजा सुरथका युद्ध प्रारम्भ हुआ । उस युद्धमें कोलाविध्वंसी राजागणके सुरथकी अपेक्षा हीनबल होनेपर भी राजा सुरथ ही पराजित हुए ॥ ५-६ ॥

इन तीनोंके विना समझे पुराणशास्त्रका रहस्य समझना असम्भव है । समाधिसे जाननेयोग्य विषय समाधि भाषामें कहे जाते हैं । यथा आत्माका स्वरूप,

ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत् ।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥७॥
अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः ।
कोषो बलञ्चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥ ८ ॥

ततः (अनन्तरं) सः (शत्रुभिः अभिभूतः सुरथः) स्वपुरं (स्वराजधानीं) आयातः (प्रत्यागतः सन्) निजदेशाधिपः (स्वदेशाधिपतिः) अभवत् । तदा (निज राज्ये अपि) तैः प्रबलारिभिः (प्रकृष्ट-शत्रुभिः) सः महाभागः (सुरथः) आक्रान्तः (अभिभूतः कृतः) ॥ ७ ॥
ततः (अभिभवानन्तरं) तत्र स्वपुरे अपि दुष्टैः (अधर्मवर्त्तिभिः) दुरात्मभिः (लोभोपहतबुद्धिभिः) बलिभिः अमात्यैः (मन्त्रिप्रभृतिभिः) दुर्बलस्य (तस्य सुरथस्य) कोषः (धनागारं) बलं (सैन्यं) च अपहृतम् ॥ ८ ॥

अनन्तर सुरथ अपनी नगरीमें आकर केवल अपने देशका शासन करने लगे। तब भी प्रबल शत्रुओंने आकर महाभाग सुरथपर आक्रमण किया। तब (वे नितान्त दुर्बल होगये; इस कारण) दुष्ट दुरात्मा मन्त्रियोंने भी (शत्रुओंके साथ मिलकर) राजकोष और सैन्य-सामन्तादि छीन लिया ॥ ७–८ ॥

प्रकृतिका स्वरूप, कर्मका स्वरूप, धर्माधर्मनिर्णय, इत्यादि । समाधिगम्य अध्यात्म तथा अधिदैव रहस्यों-का जब लौकिक रीतिसे रूपकद्वारा वर्णन करके

ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥ ९ ॥
स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्य्यस्य मेधसः।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥१०॥

ततः (तदनन्तरं) सः भूपतिः (सुरथः) हृतस्वाम्यः (हृताधिपत्यः) (सन्) हयं (अश्वं) आरुह्य एकाकी (सहायरहितः) (सन्) मृगयाव्याजेन (मृगयाच्छलेन) गहनं (अतिदुर्गमं) वनं जगाम (गतवान्) ॥ ९ ॥

सः (सुरथः) तत्र (वने) मेधसः (मेधस् नाम्नः) द्विजवर्य्यस्य (द्विजश्रेष्ठस्य) प्रशान्तश्वापदाकीर्णं (हिंसारहितव्याघ्रादिव्याप्तं) मुनिशिष्योपशोभितम् आश्रमं अद्राक्षीत् (दृष्टवान्) ॥ १० ॥

इस तरह सर्वस्व छिन जानेके कारण राजा सुरथ मृगयाके बहाने घोड़ेपर सवार होकर एकाकी गहन वनको चले गये। वहाँ उस वनमें उन्होंने ब्राह्मणश्रेष्ठ मेधस मुनिका आश्रम देखा। वह आश्रम प्रशान्त, हिंस्रभावरहित पशुओंके द्वारा घिरा हुआ एवं मुनि शिष्योंके द्वारा सुशोभित था ॥ ९-१० ॥

श्रोताकी बुद्धि सत्यमें प्रतिष्ठित की जाती है, उसको लौकिकी भाषा कहते हैं। यथा जगदम्बा-का जन्म, कर्म, विवाह, विलास आदिका बर्ताव,

तस्थौ कश्चित् स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः ।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन् मुनिवराश्रमे ॥ ११ ॥

सः (सुरथः) तेन मुनिना सत्कृतः (सम्मानितः) तस्मिन् मुनिवराश्रमे (मेधसः आश्रमे) इतश्च इतश्च (नानास्थानेषु) विचरन् कश्चित् कालं (व्याप्य) तस्थौ (स्थितवान्) ॥ ११ ॥

राजा सुरथ उन मुनिके आतिथ्यमें इधर-उधर विचरते हुए कुछ समयतक उसी आश्रममें रहे ॥११॥

जो वस्तुतः समाधिगम्य और अलौकिक विषय हो, परन्तु मध्यम अधिकारियोंके लिये लौकिक रीतिसे वर्णन किया गया हो। तीसरी परकीया भाषा वह कहाती है, जिसके द्वारा समाधिभाषा और लौकिकीभाषाके विषयोंको दृढ़ करानेके अर्थ युग-युगान्तर और कल्प-कल्पान्तरकी घटनावलियोंको गाथारूपसे प्रकाशित किया जाय। यह वर्णन वस्तुतः परकीया भाषाका है, कोई लौकिक इतिहास नहीं है । वेदोंको समझने वाले त्रिकालदर्शी महर्षिगणने अपनी योगयुक्त बुद्धिसे जैसे समाधिभाषाको प्रकाशित किया है, वैसे लौकिकभाषा-को किया है और वैसे ही परकीयाभाषाको पुराणोंमें प्रकाशित किया है। ये गाथाएँ लौकिक कहानी अथवा लौकिक इतिहास नहीं हैं, ये सब समाधिगम्य कर्म-रहस्य हैं ॥ ३ ॥

सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टमानसः ॥१२॥

सः (सुरथः) तदा (तस्मिन् काले) तत्र (आश्रमे) ममत्वाकृष्टमानसः (ममत्वाभिमानवशीकृतबुद्धिः) अचिन्तयत् (चिन्तयामास) ॥ १२ ॥

तब वे ममतासे आकृष्ट चित्त होकर इस प्रकार सोचने लगे ॥ १२ ॥

टीका—तपोवनके ये ही दोनों प्रधान लक्षण हैं, कि जहां हिंस्रभावरहित पशुओंका वास हो और मुनियोंका निवास हो । योगशास्त्रका यह सिद्धान्त है कि, जहां वैरभावसे रहित चित्तवाले अहिंसाभावसम्पन्न महात्मा रहते हैं, वहांके हिंसाकारी पशु भी हिंसा छोड़ देते हैं, और भयरहित हो जाते हैं। दूसरी ओर मुनि वे ही कहाते हैं, जिनका मन भगवान्में लीन रहता है। जहां ऐसे महात्माओंका वास हो और हिंस्रपशु हिंसारहित हो जायँ, वही तपोवन कहाता है । साधकको सदा यह स्मरण रखना उचित है ॥ १० ॥

टीका—यद्यपि साधारण रीतिपर धर्म और यज्ञ दोनों पर्य्यायवाचक शब्द हैं, क्योंकि यज्ञ बहुत तरह के हैं, जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है; परन्तु यज्ञका विशेष लक्षण यह है, कि जो शारीरिक, मानसिक आदि धर्मकार्य्य सर्वशक्तिमान् भगवान्की प्रसन्नताके लिये किया जाय और साथ-ही-साथ जो देवलोकके देवताओंके सम्बर्द्धनका कारण हो, उसको

मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत्।
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा॥१३॥
न जाने स प्रधानो मे शूरो हस्ती सदामदः।

हि (विषादे) पूर्वं मत्पूर्वैः (मदीयप्राचीनपुरुषैः) पालितं (रक्षितं) मया हीनं (परित्यक्तं) तत् (प्रसिद्धं) पुरम् असद्वृत्तैः (असच्चरित्रैः) तैः मद्भृत्यैः धर्मतः (न्यायेन) पाल्यते न वा (इति वितर्के)॥ १३॥

सः (प्रसिद्धः) प्रधानः (श्रेष्ठः) सदामदः (सर्वदा मद-स्रावी) मे (मम) शूरो (शूरनामा) हस्ती (गजः) मम

यज्ञ कहते हैं। यही यज्ञरूपी कर्म जब व्यक्ति विशेषके सम्बन्धसे किया जाय, तो यज्ञ कहाता है और जब समस्त जगत्के कल्याणके निमित्त किया जाय तो उसको महायज्ञ कहते हैं। गृहस्थके लिये पाँच महायज्ञ प्रधान हैं, यथा—नित्य ऋषियोंके सम्बर्द्धनके लिये ब्रह्मयज्ञ, देवताओंके सम्बर्द्धनके लिये देवयज्ञ, नित्य-नैमित्तिक पितरोंके सम्बर्द्धनके लिये पितृयज्ञ, जीवमात्रकी तृप्तिके लिये भूतयज्ञ और मनुष्यमात्रकी तृप्तिके लिये नृयज्ञ है। अतिथि-सत्कारके द्वारा नृयज्ञका साधन होता है, इसी कारण इसकी इतनी महिमा है। घरपर आये हुए मनुष्यमात्रका अतिश्रद्धापूर्वक सत्कार करना ही नृयज्ञ है॥ ११॥

मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते ॥१४॥
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः ।
अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ॥१५॥
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ।
सञ्चितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोषो गमिष्यति॥१६॥

वैरिवशं (शत्रुवशं) यातः (प्राप्तः) कान् भोगान् (भोग्यान्) उपलप्स्यते (प्राप्स्यति इति) न जाने। ये नित्यं प्रसादधनभोजनैः मम अनुगताः (सेवकाः) ध्रुवं (वितर्के) अद्य ते (सेवकाः) अन्यमहीभृतां (अन्यनृपतीनां) अनुवृत्तिं (सेवां) कुर्वन्ति । असम्यक् व्ययशीलैः (अतएव) सततं व्ययं कुर्वद्भिः तैः (अमात्यादिभिः) अतिदुःखेन (कष्टेन) संचितः सः कोषः (धनराशिः) क्षयं (नाशं) गमिष्यति (प्राप्स्यति) ॥ १४-१६ ॥

जिस पुरीका पालन मेरे पूर्वजोंने किया था, मेरे चले आनेके बाद उसका पालन क्या हमारे दुष्ट सेवक गण धर्मानुसार करते होंगे ? मेरा वह सदा मदस्रावी शूर नामका प्रधान हस्ती शत्रुके वशमें जाकर किन-किन भोगोंको प्राप्त करता होगा ? जो सेवकगण हमारी प्रसन्नता और मेरेद्वारा दिये हुए धन-भोजनसे संतुष्ट होकर हमारे अनुगत थे, वे आज अवश्य ही अन्यकी सेवा कर रहे होंगे ॥ १३-१५ ॥

एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः।
तत्र विप्राश्रमाभ्यासे वैश्यमेकं ददर्श सः॥ १७॥
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः।
सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे॥ १८॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम्।

पार्थिवः (राजा सुरथः) एतत् (पूर्वोक्तं) अन्यत् च चिन्तयामास (चिन्तितवान्) (ततः) तत्र आश्रमाभ्यासे (आश्रमनिकटे) एकं वैश्यं ददर्श। तेन (सुरथेन) स वैश्यः पृष्टः, भोः (सम्बोधने) त्वं कः, अत्र (आश्रमे) आगमने तव विशेषः हेतुः च कः, त्वं सशोकः (शोकयुक्तः) इव, दुर्मना इव च कस्मात् लक्ष्यसे॥ १८॥

सः वैश्यः तस्य भूपतेः (राज्ञः) प्रणयोदितम् इति (पूर्वोक्तं) वचः (वाक्यं) आकर्ण्य (श्रुत्वा) प्रश्रया-

---

अनियमित खर्च करनेवाले मन्त्रीगण सतत व्यय करके अति दुःखसे संचय किया हुआ हमारा धनागार नष्ट कर डालेंगे॥ १६॥

राजा सुरथ इस प्रकार एवं नाना प्रकारसे चिन्ता कर रहे थे; ऐसे समयमें उस आश्रमके निकट एक वैश्यको देखा॥ राजा सुरथने उस वैश्यसे पूछा, कि आप कौन हैं? किसलिये यहां आये हैं? आप चिन्तित एवं शोकाकुल क्यों दिखायी देते

प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥ १९ ॥

वैश्य उवाच ॥ २० ॥

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ।
पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः ॥ २१ ॥
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् ।

वनतः (विनयेन अवनतः) (सन्) तं नृपं प्रत्युवाच (प्रत्युत्तरं दत्तवान्) ॥ १९ ॥

वैश्य उवाच, अहं समाधिः नाम (प्रसिद्धः) वैश्यः (वैश्यजातीयः) धनिनां कुले (वंशे) उत्पन्नः (जातः) । धनलोभात् असाधुभिः पुत्रदारैः निरस्तः (निर्वासितः) ॥ २०-२१ ॥

मे (मम) धनम् आदाय (गृहीत्वा) दारैः पुत्रैः आप्तबन्धुभिः सुहृदादिभिः च निरस्तः (निर्वासितः)

हैं ? ॥ राजाके इस प्रेमपूर्ण वचनको सुनकर उस वैश्यने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया ॥ १७-१९ ॥

वैश्यने कहा, मैं समाधि नामक वैश्य हूं । धनवान् कुलमें मेरा जन्म हुआ था, किन्तु असद्वृत्तिसम्पन्न स्त्री-पुत्रोंने धन लोभसे लुब्ध होकर मुझको घरसे निकाल दिया है ॥ स्त्री पुत्रादिने मेरा धन छीन लिया;

वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः ॥ २२ ॥
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम्।
प्रवृत्तिं स्वजनानाञ्च दाराणांचात्र संस्थितः॥२३॥
किन्नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किन्नु साम्प्रतम्।
कथन्ते किन्नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किन्नु मे सुताः॥२४॥

(अतः) धनैः विहीनः (त्यक्तः) दुःखी (अहं) वनं अभ्यागतः। अत्र (वने) संस्थितः (उषितः) सः अहं पुत्राणां स्वजनानां दाराणां (स्त्रीणां) च कुशलाकुशलात्मिकां (शुभाशुभमयीं) प्रवृत्तिं (वार्त्ताम्) न वेद्मि (जानामि)। साम्प्रतं (इदानीं) तेषां (पुत्रादीनां) गृहे क्षेमं (मङ्गलं) किन्नु ? (प्रश्ने) अक्षेमं (अमङ्गलं) किन्नु ? मे (मम) ते सुताः कथं (कीदृग्विधाः) सद्वृत्ताः (सच्चरित्राः) किन्नु ? दुर्वृत्ताः (दुःशीला) किन्नु ? ॥ २२-२४ ॥

मैं पुत्र कलत्रविहीन एवं मित्रोंसे परित्यक्त होकर वनमें चला आया हूं। मैं यहाँ रहकर पुत्र-स्त्री तथा अपने स्वजनोंका शुभाशुभ समाचार कुछ नहीं जान सकता हूं कि हमारे पुत्रादि इस समय सकुशल हैं. अथवा अकुशल हैं, वे सद्वृत्तिपरायण बन गये हैं अथवा दुर्वृत्तिपरायण ही हैं ॥ २०-२४ ॥

राजोवाच ॥ २५ ॥

यैर्निरस्तो भवांल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः ।
तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ॥ २६ ॥

वैश्य उवाच ॥ २७ ॥

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः ।
किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः ॥२८॥

राजा उवाच,—यैः लुब्धैः पुत्रदारादिभिः धनैः (धन-निमित्तं) भवान् निरस्तः (निर्वासितः), तेषु (पुत्रदारा-दिषु) भवतः मानसं (मनः) किं (किमर्थं) स्नेहं (प्रेम) अनुबध्नाति (करोति) ॥ २५-२६ ॥

वैश्य उवाच,—भवान् अस्मद्गतं (मद्विषयकं) एतत् वचः (वाक्यं) यथा प्राह (कथयति) तत् एवं (ईदृशम् एव) (किन्तु) मम मनः निष्ठुरतां (कार्कश्यं) न बध्नाति (भजते), (अत्र विषये) किं करोमि ॥२७ २८॥

राजा ने कहा, कि जिन धनलोभी स्त्री-पुत्रोंने आपको घरसे निकाल दिया है, उन्हीं लोगोंके लिये आपका मन इतना विकल क्यों है ? ॥ २५-२६ ॥

वैश्य बोला—आपने जो मेरे सम्बन्धमें कहा है, वह बिलकुल सत्य है, किन्तु मैं क्या करूँ, मेरा चित्त किसी प्रकार भी उन लोगोंके प्रति निष्ठुर नहीं होता है ॥ २७-२८ ॥

यैः सन्त्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः ।
पतिस्वजनहार्दञ्च हार्दि तेष्वेव मे मनः ॥ २९ ॥
किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते !
यत् प्रेम-प्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु ॥ ३० ॥
तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते ।

यैः धनलुब्धैः (पुत्रदारादिभिः) पितृस्नेहं पतिस्वजनहार्दं (स्वामिबन्धुगतप्रेम) च संत्यज्य (त्यक्त्वा) निराकृतः (गृहात् निःसारितः), तेषु (पुत्रदारादिषु) एव मे मनः हार्दि (स्नेहयुक्तम्) ॥ २९ ॥

हे महामते ! विगुणेषु (गुणरहितेषु) अपि बन्धुषु (पुत्रादिषु) चित्तं यत् प्रेमप्रवणं (प्रेमाधीनं), एतत् किम् ? (एतत् अयुक्तमित्यर्थः), इति जानन् अपि न अभिजानामि ॥ ३० ॥

तेषां (पुत्रादीनां) कृते (निमित्तं) मे निःश्वासः दौर्मनस्यं (मनोवैकल्यं) च जायते । अप्रीतिषु (प्रीति-

---

जिन्होंने धनके लोभसे पितृस्नेह एवं पतिस्वजन-प्रेमका परित्याग करके मुझको निकाल दिया है, उन्हीं लोगोंके लिये हमारा अन्तःकरण प्रेमयुक्त हो रहा है । हे महामते राजन् ! आपने जो कहा, वह मैं समझता हूं, तथापि न जाने क्यों हमारा चित्त

करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ॥ ३१ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ३२ ॥

ततस्तौ सहितौ विप्र ! तं मुनिं समुपस्थितौ ।
समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ॥ ३३ ॥
कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथाऽर्हन्तेन संविदम् ।

रहितेषु) (अपि) तेषु (मम) मनः यत् निष्ठुरं न (भवति), अत्र किं करोमि ? ॥ ३१ ॥

मार्कण्डेय उवाच,—हे विप्र ! ततः (अनन्तरं) सहितौ (मिलितौ) तौ असौ समाधिर्नाम वैश्यः स च पार्थिव-सत्तमः (नृपश्रेष्ठः) तं मुनिं समुपस्थितौ ॥ ३२—३३ ॥

तौ वैश्यपार्थिवौ यथान्यायं (यथाविधि) यथार्हं (यथायोग्यं) तेन (मुनिना सह) संविदं (सम्भाषणं)

उन गुणरहित स्वजनोंके प्रति प्रेमासक्त हो रहा है, इसका कारण समझमें नहीं आता । उन्हीं लोगोंके लिये मेरा दीर्घ निःश्वास आता रहता है और दौर्मनस्य उत्पन्न होता है; उन प्रेमरहित सम्बन्धियोंके प्रति हमारा चित्त किसी प्रकार ममता-रहित नहीं होता है, अत एव मैं क्या करूं ? ॥ २९-३१ ॥

मार्कण्डेयने कहा,-हे विप्र ! इसी प्रकार बात-चीत-के अनन्तर समाधिनामक वैश्य और नरपतिश्रेष्ठ सुरथ मिलकर मेधस् मुनिके निकट गये ॥ ३२—३३ ॥

वे दोनों ही यथानियम यथायोग्य प्रणाम

उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥ ३४ ॥

राजोवाच ॥ ३५ ॥

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत्।
दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना ॥ ३६ ॥

कृत्वा उपविष्टौ (सन्तौ) काश्चित् कथाः चक्रतुः (प्रस्तावयामासतुः) ॥ ३४ ॥

राजा उवाच,—हे भगवन् ! (अहं) त्वाम् एकं (विषयं) प्रष्टुम् इच्छामि, (त्वं) तत् वदस्व (कथयस्व)। यत् मे (मम) स्वचित्तायत्ततां विना मनसः दुःखाय भवति (एतत् किम् ?) ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

शिष्टाचार करके बैठनेके अनन्तर मुनिसे नाना प्रकारके प्रश्न करने लगे ॥ ३४ ॥

राजा ने कहा,—भगवन् ! आपसे मैं एक विषय पूछना चाहता हूं, जो मेरा चित्त मेरे वशमें न होनेसे मेरे मनके दुःखका कारण हो रहा है, यह क्या है ? सो आप बतलाइए ॥ ३५—३६ ॥

टीका—वर्णधर्म प्रवृत्तिरोधक है और आश्रमधर्म निवृत्तिपोषक है। चारों वर्णोंमेंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य ये ही द्विज कहाते हैं, और इनका वेद और वैदिक कर्ममें अधिकार भी है । ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य इन तीनों

ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि।
जानतोऽपि यथाऽज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम ! ॥ ३७ ॥
अयं च निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः।

हे मुनिसत्तम ! जानतः (ज्ञातवतः) अपि मम अज्ञस्य (मूर्खस्य) यथा (इव) राज्यस्य (राज्ये) अखिलेषु राज्याङ्गेषु (स्वाम्यादिषु) अपि ममत्वं (स्वकीयत्वाभिमानः) (यद् भवति) एतत् किम् ? ॥ ३७ ॥

(न केवलम् अहं) अयं (वैश्यः) च पुत्रैः निकृतः (निराकृतः) तथा दारैः भृत्यैः उज्झितः (त्यक्तः) स्वजनेन

मैं ज्ञानवान् होकर भी अज्ञानियोंकी भाँति राज्य एवं राज्याङ्गोंमें ममता-वश हो रहा हूं, इसका क्या कारण है। यह वैश्य भी पुत्र-स्त्रीद्वारा निकाल दिये जाने एवं सेवकों और स्वजनोंके द्वारा

व्यक्तियोंको इस प्रकारसे कर्मविपाकद्वारा एक ही देश-कालमें लाकर कर्मनियन्त्री श्री जगदम्बाने तीनोंका अधिकार तथा क्षत्रिय और वैश्यमें किस प्रकार भय और मोह आदि उत्पन्न हो सकता है, इत्यादि दिखाकर अधिकार निर्णयार्थ यह प्रसङ्ग दिखाया है ॥ ३४ ॥

स्वजनेन च सन्त्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति ॥ ३८ ॥
एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ ।
दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ ॥ ३९ ॥
तत् किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ।
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ॥ ४० ॥

(बन्धुना) च संत्यक्तः, तथापि तेषु (पुत्रादिषु) अति हार्दी (स्नेहवान्) भवति ॥ ३८ ॥

एवं (उक्तप्रकारेण) एषः (वैश्यः) तथा अहं च दृष्टदोषे (अनुभूतदोषे) अपि विषये ममत्वाकृष्ट-मानसौ द्वौ अपि अत्यन्तदुःखितौ ॥ ३९ ॥

हे महाभाग ! ज्ञानिनोः मम अस्य (वैश्यस्य) च आवयोः यत् मोहः एतत् केन (हेतुना) (भवतीत्यर्थः) (वस्तुतः) विवेकान्धस्य (विवेकरहितस्य) एषा मूढता भवति (भवितुं युक्ता) ॥ ४० ॥

परित्यक्त किये जानेपर भी उन्हीं लोगोंके लिये अत्यन्त मोहासक्त होरहा है। इसी प्रकार यह वैश्य और मैं विषयका दोष देखकर भी ममत्वद्वारा आकृष्टचेता हो अत्यन्त दुःखित हो रहा हूँ। हे महाभाग ! हमलोग ज्ञानी होकर भी मोहित हो रहे हैं, इसका कारण क्या है सो आप बतलाइये ॥ ३७-४० ॥

ऋषिरुवाच ॥ ४१ ॥

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ।
विषयाश्च महाभाग ! यान्ति चैवं पृथक् पृथक् ॥४२॥
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथाऽपरे ।
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ॥ ४३ ॥

ऋषिःउवाच,समस्तस्य जन्तोः (प्राणिनः) विषयगोचरे (विषयग्रहणे) (कर्त्तव्ये) ज्ञानम् अस्ति, हे महाभाग ! विषयाः च एवं(वक्ष्यमाणप्रकारेण)पृथक् पृथक् यान्ति।४१-४२।

केचित् प्राणिनः (पेचकादयः) दिवान्धाः (दिवसे चाक्षुषज्ञानरहिताः) तथा अपरे (काकादयः) रात्रौ अन्धाः, केचित् (किंचुलुकादयः) दिवा तथा रात्रौ अन्धाः, (केचित् मार्ज्जारादयः) प्राणिनः तुल्यदृष्टयः (दिवारात्रौ समदर्शिनः) ॥ ४३ ॥

मनुजाः (मनुष्याः) ज्ञानिनः (इति) सत्यम् एव,किन्तु केवलं ते (मनुष्याः) एव ज्ञानिनः (इति) न, यतः (कार-

ऋषिने कहा,—सब प्राणिमात्रको ही विषय सम्बन्धीय ज्ञान है। हे महाभाग ! विषय भी पृथक् पृथक् होते हैं। देखो, कितने ही प्राणी (उलूकादि) दिनको देख नहीं सकते, कितने ही प्राणी (काकादि) रात्रिमें अन्धे हो जाते हैं, कुछ प्राणी (किञ्चुलुकादि) दिन और रातमें भी अन्धे होते हैं और कितने प्राणी (बिल्ली आदि) दिन और रात्रिमें समानरूपसे देख सकते हैं ॥ ४१—४३ ॥

ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किन्तु ते न हि केवलम् ।
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः ॥ ४४ ॥
ज्ञानञ्च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् ।

णात्) हि सर्वे पशु-पक्षि-मृगादयः (अपि) ज्ञानिनः (आहार मिथुनादिविषयकं ज्ञानं मनुष्यपश्वादि साधारणम् अतो मनुष्याणां न कोऽपि विशेष इति भावः) ॥ ४४ ॥

तेषां (मृगपक्षिणां) यत् ज्ञानं, मनुष्याणां च (अपि ज्ञानं) तत् (तथाविधं), मनुष्याणाम् यत् (ज्ञानं) तेषां (पश्वादीनां) (अपि तत्),अन्यत् (आहारादिकं) (अपि)

मनुष्य ज्ञानवान् हैं, यह सत्य है परन्तु केवल मनुष्य ही क्यों, पशु, पक्षी, मृगादि भी विषयोंके ज्ञान प्राप्त करते हैं, अतएव उनको भी ज्ञानी कहा जा सकता है। इसी प्रकार मनुष्योंको जिसतरहका ज्ञान है, मृग-पक्षियोंको भी वही ज्ञान है, पुनः मृग-पक्षियोंको जो

टीका—अहंकारजनित ज्ञानाभिमान जो आसुरी वृत्ति है, उसमें और यथार्थ तत्त्वज्ञानमें कितना भेद है, सो ही मुनिने अपने उपदेशद्वारा दिखाया है ॥ ४४ ॥

टीका—आहार, निद्रा, भय, मैथुन, इन्द्रियविषय-सम्बन्धीय ज्ञान और इन्द्रिय-सुखकी इच्छा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि जीवकी सहजात वृत्तियाँ सभी प्राणियोंमें हैं, भेद इतना ही है, कि वृक्ष आदि उद्भिज्ज और क्रीमि-कीट आदि स्वेदज जीवोंमें

मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः ॥ ४५ ॥
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतगाञ्छावचंचुषु ।
कणमोक्षादृतान् मोहात् पीड्यमानानपि क्षुधा ॥ ४६ ॥
मानुषा मनुजव्याघ्र ! साभिलाषाः सुतान् प्रति ।

उभयोः(तीर्य्यङ्मनुष्ययोः)तथा(तथैव)तुल्यं(समानम्)॥४५॥

ज्ञाने सति अपि मोहात् (विशेषज्ञानाभावात्) क्षुधा पीड्यमानान् अपि शावचंचुषु (अपत्यचंचुषु) कण-मोक्षादृतान् (आहारदाने सादरान्) एतान् पतंगान् (पक्षिणः) पश्य ॥ ४६ ॥

हे मनुजव्याघ्र ! (मनुष्यश्रेष्ठ !) एते मानुषाः प्रत्यु-पकाराय (चरमावस्थायां निजपरिपालनार्थाय) लोभात्

ज्ञान है, मनुष्योंको भी वह ज्ञान है। यह देखो, ज्ञान रहते हुए भी पक्षीगण स्वयं क्षुधातुर होनेपर भी मोहवश बड़े स्नेहसे अन्नादिके कण अपने बच्चोंके चञ्चुमें दे देते हैं। हे मनुष्यश्रेष्ठ ! क्या तुम देखते नहीं हो कि, मनुष्यगण अन्तिम समयमें प्रत्युपकार पानेके

ये वृत्तियाँ अस्पष्ट रहती हैं और पक्षी आदि अण्डज एवं व्याघ्र, गो, हस्ती आदि जरायुज जीवोंमें ये वृत्तियाँ स्पष्ट दिखायी देने लगती हैं। मनुष्योंमें भी ये ही सब वृत्तियाँ हैं । मनुष्य अपने धैर्य्य-विचारादिसे उनको छिपा सकता है, परन्तु यह सिद्ध है, कि ये वृत्तियाँ सभी प्राणीमें समान रूपसे हैं । मुनिवरके उपदेशका

लोभात् प्रत्युपकाराय नन्वेतान् किं न पश्यसि ॥ ४७ ॥
तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्त्ते निपातिताः ।
महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणः ॥ ४८ ॥

(कारणात्) सुतान् प्रति साभिलाषाः (सस्नेहाः) ननु (भोः) एतान् किं न पश्यसि ? ॥ ४७ ॥

तथापि (मनुष्याणां स्वकीयहितानुसन्धानेऽपि) संसारस्थितिकारिणः (विष्णोः) महामायाप्रभावेण ममतावर्त्ते मोहगर्त्ते (देहाद्यभिमानरूपे गर्ते) निपातिताः (भवन्ति) ॥ ४८ ॥

लोभसे पुत्रादिकोंके प्रति सर्वदा स्नेहयुक्त हुआ करते हैं । तथापि जगत्के पालन करनेवाले भगवान्की मायाके प्रभावसे ही प्राणिमात्र ममताके फन्देमें फँसकर मोहके गड्ढेमें गिरते हैं इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है क्योंकि भगवान् विष्णुकी योगनिद्रारूपो महामायाके प्रभाव से ही जगत् ऐसा मोहित हो रहा है ।

यह तात्पर्य है कि, इस विचारसे साधारण मनुष्य एक प्रकारका पशु ही है, और महाराज सुरथने जो अपने ज्ञानका अभिमान प्रकट किया है, सो उनका वह ज्ञान पशुओंके इन्द्रिय-सम्बन्धीय ज्ञानके समान ही है । वस्तुतः वे ज्ञानी नहीं हैं, वे मोहमोहित जीव हैं, ऐसा उनको समझाकर उनके अहङ्कारको दबाकर सच्चा जिज्ञासु बनानेके लिये मुनिवरका यह उपदेश था ॥ ४५–४७ ॥

तन्नात्र विस्मयः कार्य्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ।
महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत् ॥ ४९ ॥
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥ ५० ॥
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ।
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ॥ ५१ ॥

तत् (तस्मात्) तया (महामायया) एतत् जगत् संमोह्यते, अत्र (विषये) विस्मयः न कार्य्यः, यतः जगत्-पतेः हरेः अपि एषा महामाया योगनिद्रा (योगरूपा निद्रा स्वकार्य्यात् प्रच्याव्य निद्रारूपेण वशीकृतवती का कथा अज्ञानिनाम्) ॥ ४६ ॥

देवी (सर्वेन्द्रियप्रकाशशीला) भगवती (अचिन्त्यैश्वर्य्यशालिनी) महामाया ज्ञानिनां अपि चेतांसि बलात् आकृष्य हि मोहाय प्रयच्छति (सम्मुग्धानि करोति) ॥५०॥

तया (महामायया) चराचरं एतत् विश्वं (समस्तं) जगत् विसृज्यते, सा एषा (महामाया) प्रसन्ना (सती) नृणां मुक्तये वरदा (वरदात्री) भवति ॥ ५१ ॥

सा (महामाया) परमा विद्या (स्वस्वरूपप्रकाशन-लक्षणा) मुक्तेः हेतुभूता (कारणस्वरूपा) सनातनी

वे ज्ञानियोंके भी चित्तको बलात् खींचकर मोहित कर देती हैं। उन्हींके द्वारा सब चराचर (स्थावर एवं अस्थावर) जगत्की उत्पत्ति होती है, वे ही

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥ ५२ ॥

राजोवाच ॥ ५३ ॥

भगवन् ! का हि सा देवी महामायेति यां भवान् ।
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज ! ॥५४॥

(नित्या) सा एव संसारबन्धहेतुः, (अतएव) सर्वेश्वरेश्वरी (ब्रह्मादीनामपि नियन्त्री) ॥ ५२ ॥

राजा उवाच—हे भगवन् ! हि भवान् महामाया इति यां ब्रवीति, सा देवी का, सा कथं उत्पन्ना ? हे द्विज ! अस्याः (महामायायाः) च किं कर्म ? ॥ ५३–५४ ॥

प्रसन्न होकर जीवोंको मुक्ति प्रदान करती हैं, वे ही परमा विद्या जीवोंकी मुक्तिकी हेतु हैं, और बंधनका भी कारण हैं। वे ही सर्वेश्वरकी भी ईश्वरी हैं ॥४४-५२॥

राजा ने कहा—भगवन् ! आप जिनको महामाया कह रहे हैं, वे देवी कौन हैं ? उनकी उत्पत्ति कैसे हुई ? उनका

टीका—त्रिगुणमयी ब्रह्मशक्ति अपने तमोगुणके प्रभावसे अविद्यारूप धारण करके जीवको बन्धन-दशामें पहुंचाती हैं। वे ही सत्त्वगुणमयी होकर 'विद्यारूप धारण करती हुई जीवको मुक्तिपदमें पहुंचा देती हैं। वे ही कारणशक्तिरूपिणी होकर ब्रह्मा-विष्णु-महेशरूपी त्रिदेवको प्रत्येक ब्रह्माण्डके सृष्टि-स्थिति-लयके लिये प्रसव करती हैं ॥ ५२ ॥

यत्स्वभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ।
तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥ ५५ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ५६ ॥

नित्यैव सा जगन्मूर्त्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ।
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ॥ ५७ ॥

हे ब्रह्मविदांवर (ज्ञानिश्रेष्ठ !) सा देवी यत्स्वभावा, यत्स्वरूपा, यदुद्भवा च, तत् सर्वं त्वत्तः श्रोतुं इच्छामि ॥ ५५ ॥

ऋषिः उवाचः—सा (महामाया) नित्या एव, जगन्मूर्त्तिः (जगत् एव तस्याः मूर्त्तिः) तया (महामायया) इदं सर्वं ततम् (व्याप्तं) तथापि तत्समुत्पत्तिः (तस्याः महामायायाः आविर्भावः) मम (सकाशात्) बहुधा श्रूयताम् ॥ ५६-५७ ॥

कार्य्य क्या है ? हे ज्ञानिश्रेष्ठ ! उन देवीका स्वभाव कैसा है, उनका स्वरूप कैसा है; ये सब आपसे मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ५३--५५ ॥

ऋषिने कहा—यद्यपि वे नित्या हैं, जगत्रूपिणी हैं और उन्हींके द्वारा सब परिव्याप्त हैं, तथापि उनकी उत्पत्ति बहु प्रकारसे होती है सो तुम हमारे निकट

देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ॥ ५८ ॥

सा (महामाया) देवानां कार्य्यसिद्ध्यर्थं यदा आविर्भवति (प्रत्यक्षीभवति) तदा (तस्मिन् समये) नित्या अपि सा (महामाया) उत्पन्ना इति अभिधीयते (कथ्यते) ॥ ५८ ॥

श्रवण करो। देवताओंकी कार्य्य-सिद्धिके लिये वे जब आविर्भूत होती हैं, तभी लोग नित्या होनेपर भी उनको "उत्पन्ना" ऐसा कहते हैं ॥ ५६-५८ ॥

टीका-ब्रह्मरूपिणी ब्रह्मशक्ति क्या हैं, कैसे वे स्थूल, सूक्ष्म, कारण और तुरीय रूपको प्राप्त करती हैं, उन रूपोंका विज्ञान क्या है, सो पहले ही भलीभाँति कहा गया है। वे सब उनके नित्य-लीला-मय भाव हैं। उनका नैमित्तिकरूप समय समयपर जगत् और भक्तके कल्याणार्थं सूक्ष्मजगत् और स्थूलजगत्में किसी निमित्तके अवलम्बनसे प्रकट होता है। इसी सप्तशती गीतामें दोनोंका उदाहरण मिलेगा। भक्तोंके लिये आविर्भाव, यथाः—राजा सुरथ और वैश्य समाधिके लिये हुआ था, एवं जगत्के लिये आविर्भाव यथाः-तीन प्रधान चरित्र, जिससे यह सप्तशती गीता पूर्ण है। अर्थात् देवलोकमें ये ही तीनों रूप प्रथम मधुकैटभ वधके समय, दूसरा महिषासुरवधके समय और तीसरा शुम्भ-निशुम्भके

योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ।
आस्तीर्य्य शेषमभजत् कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ॥ ५९ ॥

तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ।
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ॥ ६० ॥

भगवान् प्रभुः विष्णुः कल्पान्ते जगति एकार्णवीकृते (एकसमुद्रायमाणे) शेषं (अनन्तदेवं) आस्तीर्य्य (शय्यां कृत्वा) यदा योगनिद्रां अभजत्, तदा घोरौ (भयानकौ) विख्यातौ मधुकैटभौ (मधुकैटभनामानौ) द्वौ असुरौ विष्णुकर्णमलोद्भूतौ (विष्णुकर्णमलात् जातौ) (सन्तौ) ब्रह्माणं हन्तु उद्यतौ (बभूवतुः) ॥ ५९-६० ॥

जब भगवान् प्रभु विष्णु जगत्के जलमग्नकी अवस्थामें अनन्तशय्यापर योगनिद्रामें निद्रित थे, उस समय मधु एवं कैटभ नामसे प्रसिद्ध भयानक दो

वधके समय प्रकट हुआ था । वह अरूपिणी, वाङ्-मनो-बुद्धिसे अगोचरा सर्व व्यापक ब्रह्मशक्ति भक्तोंके कल्याणके निमित्त अथवा समष्टिरूपसे जगत्कल्याणके निमित्त अलौकिक दिव्यरूपमें प्रकट हुआ करती हैं । सर्वशक्ति-मयीके लिये असम्भव कुछ भी नहीं है ॥ ५७ ॥

स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ।
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् ॥ ६१ ॥

सः प्रभुः प्रजापतिः ब्रह्मा विष्णोः नाभिकमले स्थितः (सन्) उग्रौ (भयानकौ) तौ असुरौ दृष्ट्वा,

असुर विष्णुके कर्णमलसे उत्पन्न होकर ब्रह्माको मारनेके लिये उद्यत हुए; तब भगवान् विष्णुके नाभिकमलमें

टीका—सृष्टिके चार भेद हैं, यथा-पहली अद्वितीय निर्गुण ब्रह्मावस्थासे जब सगुण भावकी उत्पत्ति होकर सगुण ब्रह्मसे ब्रह्माण्डगोलककी उत्पत्ति होती है, वह प्राकृतिक सृष्टि कहाती है। दूसरी जब पिण्डसृष्टि प्रारम्भ होती है, जिसके कारण भगवान् ब्रह्मा हैं, वह ब्राह्मीसृष्टि कहाती है। तीसरी प्रजापतियोंके संकल्पसे जो विचित्र सृष्टि होती है, उसको मानस सृष्टि कहते हैं। और हर समय स्त्री-पुरुषके सम्बन्धसे जो सृष्टि होती रहती है, वह मैथुनी सृष्टि कहाती है यह चाथी है। प्रकृत विषय ब्राह्मीसृष्टिके समयका है। एक ब्रह्माण्डको उत्पन्न करनेवाले जो समष्टि संस्कारपुञ्ज हैं, वही जगत्की एकार्णव अवस्था है। शास्त्रोंमें कहीं कहीं इसीको कारण वारि भी कहा है। अनन्तशय्या अनन्त महाकाश-बोधक है। आकाशतत्त्वसे परे ही ज्ञानस्वरूप आत्माका अनुभव होता है। वही "तद् विष्णोः परमं पदम्" श्रुति

तुष्टाव योगनिद्रांतामेकाग्रहृदयस्थितः ॥ ६२ ॥
विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम् ।

जनार्द्दनं (विष्णुं) च प्रसुप्तं (दृष्ट्वा) एकाग्रहृदये स्थितः (तदेकमनाः सन्) हरेः (विष्णोः) विबोधना-

अवस्थित प्रजापति ब्रह्मा दोनों भयानक असुरोंको देख एवं विष्णुको सोते हुए देखकर एकाग्रचित्त

प्रतिपाद्य भाव है। उस अवस्थाका बोधक जो सत्त्वगुण है, उसके अधिष्ठाता देव भगवान् विष्णु हैं। यही श्री विष्णु भगवान्के आध्यात्मिक और आधिदैविक रूपका विज्ञान है। समाधिगम्य सब विषय त्रिभावात्मक होते हैं, इसी कारण वेद और वेद-सम्मत शास्त्रोंके सब वर्णनके तीन तरहके अर्थ हुआ करते हैं। उसी नियमके अनुसार वेदके सब मन्त्र और भगवद्गीता तथा सप्तशती गीता आदि शास्त्र अध्यात्म, अधिदैव और अधि-भूत, तीनों भावोंसे पूर्ण हैं। श्रीभगवान् विष्णुका अध्या-त्मरूप व्यापक आकाशसे परे चिन्मय स्वरूप है, जैसा कि ऊपर कहा गया है। यावत् सत्त्वगुण व्यापी अधिष्ठातृ देवभाव ही उनका अधिदैव स्वरूप है और शास्त्रोक्त जो ध्यानमय रूप है, अर्थात् जिस रूपमें वे भक्तको दर्शन दिया करते हैं, वह उनका अधिभूत रूप है। कोई कोई अध्यात्मरूपका ही वर्णन करते हैं, इसका यह तात्पर्य नहीं है, कि उनके अन्य दोनों रूप नहीं हैं। वस्तुतः

विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ॥ ६३ ॥

र्थाय (जागरणार्थं) हरिनेत्रकृतालयां (विष्णुनयनकृताश्रयां) विश्वेश्वरीं (सर्वनियन्त्रीं) जगद्धात्रीं

हो भगवान्को जगानेके लिये उनके नेत्रोंको आश्रय करनेवाली, जगत्कर्त्री स्थिति-संहारकारिणी चैतन्य-

तीनों रूप ही सत्यमूलक हैं। ब्राह्मीसृष्टि प्रारम्भ होते समय रजोगुणका प्राधान्य होनेके कारण ब्रह्माजी ही जाग्रत रहते हैं, क्योंकि वे रजोगुणके अधिष्ठाता देव हैं। उस समय भगवान् विष्णुका योगनिद्रामें निद्रित होना भी स्वाभाविक है क्योंकि, रजोगुण के प्राधान्यमें सत्त्वगुण गौण रहता है। भगवान् ब्रह्माका अध्यात्मरूप चिदाकाशावच्छिन्न एक ब्रह्माण्डका समष्टि अन्तःकरण है। इस कारण समष्टि अन्तःकरण चतुष्टय (मन आदि) बोधक उनके चार मुखका वर्णन पुराणोंमें पाया जाता है। यावत् रजोगुणका अभिमानी देवता ही उनका अधिदैव स्वरूप है। और जिस रूपसे भगवान् ब्रह्मा भक्तोंको दर्शन देते हैं, वह उनका अधिभूत रूप है। सनातनधर्मके दार्शनिक सिद्धान्तके अनुसार समष्टि कर्मविभाग बिना दैवी सहायताके संचालित नहीं हो सकता है। इसी विज्ञानके अनुसार यावत् स्थावर नदी, पर्वतादि और जंगम उद्भिज्जादि

निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥ ६४ ॥

(जगत्कर्त्रीं) स्थितिसंहारकारिणीं अतुलां (निरुपमां) तेजसः (ज्योतीरूपस्य) विष्णोः निद्रां भगवतीं तां योगनिद्रां (देवीं) तुष्टाव (स्तुतवान्) ॥ ६१–६४ ॥

रूपी विष्णुकी निद्रारूपिणी भगवती योगनिद्राकी स्तुति करने लगे ॥ ५६—६४ ॥

सहज जीवपिण्डोंके चालक स्वतन्त्र-स्वतन्त्र देवता माने गये हैं। इसी कारण शास्त्रोंमें तीन और तैंतीस कोटि देवताओंका वर्णन पाया जाता है। जगत्के सृजनका कार्य्य अवश्य ही समाधियुक्त होकर भगवान् ब्रह्मा करते हैं। उस समाधियुक्त भावके दो शत्रु हैं। पहली, सृष्टिकी प्रथम अवस्थामें एकमात्र नादमें आनन्द मोहित होकर तमोगुणमें पहुंचना है। इसी योगविघ्नद्वारा जड़ समाधिकी उत्पत्ति योगशास्त्रसे अनुमोदित है। वह जड़ समाधि तमोगुणसे होती है और योग-विघ्नकारक है। यही मधु नामक असुरका अध्यात्मरूप है। यह नादके सम्बन्धमे अन्तर्मुख भाव है। दूसरी अवस्था कैटभकी है, वह नादसे बहिर्मुख होकर लक्ष्यच्युत होना और निर्विकल्प भावको छोड़कर सविकल्प भावको प्राप्त होना है। ये दोनों ही तमःपरिणामको उत्पन्न करते हैं और समाधि भङ्ग करते हैं। नादके अवलम्बनसे ही दोनों प्रकट होते हैं। नादका सम्बन्ध शब्द और आकाशसे है, यही भगवान् विष्णुके

ब्रह्मोवाच ॥ ६५ ॥

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारस्वरात्मिका।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये! त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ॥६६॥

ब्रह्मा उवाच,—त्वं स्वाहा (देवहविर्दानमन्त्रः) त्वं स्वधा (पितृहविर्दानमन्त्रः) त्वं हि वषट्कारस्वरात्मिका (वषट्कारः यज्ञः, स्वर उदात्तादिः, तत्स्वरूपा) त्वं सुधा अमृतस्वरूपा) हे नित्ये! अक्षरे (वर्णसमुदाये) त्वं मात्रात्मिका (सति) त्रिधा (ह्रस्वदीर्घप्लुतरूपा) स्थिता ॥ ६५–६६ ॥

ब्रह्मा बोले,—तुम देवहविर्दानमन्त्ररूपा स्वाहा हो, तुम पितृहविर्दानकी मन्त्ररूपा स्वधा हो, तुम वेदशक्ति-प्रकाशिनी वषट्कार स्वरात्मिका हो। हे नित्ये! तुम अमृतस्वरूपिणी हो तुम वर्णमालाओंमें मात्रास्वरूपा हो एवं ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतरूपा हो, विना स्वरकी सहायतासे

कर्णमलसे मधु तथा कैटभ नामक असुरोंकी उत्पत्तिका आध्यात्मिक रहस्य विज्ञान-सिद्ध है। योगविघ्नकारी इन दोनों वृत्तियोंके आसुरी दोनों अधिष्ठाता अवश्य मान-नीय हैं, ये ही दोनों मधु और कैटभके अधिदैव रूप हैं। उन्नत योगिगण इनका अनुभव करते हैं। पुराणान्तरोंमें लिखा है कि, भगवान् विष्णुने जब मधु और कैटभ नामक दोनों असुरोंको मार डाला, तब उनके शवोंके मेद परिणामसे पृथिवी बनी और मेदिनी कहलायी। यही

अर्द्धमात्रा स्थिता नित्या यानुचार्य्या विशेषतः ।
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि ! जननी परा ॥६७॥

या विशेषतः अनुच्चार्य्या (उच्चारयितुमशक्या) नित्या स्थिता अर्धमात्रा (व्यञ्जनं) त्वं एव सन्ध्या सावित्री (गायत्री) हे देवि ! त्वं जननी (जगन्माता) परा (परमोत्कृष्टा) ॥ ६७ ॥

जिसका स्पष्ट उच्चारण नहीं किया जा सकता है, वह व्यञ्जनरूपा भी तुम हो।तुमही सन्ध्यारूपा हो तुमही गायत्री रूपा हो, हे देवि ! तुम्ही सबकी जननी हो ॥६५—६७॥

उनके अधिभूत रूप समझने का रहस्य है। सृष्टि अवस्थामें प्रकृत विघ्नका नाश होनेपर एक अद्वितीय साम्यावस्था-प्राप्त नाद जब वैषम्यावस्थाको प्राप्त हुआ, तो प्रथम शब्द-मयी सृष्टि वेदादि, तदनन्तर यावत् पार्थिव सृष्टि उत्पन्न हुईं । विघ्न दूर हुआ और भगवान् ब्रह्मा अपने कर्त्तव्य कार्य्यमें सफलकाम हुए । सर्वशक्तिमयी महामायाकी कृपाके बिना भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा भङ्ग नहीं हो सकती थी और ज्ञानस्वरूप भगवान् विष्णुकी सहा-यता विना भगवान् ब्रह्माका समाधिविघ्न दूर नहीं हो सकता था। जगज्जननी ब्रह्ममयी महामाया अविद्यारूपसे बुद्धिको आच्छादित किया करती हैं और वे ही पुनः विद्यारूप धारण करके उस आवरणको दूर करती हुई जीवको प्रकृतिस्थ और मुक्त करती हैं ॥ ६० ॥

त्वयैतद्धार्य्यते विश्वं त्वयैतत् सृज्यते जगत् ॥ ६८ ॥
त्वयैतत् पाल्यते देवि ! त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥ ६९ ॥
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ॥ ७० ॥
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥ ७१ ॥

हे देवि ! त्वया एव सर्वदा सर्वं (जगत्) धार्य्यते त्वया एतत् जगत् सृज्यते, त्वया एतत् पाल्यते, अन्ते (प्रलयकाले) त्वं (एव) सर्वं जगत् अत्सि (भक्षसि) ॥ ६८—६९ ॥

विसृष्टौ (सृष्टिकाले) त्वं सृष्टिरूपा (सृष्टिः सृज्यं वस्तु, सृष्टिक्रिया च एतदुभयरूपा) पालने च स्थिति-रूपा (स्थितिः पाल्यं पालनक्रिया च एतदुभयरूपा) तथा अस्य जगतः अन्ते (प्रलयकाले) संहृतिरूपा (संहार्य्यं संहारक्रिया च एतदुभयरूपा) ॥ ७०-७१ ॥

हे देवि ! तुम्हीं सारे जगत्का सृजन करती हो, पालन करती हो, धारण करती हो, पुनः तुम्हीं प्रलयकालमें उसका नाश करती हो । इस कारण हे जगन्मये ! तुम ही सृष्टिकालमें सृज्यवस्तुरूपा एवं सृष्टिक्रियारूपा हो, पालन एवं संहारमें भी तुम ही यथाक्रम पाल्य, पालन, संहार्य्य और संहाररूपा हो ॥ ६८-७१ ॥

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ॥ ७२ ॥
प्रकृतिस्त्वञ्च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी।

(त्वं) महाविद्या महामाया (सर्वमोहिनी) महामेधा महास्मृतिः (संस्कारजन्यज्ञानविशेषः) महामोहा (महामोहहेतुभूता) महादेवी (महादेवशक्तिः) महासुरी (असुरशक्तिः) च (त्वम् इत्यर्थः) ॥ ७२ ॥

त्वं च सर्वस्य प्रकृतिः गुणत्रयविभाविनी (सत्त्वरज-

आपही महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति और महामोहरूपा हो। महादेवी और महासुरी भी आपही हो ॥ ७२ ॥

तुमही त्रिगुण प्रकाशिनी सबकी प्रकृति हो, काल-

टीका—"महा" शब्दका प्रयोग सब स्थलोंपर समष्टिवाचक है। दैवी और आसुरी शक्ति, शक्तिरूपसे दोनों समान होनेसे दोनोंका नाम आया है। इस कारण शंकाका अवसर नहीं है ॥ ७२ ॥

टीका—प्रलयकी सन्धि, मृत्युकी सन्धि और निद्राकी सन्धि, ये तीनों ब्रह्ममयी महाशक्तिकी शक्तिरूपसे

कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥ ७३ ॥
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ॥७४॥
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥७५॥

स्तमोगुणव्यक्तकारिणी) कालरात्रिः महारात्रिः मोह-रात्रिः च दारुणा (भयोत्पादिका) ॥ ७३ ॥

त्वं श्रीः (लक्ष्मीः) त्वं ईश्वरी (सर्वनियन्त्री) त्वं ह्रीः (लज्जारूपिणी) त्वं बोधलक्षणा (बोधलक्षणविशिष्टा) बुद्धिः (अन्तःकरणस्यान्तर्भागविशेषः) ॥ ७४ ॥

त्वं (लज्जारूपा) पुष्टिः (उपचयः) तथा तुष्टिः (संतोषः) शान्तिः क्षान्तिः च एव (एतत् सर्वस्वरूपा त्वं इत्यर्थः) ॥ ७५ ॥

रात्रि (प्रलय) महारात्रि (मृत्यु) एवं भयानक मोहरात्रि (निद्रा) भी तुम्हीं हो, तुमही लक्ष्मीरूपा हो, तुमही निखिल ऐश्वर्य्य-शालिनी ईश्वरी हो, तुमही ह्री (असत् कार्य्य में लज्जा) हो, तुम बोधलक्षणा बुद्धिरूपा हो तुमही लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति एवं क्षान्ति—क्षमारूपिणी हो ॥ ७३–७५ ॥

प्रबल विभूतियां हैं। उच्चसे उच्च व्यक्ति भी समानरूपसे इनके अधीन होता है ॥ ७३ ॥

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥ ७६ ॥
सौम्यासौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ।

त्वं खड्गिनी (खड्गयुक्ता) शूलिनी (शूलधारिणी) घोरा (भयङ्करी) गदिनी (गदायुक्ता) चक्रिणी (चक्रधारिणी) तथा शङ्खिनी (शंखधारिणी) चापिनी (धनुर्युक्ता) बाणभुशुण्डीपरिघायुधा (बाण-भुशुण्डीपरिघनामास्त्रयुक्ता इत्यर्थः) ॥ ७६ ॥

त्वं सौम्या (आह्लादिका) सौम्यतरा (अतिशयसुन्दरी) अशेषसौम्येभ्यः (आह्लादकवस्तुभ्यः) अति-

---

तुम खड्ग, शूल, गदा, चक्र, शङ्ख, धनु, बाण, भुशुण्डी एवं परिघधारिणी हो तुम सौम्या हो, सौम्यतरा हो एवं निखिल सौंदर्य्योंकी अपेक्षा भी अधिक सुन्दरी हो। तुम ब्रह्मादिकी भी नियन्त्री हो, तुम सृष्टिसे परे स्थित उसकी आधारभूता हो, इस कारण 'परमा' हो

टीका—नव आयुधोंका वर्णन शक्तिकी पूर्णताका प्रकाशक है । रक्षाकार्य्यमें शक्तिकी पूर्णताकी आवश्यकता है और उसमें अभयमुद्राका होना स्वाभाविक होनेसे दशवें हाथमें अभयमुद्रा है, ऐसा समझना चाहिये ॥ ७६ ॥

परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥ ७७ ॥
यच्च किंचित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।

सुन्दरी, परापराणां (ब्रह्मेन्द्रादीनां) परमेश्वरी, (यतः) त्वं परमा (ईश्वरमपि वशीकर्त्री) ॥ ७७ ॥

हे अखिलात्मिके ! (सर्वस्वरूपे !) यत् च किंचित् (वस्तु) क्वचित् (कस्मिंश्चित् देशे काले वा) सत् (वर्त्तमानं) असत् वा (भावि), तस्य सर्वस्य या त्वं

तुम्हीं अनन्त कोटि ब्रह्माण्डकी ईश्वरी हो इसी कारण तुमको 'परमा' कहते हैं। हे सर्वमयी देवि ! इस अनन्त कोटि ब्रह्माण्डमें जहां कहीं जो कुछ सत्-असत् पदार्थ हैं, उन सबोंकी शक्तिभूता तुम ही हो, अतएव

टीका-'सौम्य' शब्दका अर्थ आनन्दप्रद, शान्तिप्रद और अमृतप्रद है। सुतरां जो सौन्दर्य्य ब्रह्मानन्दप्रद हो, स्थिर शान्तिप्रद हो और मुक्तिकी ओर अभिमुख करे, वही सौन्दर्य्य इन तीनों पदोंसे लक्षित होता है। इस भावको तीन श्रेणीमें विभक्त करनेका तात्पर्य अति रहस्यपूर्ण है । क्योंकि, समाधिभाषाके सभी शब्द त्रिविध अर्थबोधक होंगे, इसमें सन्देह नहीं । जगदम्बाके आधिभौतिकरूपकी सुन्दरता, आधिदैविकरूपकी सुन्दरता एवं आध्यात्मिकरूपकी सुन्दरता यथाक्रम एकसे दूसरा और दूसरेसे तीसरा उन्नत है, उन्हीं तीनोंको ये पद लक्ष्य कराते हैं ॥ ७७ ॥

तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे मया ॥७८॥
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पातात्ति यो जगत् ।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥ ७९ ॥
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।

शक्तिः, सा (त्वं) मया किं स्तूयसे (स्तोतुं न शक्नोमीत्यर्थः) ॥ ७८ ॥

यः जगत्स्रष्टा, जगत्पाता (यः च) जगत् अत्ति (नाशयति) सः (सर्वव्यापारनियन्ता) अपि विष्णुः (परमेश्वरः) यया त्वया निद्रावशं नीतः (अतः) त्वां स्तोतुं इह (जगति) क ईश्वरः (समर्थः) ॥ ७९ ॥

विष्णुः, अहं (ब्रह्मा) ईशानः (शिवः) एव च यतः (त्वया) शरीरग्रहणं कारिताः, अतः, (कारणात्) त्वां

तुम्हारी स्तुति मैं किस प्रकार कर सकता हूँ? ॥७६—७८॥

जो जगत्के स्रष्टा, पाता, एवं संहर्त्ता हैं, वे भी तुम्हारे द्वारा निद्रित होते हैं, तब तुम्हारी स्तुति करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? ॥ ७९ ॥

विष्णु, मैं (ब्रह्मा) एवं शिव सबोंने तुम्हारे द्वारा ही शरीर

टीका—वेदादि शास्त्रोंमें जैसे ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशकी आयुका हिसाब अलग अलग पाया जाता है, उसी प्रकार तीनोंकी रात्रिका भी अलग अलग वर्णन पाया जाता है। तथा ब्रह्मामें ब्राह्मीशक्ति, विष्णुमें वैष्णवी

कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥८०॥
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि ! संस्तुता ।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥ ८१ ॥
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥ ८२ ॥

स्तोतुं कः शक्तिमान् भवेत् ? (न कोऽपीत्यर्थः) ॥ ८० ॥

सा (अनिर्वचनीयप्रभावा) हे देवि ! त्वं इत्थं (उक्तप्रकारेण) स्वैः उदारैः प्रभावैः (माहात्म्यैः) संस्तुता (सती) एतौ दुराधर्षौ (अनभिभवनीयौ) मधुकैटभौ असुरौ मोहय ॥८१॥

जगत्स्वामी अच्युतः (विष्णुः) लघु (शीघ्रं) प्रबोधं च (निद्राभङ्गं) नीयतां, एतौ महासुरौ हन्तुं (नाशयितुं) अस्य (विष्णोः) बोधः च (चैतन्यः) क्रियतां (कार्य्यताम्) ॥ ८२ ॥

ग्रहण किया है, अतएव तुम्हारी स्तुति करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? । हे देवि ! तुम अपने इस प्रकार उदार प्रभावके द्वारा ये मधु, कैटभ नामक दोनों असुरोंको जो अतीव दुर्धर्ष हैं, मोहित करो । जगत्स्वामी अच्युतको जागृत करो एवं इन दोनों महा असुरोंको मारने केलिये इनकी शक्ति विस्फुरित करो ॥ ८०—८२ ॥

शक्ति एवं शिवमें शैवीशक्ति जो कुछ है, सो उसी महाशक्तिका अंश है ॥ ७९—८० ॥

ऋषिरुवाच ॥ ८३ ॥
एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ॥ ८४ ॥
विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ ।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥ ८५ ॥
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ८६ ॥

ऋषिः उवाच तदा (तस्मिन् काले) तत्र तामसी (निद्रारूपा) देवी वेधसा (ब्रह्मणा) स्तुता (सती) विष्णोः प्रबोधनार्थाय मधुकैटभौ निहन्तुं च नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यः तथा उरसः (वक्षसः) निर्गम्य अव्यक्तजन्मनः (स्वयम्भुवः) ब्रह्मणः दर्शने (दर्शनविषये) तस्थौ (स्थितवती) ॥ ८३—८६ ॥

ऋषिने कहा ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर तामसी देवी विष्णुके निद्राभंग और मधुकैटभ-वधके लिये विष्णुके नेत्र, मुखमण्डल, नासिका, बाहु, हृदय एवं वक्षःस्थलसे निकल कर स्वयम्भु ब्रह्माकी दृष्टिके सामने आविर्भूत होगयी ॥ ८३—८६ ॥

टीका—त्रिगुणमयी महाशक्तिके तीनों गुण ही अपने अपने अधिकारके अनुसार पूर्ण शक्ति-विशिष्ट हैं, यह स्तुति ब्रह्ममयीकी तामसिक महाशक्तिको लक्ष्य करके ही की गयी है।

टीका—ब्रह्ममयी महामायाके तमोगुणमय चरित्रका वर्णन इस अध्याय में है। आगेके चरित्रोंमें उनके रजोगुण-

उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः।
एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ ॥ ८७ ॥

जगन्नाथः जनार्दनः (विष्णुः) तया (निद्रारूपया महामायया) मुक्तः (सन्) एकार्णवे (एकीभूतसमुद्रे अहिशयनात् (अनन्तशय्यायाः) उत्तस्थौ (उत्थितवान्)। ततः (अनन्तरं) दुरात्मानौ अतिवीर्य्यपरा-

उस निद्रारूपिणी भगवतीसे मुक्त होकर जगत्-स्वामी भगवान् विष्णु अनन्तशय्यासे उठे एवं अत्यन्त बलशाली, पराक्रमी तथा क्रोधसे लाल लाल नेत्र किये ब्रह्मा

मयरूप और सत्त्वगुणमय रूपोंका वर्णन आवेगा। ब्रह्मशक्तिरूपिणी महामाया त्रिगुणमयी हैं। उनके सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण तीनों समानरूपसे बलशाली हैं। निद्रारूपसे तमोमयी भगवतीने जब सत्त्व-गुणके अधिष्ठाता भगवान् विष्णुको योगनिद्रासे निद्रित कर रखा था, तो यह मानना ही पड़ेगा, कि तमोगुणका प्रभाव असीम है। दूसरी ओर घोर तमो-गुणमें कोई कर्म नहीं बनता, इस कारण आगे कहे हुए अन्य चरित्रोंकी तरह इसमें किसी लीलाके वर्णनका अवसर नहीं था। जगत्के पालन करनेवाले, सत्त्व-गुणके अधिष्ठाता भगवान् विष्णुतकपर तमोमयी भगवतीके प्रभावका वर्णन प्रकाशित करना ही यथेष्ट है ॥ ८४—८७ ॥

मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्य्यपराक्रमौ ।
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ॥ ८८ ॥
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ।
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ॥ ८९ ॥
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥ ९० ॥
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥ ९१ ॥

क्रमौ क्रोधरक्तेक्षणौ (क्रोधात् रक्तचक्षुषौ) ब्रह्माणं अत्तुं (भक्षितुं) जनितोद्यमौ तौ मधुकैटभौ ददर्श (दृष्टवान्) च ॥ ८७—८८ ॥

ततः (अनन्तरं) विभुः भगवान् हरिः समुत्थाय बाहु-प्रहरणः (बाहुमात्रास्त्रः) (सन्) पञ्च वर्षसहस्राणि (व्याप्य) ताभ्यां (असुराभ्यां सह) युयुधे (युद्धं कृतवान्) ॥ ८९ ॥

(ततः) अतिबलोन्मत्तौ तौ (असुरौ) अपि महा-मायाविमोहितौ (सन्तौ) अस्मत्तः (आवाभ्यां) वरः व्रियतां इति केशवं (विष्णुं) उक्तवन्तौ ॥ ९०—९१ ॥

को खा डालनेकेलिये उद्यत मधु एवं कैटभ नामके दोनों असुरोंको देखा। भगवान् हरिने उठकर पांच हज़ार-वर्षतक उन असुरोंके साथ बाहुयुद्ध किया । अपने बलसे उन्मत्त दोनों असुरोंने महामायासे विमोहित होकर भगवान् विष्णुको कहा कि तुम हमलोगोंसे वर मांगो ॥ ८७—९१ ॥

भगवानुवाच ॥ ६२ ॥
भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥ ६३ ॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मया ॥ ६४ ॥
ऋषिरुवाच ॥ ६५ ॥
वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ॥ ६६ ॥
विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः ॥ ६७ ॥
आवां जहि न यत्रोर्व्वी सलिलेन परिप्लुता ॥ ६८ ॥

भगवान् उवाच, मे (मम) तुष्टौ उभौ अपि अद्य मम वध्यौ भवेतां, अत्र (युद्धे) अन्येन वरेण किम्, एतावत् हि मया वृतम् ॥ ६२—६४ ॥

ऋषिः उवाच,—तदा वञ्चिताभ्यां ताभ्यां (असुराभ्यां) सर्वं जगत् आपोमयं (जलमग्नं) विलोक्य भगवान् कमलेक्षणः (विष्णुः) इति (वक्ष्यमाणं) गदितः ॥ ६५—६७ ॥

यत्र उर्व्वी (पृथिवी) सलिलेन (जलेन) न परिप्लुता व्याप्ता) तत्र आवां जहि (मारय) ॥ ९८ ॥

भगवान्ने कहा,—तुम लोग यदि मुझसे प्रसन्न हुए हो, तो तुम लोग मेरेद्वारा मारे जाओ । इस समय अन्य किसी वरका प्रयोजन ही क्या है, तुम लोग हमारे वध्य हो, यही हमारा वरणीय है ॥ ९२—९४ ॥

ऋषिने कहा कि, इस प्रकार दोनों असुरोंने महामायाद्वारा विमोहित हो सारा जगत् जलमग्न देख कर कमलनयन भगवान् विष्णुसे कहा, कि ऐसे स्थानमें हमलोगोंका वध करो, जहां जल नहीं हो ॥ ९५—९८ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ९९ ॥
तथेत्युक्त्वा भगवता शंखचक्रगदा भृता ॥ १०० ॥
कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥ १०१ ॥
एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ॥ १०२ ॥
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ॥ १०३ ॥
इति मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥

ऋषिः उवाच, शंखचक्रगदाभृता भगवता तथा इति उक्त्वा (कथयित्वा) तयोः मधुकैटभयोः शिरसी जघने कृत्वा वै चक्रेण छिन्ने (कर्त्तिते इत्यर्थः) ॥ ९९—१०१ ॥

एषा (महामाया) एवं (अनेन प्रकारेण) ब्रह्मणा संस्तुता (सती) स्वयं समुत्पन्ना (आविर्भूता) (बभूव), अस्याः देव्याः प्रभावं भूयः (पुनरपि) शृणु, ते (तुभ्यं) (अहं) वदामि (कथयामि) ॥ १०२—१०३ ॥

ऋषि बोले,—शंख-चक्र-गदाधारी भगवान्‌ने "ऐसा ही होगा" ऐसा कह कर उन दोनोंका मस्तक अपने जांघपर रख चक्रसे काट डाला ॥ ९९—१०१ ॥

इस प्रकार ब्रह्माके स्तुति करनेपर देवी आविर्भूत हुई थीं। इन देवी महामायाके प्रभाव मैं पुनः तुमसे कहता हूं,—सुनो ॥ १०२—१०३ ॥

देवी-माहात्म्यके मधुकैटभवध नामक
प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।

ओं ह्रीं ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा ।
महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे ॥ २ ॥
तत्रासुरैर्महावीर्य्यैर्देवसैन्यं पराजितम् ।
जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः ॥ ३ ॥

ऋषिः उवाच,—महिषे (महिषासुरे) असुराणां अधिपे देवानां च पुरन्दरे (पुरन्दरनाम्नि इन्द्रे) अधिपे (सति) पुरा (पूर्वस्मिन् काले) पूर्णं अब्दशतं (वत्सर-शतं व्याप्य) देवासुरं (देवासुरनाम्ना ख्यातं) युद्धं अभूत् ॥ १—२ ॥

तत्र (युद्धे) महावीर्यैः असुरैः देवसैन्यं पराजितम् (पराभूतम्), ततः महिषासुरः सकलान् देवान् जित्वा इन्द्रः अभूत् ॥ ३ ॥

ऋषि ने कहा,—जिस समय महिषासुर असुरोंके एवं पुरन्दर देवताओंके अधिपति थे, उस समय पूरे सौ वर्षतक देवता और असुरोंका युद्ध हुआ था। उस युद्धमें महावीर्य्यशाली असुरोंके द्वारा देवसेना पराजित होगयी और सब देवताओंको हराकर महिषा-सुर स्वयं इन्द्र बन गया ॥ ३ ॥

ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम् ।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुड़ध्वजौ ॥ ४ ॥

ततः (अनन्तरं) पराजिताः देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिं (ब्रह्माणं) पुरस्कृत्य (अग्रे कृत्वा) यत्र ईशगरुडध्वजौ (हरिहरौ) (वर्तते) तत्र गताः ॥ ४ ॥

तब पराजित देवतागण प्रजापति ब्रह्माका प्रमुख (नेता) बनाकर महादेव एवं विष्णुके निकट गये।

टीका—देवासुर संग्रामका आधिदैव रहस्य समझने के लिये सूक्ष्म लोकोंकी शृङ्खला और वहाँकी शासन-प्रणाली समझने योग्य है। ऊर्द्ध्व सप्त लोकोंमेंसे भूलोक प्रथम लोक है। उसके अन्तर्गत सात द्वीप हैं, जो जल-वेष्ठित नहीं हैं, वायुवेष्ठित हैं। इन सातों द्वीपोंमेंसे जम्बुद्वीप एक है जिसके बारह हिस्से हैं, इनमेंसे चार प्रधान हिस्से ये हैं यथा प्रेतलोक, नरकलोक, मृत्युलोक और पितृलोक। इनके शासक धर्मराज यम हैं, जिनकी राजधानी पितृलोकमें है। इस मृत्युलोकमें भी उनका बहुत कुछ सम्बन्ध विद्यमान है। देवराज इन्द्रकी राज-धानी तृतीय लोक स्वर्लोकमें है। यहाँतक असुर लोग जा सकते हैं। जिस प्रकार इस मृत्युलोकमें ज्ञानी अथवा तपस्वी व्यक्तिपर राजानुशासनकी आवश्यकता नहीं रहती, उसी प्रकार अति ऊर्द्ध्व लोकोंमें इन्द्रदेवके शासनकी आवश्यकता नहीं रहती है। पष्ठलोक उपासना

७

यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् ।
त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥ ५ ॥

त्रिदशाः (देवाः) तयोः (सम्बन्धे) देवाभिभवविस्तरं (देवानां अभिभवबाहुल्यं यत्र तत्) महिषासुरचेष्टितं यथा वृत्तं तद्वत् (तथैव) कथयामासुः ॥ ५ ॥

और महिषासुर देवताओंको पराजित करके उनसे कैसा व्यवहार करता है, सो यथावत् देवताओंने कहा ॥ ४—५ ॥

का लोक है तथा सप्तम लोक ज्ञानमय लोक है । वे दोनों लोक देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं। असुरराजका आधिपत्य नीचेके सब लोकोंपर रहता है । क्योंकि, आसुरी प्रजा इन्द्रियलोलुप होनेसे वहांके सब लोकोंपर राजानुशासनकी आवश्यकता रहती है । देवतागण अपने अधिकारमें ही तृप्त रहते हैं, क्योंकि वे सत्त्वगुणावलम्बी हैं । असुरगण सदा दैव अधिकार छीनने के लिये व्यग्र रहते हैं। यही कारण है कि, मृत्युलोक में भी दैवी शक्ति और आसुरी शक्तिका संघर्ष सर्वदा देखनेमें आता है । जब कभी असुरराज इन्द्रदेवके अधिकारमें प्रवेश करते हैं, तब वह युद्ध प्रबल होता है। और कभी कभी तप क्षय होनेसे देवराज हार भी जाते हैं तथा वे अपनी राजधानी छोड़ कर उच्च लोकोंमें

सूर्य्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च।
अन्येषाञ्चाधिकारान् सः स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ६ ॥
स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि।
विचरन्ति यथा मर्त्त्या महिषेण दुरात्मना ॥ ७ ॥
एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम्।

सः (महिषासुरः) सूर्य्य-इन्द्र-अग्नि-अनिल-इन्दूनां यमस्य वरुणस्य च अन्येषां (देवानां) च अधिकारान् स्वयं एव अधितिष्ठति। अधिकरोति) ॥ ६ ॥

तेन दुरात्मना महिषेण (महिषासुरेण) स्वर्गात् निराकृताः (दूरीकृताः) सर्वे देवगणाः मर्त्त्याः मनुष्याः यथा (इव) भुवि विचरन्ति एतत् सर्वं अमरारिविचेष्टितं (देवशत्रुचेष्टितं) वः (युष्मान् प्रति) कथितं

महिषासुरने सूर्य्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्र, यम, वरुण एवं अन्यान्य सब देवताओंके अधिकारोंको छीन लिया है। सभी देवता उस दुरात्मा महिषासुरके द्वारा स्वर्गसे विताड़ित होकर मनुष्योंकी तरह मृत्युलोकमें विचर रहे हैं। हमलोगोंने यहां तक उस असुरकी दुष्टता आप लोगोंको सुनायी, हमलोग आपके शरणागत हैं, अतएव उस असुरके वधके विषयमें

शरण लेते हैं। जिस कल्पमें महिषासुर असुरराज हुआ था, उस समयकी यह समाधिद्वारा प्राप्त गाथा है ॥४॥

शरणञ्च प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥ ८ ॥
इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः ।
चकार कोपं शंभुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ ॥ ९ ॥
ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः ।
निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शङ्करस्य च ॥ १० ॥

(वयं) च शरणं प्रपन्नाः (प्राप्ताः) स्मः, तस्य वधः (वधोपायः) विचिन्त्यताम् ॥ ७—८ ॥

इत्थं (एवंविधानि) देवानां वचांसि निशम्य (श्रुत्वा) भ्रुकुटीकुटिलाननौ (भ्रुकुटीभीषणमुखौ) मधुसूदनः (विष्णुः) शम्भुः शिवः च कोपं चकार ॥ ९ ॥

ततः अतिकोपपूर्णस्य चक्रिणः (विष्णोः) वदनात् (मुखात्) महत्तेजः निश्चक्राम (बहिर्भूतं) ततः ब्रह्मणः शङ्करस्य च वदनात् महत्तेजः निश्चक्राम ॥ १० ॥

विचार करें । भगवान् विष्णु एवं शिव उन देवताओंकी बात सुनकर क्रुद्ध हो गये और उन दोनोंका मुख-मण्डल भ्रुकुटिद्वारा भयानक हो गया ॥ ६—९ ॥

तदनन्तर अत्यन्त क्रोधपूर्ण विष्णु, ब्रह्मा, और शंकर भगवान्के मुखमण्डलसे महान् तेज निकलने लगा ॥१०॥

टीका—पहला चरित्र तमोमयी शक्तिके प्रभावका था। अब यह चरित्र रजोगुणमयी शक्तिके प्रभावका है। इसी कारण त्रिमूर्तिके क्रोधके साथ इस लीलाके आविर्भावका सम्बन्ध है । त्रिमूर्ति तथा देवताओंके

अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः।
निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥ ११ ॥
अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् ॥
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ १२ ॥

अन्येषां शक्रादीनां देवानां च एव शरीरतः(शरीरात्) सुमहत् (अतिप्रचुरं) तेजः निर्गतम्, तत् (समस्तं) (तेजः) च ऐक्यं समगच्छत (सम्मिलितमभूत्) ॥११॥

तत्र (समये) ते सुराः (देवाः) ज्वलन्तं (देदीप्यमानं) ज्वालाव्याप्तदिगन्तरं (शिखाव्याप्तदिङ्मण्डलं) पर्वतमिव अतीव तेजसः कूटं (राशिं) ददृशुः (दृष्टवन्तः) ॥ १२ ॥

साथ-साथ इन्द्रादि अन्यान्य देवताओंके शरीरसे भी बहुत तेज निकलकर सब एकत्रित होगया ॥ ११ ॥

जिसके शिखाओंसे दिशायें परिव्याप्त हो रहीं थीं, उस तेजराशिको देवताओंने जलते हुए पर्वतके समान देखा ॥ १२ ॥

वहाँ सब देवताओंके देहसे उत्पन्न वह अनुपम तेजपुञ्ज एक नारीरूपमें परिणत हुआ और उनकी

समवेत तेजसे यद्यपि सर्वशक्तिमयी जगदम्बाका स्थूल शरीर उस समय बना था, परन्तु उसमें त्रिमूर्त्तिके क्रोधका संस्कार था। यही रजोगुणमयी महाशक्तिके आविर्भावका रहस्य है ॥ ९—१० ॥

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् ।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥ १३ ॥
यदभूच्छाम्भवन्तेजस्तेनाजायत तन्मुखम् ।

तत्र (स्थाने) त्विषा (कान्त्या व्याप्तलोकत्रयं अतुलं (निरुपमं) सर्वदेवशरीरजं (सर्वदेवदेहसमुद्भूतं) तत् तेजःएकस्थं (मिलितं सत्) नारी(स्त्रीरूपं) अभूत् ॥१३॥ यत् शाम्भवं (शिवशरीरजं) तेजः अभूत्, तेन (तेजसा) तन्मुखं (तस्य नारीदेहस्य मुखं) अजायत, याम्येन

कान्तिके द्वारा त्रिलोक परिव्याप्त हो गया ॥ १३ ॥
शम्भुके तेजद्वारा उनका मुखमण्डल बना, यम एवं विष्णुके तेजद्वारा यथाक्रम केश और बाहु उत्पन्न हुए। चन्द्रमा, इन्द्र, वरुण, और पृथिवीके तेजद्वारा यथाक्रम स्तनद्वय, मध्यभाग, जंघा, ऊरुदेश एवं नितम्ब निर्मित हुए। ब्रह्मा, सूर्य्य, अष्टवसु, तथा कुबेरके तेज-

टीका—यह चक्रका रहस्य है। तन्त्रादि शास्त्रोंमें जो उपासनाचक्रोंका वर्णन आता है, वह सब इसी अलौकिक विज्ञानको अवलम्बन करके किया गया है। समवेत भक्तवृन्द एक ही देशकालमें उपस्थित होकर अनन्य भक्ति, एक ही धारणा, एक ही ध्यानसे युक्त होकर जब समाधिस्थ होते हैं, तब उपासना-शास्त्रमें उसको चक्र कहते हैं। यदि चक्र सिद्ध हो, तो उस चक्रमें उपास्य देवका आविर्भाव अवश्य होता है, जैसा कि देवताओंके इस ब्रह्मचक्रमें हुआ था ॥ १३ ॥

याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा॥ १४॥
सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत्।
वारुणेन च जंघोरू नितम्बस्तेजसा भुवः॥ १५॥
ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा।
वसूनाञ्च कराङ्गुल्यः कौबरेण च नासिका॥ १६॥
तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा।

(यमसम्बन्धिना) (तेजसा) केशाः विष्णुतेजसा बाहवः च अभवन्॥ १४॥

सौम्येन (चन्द्रसम्बन्धिना) (तेजसा) स्तनयोः युग्मं, ऐन्द्रेण (इन्द्रसम्बन्धिना) (तेजसा) च मध्यं, वारुणेन च (तेजसा) जङ्घोरू, भुवः (पृथिव्याः) तेजसा नितम्बः अभवत्॥ १५॥

ब्रह्मणः तेजसा पादौ (अभवतां) अर्कतेजसा तदङ्गुल्यः (पदाङ्गुल्यः) (अभवन्) वसूनां च (तेजसा) कराङ्गुल्यः (अभवन्) कौबेरेण (तेजसा) च नासिका (अभूत्)॥१६॥

तस्याः (नार्याः) प्राजापत्येन तेजसा (दक्षादीनां तेजसा) दन्ताः सम्भूताः(समुद्भू ताः)तथा पावकतेजसा

द्वारा यथाक्रम चरणद्वय, उनकी अंगुलियां, हाथकी अंगुलियां एवं नासिका उत्पन्न हुईं॥ १४—१६॥

प्रजापतिके तेजद्वारा देवीके दांत समूह उत्पन्न हुए

नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा ॥ १७ ॥
भ्रूवौ च सन्ध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्यच ।
अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ॥ १८
ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम् ।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः ॥ १९ ॥

(अग्नितेजसा) नयनत्रितयं जज्ञे (उत्पन्नम्) ॥ १७ ॥
सन्ध्ययोः तेजः भ्रुवौ च (जज्ञाते), अनिलस्य च (वायोः) तेजसा श्रवणौ (कर्णौ) (जज्ञाते) अन्येषां च (देवानां) तेजसां सम्भवः शिवा (देवी) अभवत् ॥ १८ ॥
ततः (अनन्तरं) समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवां तां (देवीं) विलोक्य दृष्ट्वा महिषार्दिताः (महिषासुरपीड़िताः) अमराः (देवाः) मुदं (हर्षं) प्रापुः (प्राप्तवन्तः) ॥ १९ ॥

एवं अग्निके तेजद्वारा तीनों नेत्र उत्पन्न हुए। सन्ध्याके तेजसे भ्रूयुगल, वायुके तेजद्वारा दोनों कान तथा अन्यान्य देवताओंके तेजसमूहोंसे देवी शिवाकी उत्पत्ति हुई ॥ १७—१८ ॥

तदनन्तर महिषासुरके द्वारा पीड़ित देवतागण समस्त देवताओंके तेजसे उत्पन्न उस स्त्रीरूपको देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ १९ ॥

शूलं शूलाद् विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक् ।
चक्रञ्च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः ॥ २० ॥
शंखञ्च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः ।
मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥ २१ ॥
वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य कुलिशादमराधिपः ।

पिनाकधृक् (शिवः) शूलात् (निजशूलास्त्रात्) शूलं विनिष्कृष्य (उत्पाद्य) तस्यै (देव्यै) ददौ (दत्तवान्) कृष्णः (विष्णुः) च स्वचक्रतः (सुदर्शनात्) चक्रं समुत्पाद्य दत्तवान् ॥ २० ॥

वरुणः शङ्खं, हुताशनः (अग्निः) च शक्तिं तस्यै ददौ, मारुतः चापं (धनुः) तथा बाणपूर्णे इषुधी (तूणीरौ) दत्तवान् ॥ २१ ॥

अमराधिपः सहस्राक्षः (सहस्रनयनः) इन्द्रः कुलिशात् (वज्रात्) वज्रं समुत्पाद्य ऐरावतात् गजात्

पिनाकपाणि महादेवने अपने शूलास्त्रसे एक दूसरा शूल निकालकर उनको (भगवतीको) दिया। कृष्ण—विष्णुने भी अपने चक्रसे एक दूसरा चक्र निकाल कर दिया । वरुणने शङ्ख, हुताशनने शक्ति, वायुने धनु एवं बाणपूर्ण तूणीर प्रदान किया। सहस्रनयन देवाधिपति इन्द्रने अपने वज्रसे वज्र तथा ऐरावत हाथीसे घण्टा लेकर भगवतीको प्रदान

ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात् ॥ २२ ॥
कालदण्डाद् यमो दण्डं पाशश्चाम्बुपतिर्ददौ ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ॥ २३ ॥
समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन्दिवाकरः ।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म च निर्मलम् ॥ २४ ॥

घण्टां च (समुत्पाद्य) तस्यै ददौ ॥ २२ ॥

यमः कालदण्डात् दण्डं (समुत्पाट्य) ददौ, अम्बुपतिः (वरुणः) (पाशात्) पाशं (समुत्पाट्य) च ददौ, प्रजापतिः ब्रह्मा अक्षमालां (जपमालां कमण्डलुं) च ददौ ॥ २३ ॥

दिवाकरः (सूर्य्यः) तस्याः समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् (निजकिरणान्) कालः (मृत्युः) च खड्गं निर्मलं चर्म च दत्तवान् ॥ २४ ॥

किया। यमने कालदण्डसे दण्ड निकालकर प्रदान किया तथा वरुणने पाश, प्रजापति ब्रह्माने अक्षमाला एवं कमण्डलु प्रदान किया। दिवाकर (सूर्य्यने) सब रोमकूपोंमें अपनी किरण, कालने खड्ग तथा अति निर्मल चर्म उनको प्रदान किया। क्षीरोद समुद्रने निर्मल हार, अविनश्वर वस्त्रद्वय, अतिमनोहर चूड़ामणि, कुण्डल, वलय, शुभ्र अर्द्धचन्द्र, सब बाहुओंमें

क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे।
चूड़ामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च ॥ २५ ॥
अर्द्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु।
नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥ २६ ॥
अंगुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च ॥ २७ ॥
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुञ्चातिनिर्मलम्।
अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाऽभेद्यञ्च दंशनम् ॥ २८ ॥

क्षीरोदः (समुद्रः) अमलं (निर्मलं) हारं, तथा अजरे (अविनश्वरे) अम्बरे (वस्त्रे) तथा दिव्यं (मनोरमं) चूडामणिं (मुकुटं) कुण्डले कटकानि (वलयानि) च, शुभ्रं अर्द्धचन्द्रं, सर्वबाहुषु केयूरान्, विमलौ नूपुरौ तद्वत् (तथा) अनुत्तमं ग्रैवेयकं (कण्ठभूषां), समस्तासु अङ्गुलिषु अङ्गुलीयकरत्नानि च (दत्तवान्) ॥ २५—२७ ॥

विश्वकर्मा अतिनिर्मलं परशुं (कुठारं) च अनेक रूपाणि अस्त्राणि, तथा अभेद्यं दंशनं (कवचं) च ददौ ॥२८॥

केयूर, अति निर्मल नूपुर, अति उत्तम कण्ठाभरण और सब अङ्गुलियोंमें रत्नोंकी अँगूठियाँ प्रदान कीं। विश्वकर्माने अतिनिर्मल कुठार, अन्यान्य नाना प्रकारके अस्त्र एवं अभेद्य कवच अर्पण किया। जलनिधि समुद्रने शिरमें एवं वक्षःस्थलमें कभी न मुर्झानेवाले कमलकी

अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ।
अदद्जलधिस्तस्यै पङ्कजञ्चातिशोभनम् ॥ २९ ॥
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ।
ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः ॥ ३० ॥
शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् ।
नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ॥ ३१ ॥

जलधिः (समुद्रः) शिरसि अम्लानपङ्कजां मालां, उरसि (वक्षसि) च अपरां (तादृशीं मालां) अतिशोभनं पंकजं च तस्यै अददत् (दत्तवान्) ॥ २९ ॥

हिमवान् (हिमालयः) सिंहं वाहनं विविधानि रत्नानि च, धनाधिपः (कुवेरः) सुरया अशून्यं (सुरापूर्णं) पानपात्रं सुरापानपात्रं) ददौ ॥ ३० ॥

यः इमां पृथिवीं धत्ते (धारयति), (सः) सर्वनागेशः (सर्वनागाधिपतिः) शेषः (अनन्तः) महामणिविभूषितं नागहारं (नागलोकोद्भवं हारं) तस्यै (देव्यै) ददौ ॥ ३१ ॥

माला तथा अतिसुन्दर कमल प्रदान किया । हिमालयने सिंह, विविध प्रकारके रत्न एवं धनपति कुवेरने सुरापूर्ण पानपात्र प्रदान किया । जिन्होंने इस पृथिवीको धारणकर रक्खा है, सर्व नागाधिपति उन अनन्त नागने महारत्न-

अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥
सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः ॥ ३२ ॥

अन्यैः सुरैः (देवैः) अपि भूषणैः तथा आयुधैः (अस्त्रैः) सम्मानिता देवी मुहुर्मुहुः (वारम्वारं) साट्टहासं (अतिशय हासं यथा स्यात् तथा) उच्चैः ननाद (शब्दं चकार) ॥३२॥

सुशोभित नागहार प्रदान किया। अन्यान्य देवताओंसे भी नाना प्रकारके भूषण एवं अस्त्रादिद्वारा सम्मानित होकर देवी वारम्बार अट्टहासपूर्वक महान् गर्जन करने लगीं ॥ २०-३२ ॥

टीका-पहले चरित्रमें ब्रह्ममयीके तमोमयी महाशक्ति रूपका वर्णन आ चुका है। अब इस चरित्रद्वारा उस अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-प्रसविनी विश्वजननी रजोगुण-मयी महाशक्तिके रूप और विलासका वर्णन किया गया है। जगदम्बाका जो नित्यस्थित अध्यात्मरूप है, उसका कुछ दिग्दर्शन पहले आचुका है। वे शक्तिरूपिणी, ब्रह्ममयी साक्षात् ब्रह्मरूपा, निखिल ब्रह्माण्डकी सृष्टि-स्थिति-संहार-कर्त्री होनेपर भी, अरूपिणी और मन-बुद्धि से अगोचरा होनेपर भी भक्तोंके कल्याणार्थ किस प्रकार से रूपको धारण करती हैं, उनका अधिदैवरूप जगत् के कल्याणार्थ कैसे आविर्भूत होता है, वे भक्तमनो-मन्दिर-विहारिणी होनेपर भी समवेत भक्तवृन्दोंके

तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ।
अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत् ॥ ३३ ॥

तस्याः देव्याः घोरेण (भयङ्करेण) अमायता (अपरिमितेन) अतिमहता नादेन (शब्देन) कृत्स्नं (समस्तं) नभः (आकाशं) आपूरितं (व्याप्तं) महान् प्रतिशब्दः अभूत् ॥ ३३ ॥

देवीके अति भयानक, अपरिमित एवं महान् नादसे

दुःखनिवारणार्थं किस प्रकार प्रकट होती हैं, उनका अधिदैव स्थूल शरीर देवताओंके समवेत तेजद्वारा कैसे बन सकता है, देवताओंके समवेत आयुधोंको ग्रहण कर वे किस प्रकारके रूपको धारण करके असुरराज को परास्त कर सूक्ष्म दैवराज्यमें शान्ति स्थापन करती हैं, इसीका कुछ संक्षिप्त रहस्य इस समाधिगम्य गाथामें प्रकाशित हुआ है । देवताओंके अधिभूत बल समूह दानवराजके प्रबल सेनाबलसे परास्त होनेपर भी देवताओंकी समवेत अधिदैव शक्ति एकाधारमें जगदम्बा का आश्रय लेकर अजेय दानवराजको परास्त करनेमें समर्थ होगी इसमें सन्देह ही क्या है। यह देवीका अधिदैव रूप है, इस कारण विशेष-विशेष देवताके तेजद्वारा देवीका विशेष-विशेष अङ्ग बना, और युद्ध उपस्थित होनेके कारण सब देवताओंके आयुधोंके संग्रहकी आवश्यकता हुई ॥ ३१—३२ ॥

चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे ।
चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः ॥ ३४ ॥
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ।
तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः ॥ ३५ ॥

(तेन शब्देन) सकलाः लोकाः चुक्षुभुः (चलिताः) समुद्राः च चकम्पिरे (कम्पिताः), वसुधा (पृथिवी) चचाल (चलितवती) , सकलाः महीधराः (पर्वताः) च चेलुः (चलितवन्तः) ॥ ३४ ॥

देवाः च मुदा (हर्षेण) तां सिंहवाहिनीम् (देवीं) जय इति ऊचुः (कथितवन्तः),मुनयः च भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः (भक्तिविनम्रमनोदेहाः सन्तः) एनां (देवीं) तुष्टुवुः (स्तुतवन्तः) ॥ ३५ ॥

नभोमण्डल परिव्याप्त होगया तथा उस शब्दसे महान् प्रतिशब्द होने लगा । देवीके उस महानादके द्वारा समस्त लोक क्षुब्ध हो उठे, सारे समुद्र कम्पित हो उठे, पृथिवी और सारे पर्वत विचलित हो उठे, देवतागण आनन्दसे सिंहवाहिनी देवीका जय-जयकार करने लगे एवं मुनिगण भी विनम्रभावसे देवीकी स्तुति करने लगे ॥ ३३—३५ ॥

दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ।
सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः ॥ ३६ ॥
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः ।
अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ॥ ३७ ॥
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा ।

(ततः) अमरारयः (असुराः) समस्तं त्रैलोक्यं संक्षुब्धं (व्याकुलीभूतं) दृष्ट्वा उदायुधाः (उद्यतास्त्राः) सन्नद्धाखिलसैन्याः (सज्जितसमस्तसैन्याः) (सन्तः) ते समुत्तस्थुः (समुद्यतवन्तः) ॥ ३६ ॥

(ततः) महिषासुरः "आः एतत् किं" इति क्रोधात् आभाष्य (उक्त्वा) अशेषैः असुरैः वृतः (परिवृतः) तं शब्दं अभि (लक्ष्यीकृत्य) अधावत् (धावितवान्) ॥३७॥

ततः (असुरः) त्विषा (कान्त्या) व्याप्तलोकत्रयां पादाक्रान्त्या (पादाक्रमणेन) नतभुवं किरीटोल्लिखिता-

---

देवताओंके शत्रु असुरगण त्रिलोकको व्याकुल देख अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित सैन्योंको साथ लेकर युद्ध की तैयारी करने लगे। उस समय महिषासुर "आः! यह क्या है" क्रोधसे ऐसा कहकर अनेक असुरोंको साथ लेकर देवीके शब्दको लक्ष्य करके धावित हुआ। उसने देवीको देखा कि इनकी कान्तिके द्वारा त्रिलोक परिव्याप्त हो उठा है, चरण-भारसे पृथ्वी झुकी जा रही है एवं

पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् ॥ ३८ ॥
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिस्वनेन ताम् ।
दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद्व्याप्य संस्थिताम् ॥ ३९ ॥
ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् ।
शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम् ॥ ४० ॥

म्बरां (किरीटघृष्टाकाशां) धनुर्ज्यानिस्वनेन क्षोभिताशेषपातालां (चञ्चलीकृतसमस्तपातालां) भुजसहस्रेण समन्तात् (सर्वतः) दिशः व्याप्य संस्थितां तां देवीं ददर्श ॥ ३८—३९ ॥

ततः (अनन्तरं) तया (देव्या) सह सुरद्विषां बहुधा (बहुप्रकारेण) मुक्तैः (क्षिप्तैः) शस्त्रास्त्रैः आदीपितदिगन्तरम् (प्रकाशितदिङ्मण्डलं) युद्धं प्रववृते (प्रवृत्तं) ॥ ४० ॥

उनके किरीटके द्वारा गगनमण्डल परिव्याप्त हो गया है। देवी सहस्रबाहुओंके विस्तारद्वारा दिङ्मण्डलको परिव्याप्त करके अवस्थान कर रही हैं ॥ ३६—३९ ॥

अब देवीके साथ असुरोंका युद्ध प्रारम्भ हुआ, देवी और असुरोंके द्वारा चलाए गये अस्त्र-शस्त्रोंसे दिगन्तर दीप्तिमान हो उठा। उस समय महिषासुरका सेनापति चिक्षुर नामक महासुर एवं चामर नामक

महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः ।
युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः ॥ ४१ ॥
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः ।
अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः ॥ ४२ ॥

महिषासुरसेनानीः (महिषासुरस्य सर्वसैन्याधिपः) चिक्षुराख्यः (चिक्षुरनामा) महासुरः, चामरः (चामर-नामा असुरः च चतुरङ्गबलान्वितः (हस्ति अश्वरथ-पदाति-सैन्ययुक्तः) अन्यैः (असुरैः) च युयुधे (युद्धं कृतवान्) ॥ ४१ ॥

उदग्राख्यः (उदग्रनामा) महासुरः रथानां षड्भिः अयुतैः (सह अन्वितः) महाहनुः (महाहनुनामा) (असुरः) रथानां अयुतानां सहस्रेण (रथकोटया) अयुध्यत (युद्धं कृतवान्) ॥ ४२ ॥

असुर, हाथी, घोड़े, रथ और पदाती सैन्य एवं अन्य असुरोंके द्वारा परिवेष्टित होकर युद्धमें प्रवृत्त हुए ॥ ४०-४१ ॥

उदग्र नामक महा असुर साठ हजार रथोंके साथ

टीका—जैसे देवपदके अधिकारियोंका वर्णन पहले आचुका है, जिन्होंने अपने अपने शस्त्रादि देवीको अर्पण किये थे, वे सब स्थायी देवपद हैं, उसी प्रकार

पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ।
अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे ॥ ४३ ॥
गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः परिवारितः ।
वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत ॥ ४४ ॥

असिलोमा (असिलोमनामा) महासुरः (रथानां) पञ्चाशद्भिः नियुतैः (पञ्चकोटिभिः) बाष्कलः (बाष्कलनामा) असुरः अयुतानां षड्भिः शतैः (षष्टिलक्षैः) रणे युयुधे ॥ ४३ ॥

परिवारितः (परिवारितनामधेयः असुरः) अनेकैः गजवाजिसहस्रौघैः रथानां कोट्या च वृतः (सन्) तस्मिन् युद्धे अयुध्यत ॥ ४४ ॥

युद्धमें उद्यत हुआ एवं महाहनु नामक असुर एक कोटि रथोंसे वेष्टित होकर युद्ध करने लगा । उस समय असि-लोमा नामक महासुर पांच कोटि तथा बाष्कल नामक

असुरोंके जो स्थायीपद हैं, उनमेंसे कुछके नाम ये सब कहे गये हैं। ये सब अधिदैव रूप हैं। इन देवपदाधि-कारियों और असुरपदाधिकारियोंके अध्यात्मरूप वृत्तिराज्यमें ज्ञानीगण अनुभव करते हैं। असुरराजका पद भी इन्द्रकी तरह स्थायी है। उसमें पदाधिकारीका परिवर्त्तन हुआ करता है ॥ ४१ ॥

बिड़ालाक्षोऽयुनानाञ्च पञ्चाशद्भिरथायुतैः।
युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः॥ ४५॥
अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः।
युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः॥ ४६॥
कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा।

बिड़ालाक्षः (असुरः) अथ (च) रथानां पञ्चाशद्भिः अयुतैः (पञ्चभिः वृन्दैः) परिवारितः (सन्) तत्र संयुगे (युद्धे) युयुधे (युद्धमारब्धवान्)॥ ४५॥

अन्ये महासुराः च तत्र (स्थाने) अयुतशः रथनागहयैः (रथहस्त्यश्वैः) वृताः (सन्तः) देव्या सह तत्र संयुगे (युद्धे) युयुधुः॥ ४६॥

तत्र युद्धे महिषासुरः रथानां दन्तिनां (हस्तिनां)

असुरने साठ लाख रथके साथ उस युद्धक्षेत्रमें युद्ध करना आरम्भ किया। परिवारित नामक असुर भी हजारों-हजारों हाथी, घोड़े एवं कोटि रथोंको साथ लेकर युद्धमें प्रवृत्त हुआ। बिड़ालाक्ष नामक असुर भी पचास अयुत रथोंको साथ लेकर युद्धक्षेत्रमें युद्ध करने लगा। उस युद्धक्षेत्रमें अन्यान्य असुरगण भी अनेक रथ, हस्ती एवं अश्वसे सुसज्जित होकर देवीके साथ युद्ध करने लगे। उस युद्धमें महिषासुर भी असंख्य रथ, हस्ती एवं तुरगके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुआ। कोई तोमर अस्त्र, कोई

हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः ॥ ४७ ॥
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ।
युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥ ४८ ॥
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित् पाशांस्तथापरे ।
देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः ॥ ४९ ॥

तथा (च) हयानां (अश्वानां) च कोटिकोटिसहस्रैः तु वृतः अभूत् ॥ ४७ ॥

(केचित् असुराः) तोमरैः (केचित्) भिन्दिपालैश्च (केचित्) शक्तिभिः (केचित्) मुसलैः, तथा (केचित्) खड्गैः (केचित्) परशुपट्टिशैः (तत्र) संयुगे (युद्धे) देव्या (सह) युयुधः ॥ ४८ ॥

केचित् (असुराः) च शक्तीः चिक्षिपुः (क्षिप्तवन्तः), तथा अपरे केचित् पाशान् चिक्षिपुः अपरे ते (असुराः) खड्गप्रहारैः तां देवीं हन्तुं प्रचक्रमुः (आरब्धवन्तः) ॥४९॥

भिन्दिपाल अस्त्र, कोई शक्ति, कोई मुसल, कोई खड्ग एवं कोई कुठार और पट्टिश अस्त्रद्वारा, देवीके साथ युद्ध करने लगा ॥ ४२–४८ ॥

देवीको लक्ष्य करके कोई शक्तिअस्त्र, कोई पाश-अस्त्र फेंकने लगा, कोई खड्गप्रहारके द्वारा देवीको आहत करनेका प्रयत्न करने लगा। अनन्तर देवी चण्डिकाने भी अपने अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षासे अना-

साऽपि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका।
लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ॥ ५० ॥
अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः।
मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी ॥ ५१ ॥

ततः (अनन्तरं) सा चण्डिका देवी अपि निज-शस्त्रास्त्रवर्षिणी (सती) तानि (असुरक्षिप्तानि) शस्त्राणि अस्त्राणि च लीलया (अनायासेन) एव प्रचिच्छेद ॥ ५० ॥

सुरर्षिभिः (देवैः ऋषिभिः च) स्तूयमाना अनाय-स्तानना (अविकृतमुखी) देवी ईश्वरी असुरदेहेषु शस्त्राणि अस्त्राणि च मुमोच (निक्षिप्तवती) ॥ ५१ ॥

यास ही खेलके समान असुरोंद्वारा चलाये गये अस्त्र-शस्त्रोंको काट डाला एवं सर्वशक्तिमयी देवीकी देवता एवं ऋषिगण स्तुति करने लगे और वे असुरोंपर अस्त्र-शस्त्र प्रहार करने लगीं। किन्तु युद्धके परिश्रमसे उनका मुखमण्डल म्लान नहीं हुआ था ॥ ४९-५१ ॥

टीका—युद्ध प्रकृतिकी स्वाभाविक क्रिया है। धर्मा-धर्मका युद्ध, सामाजिक युद्ध, वृत्तिराज्यका युद्ध और दैवजगत्में इस प्रकारका देवासुरसंग्राम प्राकृतिक-शृंखलाकी सामञ्जस्य रक्षा करनेके लिए स्वाभाविक रूपसे हुआ करता है। युद्धक्रिया न स्थूल जगत्से

सोऽपि क्रुद्धो धूतसटो देव्या वाहनकेशरी ।
चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः ॥ ५२ ॥
निश्वासान्मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका ।
त एत सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः ॥ ५३ ॥

सः (प्रसिद्धः) देव्याः वाहनकेशरी (वाहनसिंहः) अपि क्रुद्धः, (अतएव) धूतसटः (कम्पितस्कन्धलोमा) (सन्) वनेषु हुताशनः (दावाग्निः) इव असुरसैन्येषु (मध्ये) चचार (विचरितवान्) ॥ ५२ ॥

रणे (युद्धे) असुरैः युध्यमाना अम्बिका यान् च निश्वासान् मुमुचे (त्यक्तवती), ते (निश्वासाः) सद्यः (तत्क्षणे) एव शतसहस्रशः गणाः (प्रमथाः) सम्भूताः (जाताः) ॥ ५३ ॥

देवीका वाहन सिंह भी क्रोधसे स्कन्धके बालोंको

उठ सकती है और न सूक्ष्म दैवराज्यसे उठ सकती है। सूक्ष्म दैवीराज्यमें देवता और असुरोंको अपने अपने अधिकारमें रखकर दैवीअधिकारोंका सामञ्जस्य रखनेके लिये देवासुर-संग्राम हुआ करता है और जब असुरोंका तपःप्रभाव देवताओंके तपःप्रभावसे बढ़ जाता है, तभी महाशक्तिके आविर्भाव की आवश्यकता होती है। उसीप्रकार इस मृत्युलोकमें अवतारोंके आविर्भावकी आवश्यकता होती है ॥ ५१ ॥

युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः।
नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिता ॥ ५४ ॥
अवादयन्त पटहान् गणाः शंखांस्तथापरे।
मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे ॥ ५५ ॥

ते (गणाः) देवीशक्त्युपबृंहिताः (देवीशक्त्या वर्द्धितसामर्थ्याः सन्तः) परशुभिः भिन्दिपालासिपट्टिशैः असुरगणान् नाशयन्तः युयुधुः ॥ ५४ ॥

तस्मिन् युद्धमहोत्सवे (केचित्) गणाः पटहान्, तथा अपरे (गणाः) शङ्खान् तथा एव अन्ये मृदङ्गान्, च अवादयन्त ॥ ५५ ॥

हिलाता हुआ दावाग्निकी तरह सैन्योंके बीचमें विचरण करने लगा। तब देवी अम्बिकाने असुरोंके साथ युद्ध करती हुई जितने निश्वासोंका परित्याग किया, तत् क्षणात् उन निश्वासोंसे शतसहस्र प्रमथ सैन्य आविर्भूत हो गये एवं वे सब देवीकी शक्तिसे शक्तिशाली होकर परशु, भिन्दिपाल, खड्ग और पट्टिशास्त्र लेकर असुरोंका विनाश करते हुए युद्ध करने लगे ॥ ५२-५४ ॥

उस युद्धरूपी महोत्सवमें सब गण कोई पटह, शंख, कोई मृदङ्ग बजाने लगे अनन्तर देवीने त्रिशूल, गदा, शक्ति, ऋष्टि एवं खड्गद्वारा सैकड़ों महासुरोंको मार डाला,

ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिऋष्टिभिः ।
खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् ॥ ५६ ॥
पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ।
असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत् ॥ ५७ ॥
केचिद्द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ।
विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते ॥ ५८ ॥

ततः अनन्तरं देवी त्रिशूलेन, गदया, शक्तिऋष्टिभिः खड्गादिभिः च शतशः महासुरान् निजघान (मारितवती) ॥ ५६ ॥

अन्यान् असुरान् च घण्टास्वनविमोहितान् (घण्टाध्वनिना विचेतसः कृत्वा) भुवि पातयामास, अन्यान् च पाशेन बद्ध्वा अकर्षयत् (आकृष्टवती)॥५७॥

केचित् (असुराः) तीक्ष्णैः खड्गपातैः द्विधा कृताः अपरे तथा (च) गदया विपोथिताः (हिंसिताः सन्तः) निपातेन (निपतनेन) भुवि (पृथिव्यां) शेरते (सुप्ताः) ॥ ५८ ॥

कितने ही को घण्टाध्वनिद्वारा विमोहित किया और अन्य कितने ही असुरोंको पाशद्वारा बान्धकर खैंचा । कितने ही को तीक्ष्ण खड्गद्वारा दो टुकड़े किये कितने ही गदापातके द्वारा विमर्दित हो धराशायी हुए कितने ही असुर मुसलद्वारा अत्यन्त आहत होकर

वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ।
केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि ॥ ५६ ॥
निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे ।
सेनानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ॥ ६० ॥
केषाञ्चिद्बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथाऽपरे ।
शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ॥ ६१ ॥

केचित् (असुराः) च मुसलेन भृशं (अत्यन्तं) हताः (आहताः सन्तः) रुधिरं वेमुः (वमन्ति स्म) केचित् (असुराः) शूलेन वक्षसि भिन्नाः (विदारिताः सन्तः) भूमौ निपातिताः ॥ ५९ ॥

केचित् सेनानुकारिणः (सेनापतयः) त्रिदशार्दनाः (असुराः) शरौघेण निरन्तराः कृताः (व्याप्ताः सन्तः) (रणाङ्गणे) प्राणान् मुमुचुः (त्यक्तवन्तः) ॥ ६० ॥

(देव्या) केषांचित् (असुराणां) बाहवः छिन्नाः तथा अपरे (असुराः) छिन्नग्रीवाः (भवन्ति), अन्येषां शिरांसि पेतुः (पतितानि) अन्ये मध्ये (मध्यदेशे) विदारिताः ॥ ६१ ॥

रक्त वमन करने लगे एवं कितने ही की छाती शूलसे विदीर्ण होनेसे वे सब पृथिवीपर गिर पड़े ॥ अन्य कितने ही असुरसेनापतियोंने शरसमूहोंसे आच्छन्न होकर रणाङ्गनमें प्राण परित्याग किये । उस

विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः।
एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधा कृताः॥ ६२॥
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः॥ ६३॥
कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः।

अपरे महासुराः विच्छिन्नजङ्घाः (सन्तः) ऊर्व्यां (पृथिव्यां) पेतुः (पतिताः) केचित् देव्या एकबाह्वक्षि-चरणाः (केचित् च) द्विधा कृताः॥ ६२॥

अन्ये (असुराः) च शिरसि छिन्ने सत्यपि (भूमौ) पतिताः पुनः उत्थिताः॥ ६३॥

(केचित्) कबन्धाः (छिन्नशिरसः) गृहीतपरमा-युधाः (सन्तः) देव्या (सह) युयुधुः। अपरे च (कबन्धाः)

समय देवीने कितने ही के बाहु, कितने ही के गले एवं अन्यान्य कितनेके शिर काट डाले एवं कितने ही के मध्यभाग काट डाले। कितनेही असुर जांघ कट जानेसे पृथिवीपर गिर पड़े, देवीने अन्य कितनेही के एक एक करके बाहु, चक्षु और पैर काट डाले एवं कितने ही के दो टुकड़े कर डाले अन्य कितने ही असुरोंके देवीके द्वारा शिर काट लिये जाने पर वे पृथिवीपर गिर पड़े और पुनः उठ खड़े हुए॥ ५५-६३॥

कितनेही कबन्धोंने (शिर कटे हुए देह धारण करने

ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्य्यलयाश्रिताः ॥ ६४ ॥
कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः ।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः ॥ ६५ ॥
पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा ।
अगम्या साऽभवत्तत्र यत्राभूत् स महारणः ॥ ६६ ॥

तूर्य्यलयाश्रिताः (वाद्यलयानुसारिणः सन्तः) तत्र युद्धे ननृतुः (नृत्यन्ति स्म) ॥ ६४ ॥

अन्ये महासुराः कबन्धाः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः छिन्नशिरसः (छिन्नानि येषां शिरांसि ते) देवीं तिष्ठ तिष्ठ इति भाषन्तः (कथयन्तः बभूवुः) ॥ ६५ ॥

सः महारणः (महायुद्धं) यत्र अभूत् सा वसुन्धरा (पृथिवी) पातितैः रथनागाश्वैः असुरैः च अगम्या अभवत् ॥ ६६ ॥

वालोंने) उत्तम आयुध ग्रहण करके देवीके साथ युद्ध करना आरम्भ किया एवं अन्य कोई-कोई वाद्य लय-के साथ मिलकर नाचने लगे । अन्य महासुर कबन्ध-गण खड्ग, शक्ति और ऋष्टि हाथमें लेकर देवीके सैन्योंके शिर काटते हुए देवीको "ठहरो, ठहरो" ऐसा कहने लगे ॥ ६४-६५ ॥

उस समय जिस स्थानमें युद्ध हो रहा था, वह स्थान, गिरे हुए रथ, हाथी, अश्व, और असुरोंके द्वारा

शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः ।
मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥ ६७ ॥
क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।
निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥ ६८ ॥
सच सिंहो महानादमुत्सृजन् धूतकेशरः ।

तत्र असुरसैन्यस्य च मध्ये वारणासुरवाजिनां (हस्ति-असुर-अश्वानां) शोणितौघाः (रक्तप्रवाहाः) सद्यः (तत्क्षणं) महानद्यः (इव) प्रसुस्रुवुः (इतस्ततः चलिताः) ॥ ६७ ॥

अम्बिका असुराणां तत् महासैन्यं क्षणेन तथा निन्ये, यथा वह्निः तृणदारुमहाचयम् (तृणकाष्ठानां महाराशिं) क्षयं (नाशं नयति) ॥ ६८ ॥

सः सिंहः च (अपि) महानादं (महाशब्दं) उत्सृजन् (त्यजन्) धूतकेशरः (कम्पितस्कन्धरोमा)

अगम्य हो उठा। उन असुर सैन्योंके बीचमें हाथी, असुर एवं घोड़ोंकी शोणितराशि (रक्त) महानदी की तरह प्रवाहित होने लगी ॥ ६६ ६७ ॥

अग्नि जिसप्रकार तृण एवं काठके ढेरको भस्म कर देती है, उसीतरह देवी अम्बिकाने असुरोंके प्रबल सैन्य-का तत्क्षणात् विनाश कर डाला। देवीका वाहन सिंह भी स्कन्ध-रोमावली हिलाता हुआ महान् गर्जन करके

शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥ ६९ ॥
देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं तथासुरैः ।
यथैषां तुतुषुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥ ७० ॥

इति मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
महिषासुरसैन्यवधनामकः द्वितीयोऽध्यायः ।

अमरारीणां शरीरेभ्यः असून् (प्राणान्) विचिन्वति (निःसारयति इव (उत्प्रेक्षा) ॥ ६९ ॥

तत्र तैः देव्याः गणैः च असुरैः (सह) तथा युद्धं कृतं, यथा एषां (गणानां) देवाः दिवि (आकाशे) पुष्पवृष्टि-मुचः (सन्तः) तुतुषुः ॥ ७० ॥

अवशिष्ट असुरोंके मानो प्राण निकालने लगा ॥६८-६९॥

देवीके सैन्यगणने भी असुरोंके साथ घोर युद्ध किया, जिसको देखकर देवताओंने प्रसन्न होकर आकाशसे पुष्पवृष्टि की ॥ ७० ॥

देवी-माहात्म्यका महिषासुरसैन्यवध नामक द्वितीय
अध्याय समाप्त हुआ ।

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

निहन्यमानं तत् सैन्यमवलोक्य महासुरः ।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद् ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ॥ २ ॥
स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः ।
यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः ॥ ३ ॥

ऋषिः उवाच, अथ सेनानीः चिक्षुरः (चिक्षुरनामा) महासुरः तत् सैन्यं निहन्यमानं अवलोक्य (दृष्ट्वा) कोपात् योद्धुम् अम्बिकां (प्रति) ययौ (गतवान्) ॥१-२॥

सः (चिक्षुरः) असुरः समरे (युद्धे) शरवर्षेण तोयदः (मेघः) तोयवर्षेण मेरुगिरेः शृंगं यथा (इव) देवीं ववर्ष (आच्छादितवान्) ॥ ३ ॥

ऋषिने कहा—सेनापति महा असुर चिक्षुर उस सैन्य-समूहको निहत देखकर अतिक्रोधसे अम्बिकाके साथ युद्ध करनेको गया। जिसप्रकार मेघ जलवर्षणके द्वारा मेरु पर्वतके शृंगको ढक देता है, उसी प्रकार उस असुरने शरवर्षणद्वारा देवीको आच्छन्न कर दिया। देवीने भी अनायास ही असुरद्वारा चलाये हुए शर-समूहको काटकर बाणके द्वारा उसके अश्व एवं सारथी-को मार डाला तथा असुरके धनु और अति उन्नत

तस्य छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान् ।
जघान तुरगान् बाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम् ॥ ४ ॥
चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजञ्चातिसमुच्छ्रितम् ।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥ ५ ॥
स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः ॥ ६ ॥

ततः (अनन्तरं) देवी लीलया (अनायासेन) एव तस्य (असुरस्य) शरोत्करान् (शरसमूहान्) छित्त्वा बाणैः तुरगान् (अश्वान्) वाजिनां (अश्वानां) यन्तारं (सारथिं) च जघान (हतवती) ॥ ४ ॥

सद्यः (तत्क्षणे) धनुः अतिसमुच्छ्रितं (अत्युन्नतं) ध्वजं च चिच्छेद, (ततः) छिन्नधन्वानं (तमसुरं) आशुगैः (बाणैः) गात्रेषु विव्याध च एव (ताड़ितवती) सः असुरः छिन्नधन्वा विरथः (रथरहितः हताश्वः हतसारथिः (सन्) खड्गचर्मधरः (सन्) तां देवीं (प्रति) अभ्यधावत (धावितवान्) ॥ ५-६ ॥

ध्वजाको भी काट डाला, तब उस असुरका धनुष छिन्न होनेपर बाणके द्वारा उसको विद्ध किया ॥ १-५ ॥

वह असुर धनु, रथ, अश्व एवं सारथीसे रहित होकर केवल खड्ग और चर्म लेकर देवीकी ओर दौड़ा

सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्द्धनि।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥ ७ ॥
तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन !।
ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥ ८ ॥
चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः।

(सः असुरः) तीक्ष्णधारेण खड्गेन मूर्द्धनि सिंहम् आहत्य अतिवेगवान् (सन्) देवीम् अपि सव्ये भुजे आजघान ॥ ७ ॥

हे नृपनन्दन ! (सुरथ) खड्गः तस्याः (देव्याः) भुजं प्राप्य पफाल (भग्नवान्), ततः सः (चिक्षुरः) कोपात् अरुणलोचनः (रक्तनयनः) (सन्) शूलं जग्राह ॥ ८ ॥

ततः (शूलग्रहणानन्तरं) महासुरः तेजोभिः जाज्व-

एवं तीक्ष्ण धारवाले खड्गद्वारा सिंहके मस्तकपर प्रहार करके बड़ी जल्दीसे देवीके वाम बाहुपर प्रहार किया। हे नृपनन्दन सुरथ ! असुरद्वारा निक्षिप्त खड्ग देवीके बाहुपर गिर कर टूट जानेसे उस असुरने क्रोधसे रक्त नयन होकर शूल ग्रहण किया। तब महा असुरने भद्रकालीके ऊपर शूलास्त्र फेका, वह शूल

जाज्वल्यमानं तेजोभीरविबिम्बमिवाम्बरात् ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत।
तेन तच्छतधानीतं शूलं स च महासुरः ॥ १० ॥
हते तस्मिन् महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥ ११ ॥

ल्यमानम् अम्बरात्) (आकाशे, सप्तम्यर्थे पञ्चमी) रवि-बिम्बम् इव तत् शूलं तु भद्रकाल्यां चिक्षेप ॥ ९ ॥

तदा देवी शूलम् आपतत् (आगच्छत्) दृष्ट्वा शूलं अमुञ्चत तेन (देवीशूलेन) तत् शूलं (चिक्षुरस्य शूलं) शतधा नीतं (चूर्णीकृतं) सः महासुरः च (शतधा नीतः) ॥ १० ॥

महिषस्य चमूपतौ (सेनापतौ) महावीर्ये तस्मिन् (चिक्षुरे) हते (सति) त्रिदशार्दनः चामरः (असुरः) गजारूढः (सन्) आजगाम ॥ ११ ॥

आकाशमें जाकर तेजसे प्रज्वलित सूर्यके समान प्रतीत होने लगा। उस शूलास्त्रको आते हुए देखकर देवीने भी शूलास्त्र फेंका, इस शूलास्त्रने असुरके शूल एवं चिक्षुरासुरको भी खण्ड-खण्ड कर डाला। इस प्रकार महिषासुरके सेनापति महावीर्यशाली असुरके मारे जानेपर देव-शत्रु चामर नामक असुर हस्तीपर सवार

सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम्।
हुङ्काराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥ १२ ॥
भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः।
चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥ १३ ॥
ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरस्थितः।

अथ सः (चामरः) अपि देव्याः (सम्बन्धे) शक्तिं मुमोच, अम्बिका हुङ्काराभिहतां (अतएव) निष्प्रभां तां शक्तिं भूमौ द्रुतं (शीघ्रं) पातयामास ॥ १२ ॥

चामरः शक्तिं भग्नां निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः (सन्) शूलं चिक्षेप (क्षिप्तवान्) सा देवी तत् (शूलं) अपि बाणैः अच्छिनत् (छिन्नवती) ॥ १३ ॥

ततः सिंहः समुत्पत्य (उत्प्लुत्य) गजकुम्भान्तरस्थितः (चामरासुरवाहनगजस्य कुम्भमध्ये अवस्थित

होकर आया। चामरासुरने भी शक्ति-अस्त्र चलाया, परंतु देवीने हुङ्कारद्वारा उसको प्रतिहत करके जमीनपर गिरा दिया। चामरने शक्ति अस्त्रको भग्न और जमीनपर गिरा हुआ देखकर क्रोधसे शूलास्त्र फेका, देवीने उसको भी बाणके द्वारा छिन्न कर डाला ॥ ६-१३ ॥

तदनन्तर सिंह कूदकर चामरके हस्तीके शिररूपी

बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥ १४ ॥
युध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥ १५ ॥
ततो वेगात् खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा ।
करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक् कृतम् ॥ १६ ॥

(सन्) तेन त्रिदशारिणा (चामरेण) सह बाहुयुद्धेन उच्चैः युयुधे ॥ १४ ॥

ततः युध्यमानौ तस्मात् नागात् (हस्तिनः) महीं पृथिवीं गतौ (प्राप्तौ) तौ तु (सिंहचामरौ) अतिसंरब्धौ (अतिक्रुद्धौ) अतिदारुणैः (अतिकष्टदायकैः) प्रहारैः युयुधाते ॥ १५ ॥

ततः मृगारिणा (सिंहेन) वेगात् खं (आकाशं) उत्पत्य निपत्य च करप्रहारेण (चपेटाघातेन) चामरस्य (चामरनामधेयस्य असुरस्य) शिरः पृथक् कृतम् (छिन्नमित्यर्थ) ॥ १६ ॥

कुम्भके ऊपर बैठ उस असुर-सेनापतिके साथ घोर बाहुयुद्ध करने लगा। वे दोनों युद्ध करते-करते हाथीसे उतर कर अत्यन्त क्रोधसे परस्पर दारुण प्रहार करके युद्ध करने लगे। तत्पश्चात् सिंहने बहुत शीघ्रतासे आकाशमें कूदकर चामरका मस्तक कराघातसे धड़से

उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः ।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥ १७ ॥
देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् ।
वाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम् ॥ १८ ॥
उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम् ।

देव्या रणे उदग्रः (उदग्रनामा असुरः) च शिलावृक्षादिभिः हतः (मारितः) करालः (करालनामा असुरः) च (देव्या) दन्तमुष्टितलैः निपातितः ॥ १७ ॥

(ततः) देवी क्रुद्धा (सती) गदापातैः उद्धतं (उद्धतनामासुरं) च चूर्णयामास. भिन्दिपालेन वाष्कलं बाणैः ताम्रं (ताम्रनामासुरं) तथा अन्धकं (अन्धकनामासुरं) च (चूर्णयामास) ॥ १८ ॥

त्रिनेत्रा (त्रिनयना) परमेश्वरी उग्रास्यम्, उग्रवीर्य्यं,

अलग कर डाला। तब उदग्र नामक असुरके युद्धमें प्रवृत्त होनेपर देवीने शिला और वृक्षादिके द्वारा उसको आहत किया एवं कराल नामक असुरको दाँत, मुष्टि और तलप्रहारसे मार गिराया। अनन्तर देवीने क्रुद्ध होकर गदाघातके द्वारा उद्धत नामक असुरको, भिन्दिपालके द्वारा वाष्कल असुरको एवं बाणके द्वारा ताम्र और अन्धकासुरको चूर-चूर कर डाला। परमेश्वरी

त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥ १६ ॥
बिड़ालस्यासिना कायात् पातयामास वै शिरः ।
दुर्द्धरं दुर्मुखञ्चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ २० ॥
एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः ।

तथैव महाहनुं च (एतन्नाम्नः त्रीन् असुरान्) त्रिशूलेन जघान (मारितवती) ॥ १६ ॥

(देवी) असिना (खड्गेन) विडालस्य (विडालनामासुरस्य) शिरः कायात् (देहात्) वै पातयामास, दुर्द्धरं दुर्मुखं (दुर्द्धरदुर्मुखनामानौ) उभौ (असुरौ) शरैः (बाणैः) यमक्षयं (यमालयं) निन्ये (प्रापितवती) ॥ २० ॥

एवं (एवम् प्रकारेण) स्वसैन्ये (निजसैन्ये) संक्षीयमाणे तु (देव्या क्षयं नीते सति) महिषासुरः माहिषेण

देवीने त्रिशूलद्वारा उग्रास्य, उग्रवीर्य्य एवं महाहनु नामक तीनों असुरोंको मार डाला। एवं तलवारके द्वारा विडालासुरका मस्तक देहसे अलग करके शरोंके द्वारा दुर्द्धर और दुर्मुख नामक दोनों असुरोंको यमालय भेज दिया ॥ १५-२० ॥

इस प्रकार अपने सैन्यके विनष्ट हो जानेपर महिषा-

माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान् ॥ २१ ॥

स्वरूपेण (महिषाकारेण) तान् (निश्वासोत्पन्नान्) गणान् त्रासयामास (भीतान् कृतवान्) ॥ २१ ॥

सुर महिषरूप धारण करके देवीके गणोंको डराने लगा ॥ २१ ॥

टीका–यह पहले ही सिद्ध किया गया है कि, त्रिगुणमयी महाशक्तिका प्रथम चरित्र तमोमयी शक्तिके रहस्य से पूर्ण है, इस कारण उस चरित्रमें युद्ध-क्रिया विष्णु भगवान्द्वारा सम्पादित हुई थी। यह द्वितीय चरित्र ब्रह्मशक्तिके रजोमयीरूपके रहस्यसे पूर्ण है। युद्धका जो वर्णन किया गया है, वह सब समाधिगम्य सत्य विषय है, इसमें सन्देह नहीं। पशुओंमें महिष तमोगुणकी प्रतिकृति है। असुरराजके युद्धके समयमें इस रूपको धारण करनेसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड-जननी महामायाके इस द्वितीय चरित्रके विज्ञानकी और भी पुष्टि होती है। तमोबहुल रज कितना अनर्थ कर सकता है, जिसको दमन करनेके लिये साक्षात् ब्रह्मशक्तिको रजोमय ऐश्वर्य्यकी सहायता लेनी पड़ती है; यही इस चरित्रका आध्यात्मिक रहस्य है, जो समाधिगम्य है। वस्तुतः दुर्गा देवीके उपास्यरूपका यही आध्यात्मिक तात्पर्य्य है कि, तमोगुणरूपी महिषासुरको रजोगुणरूपी सिंहने

काँश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथाऽपरान् ।
लाङ्गूलताडितांश्चान्यान् शृङ्गाभ्याञ्च विदारितान् ॥२२॥
वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च ।
निश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले ॥ २३ ॥

कांश्चित् (गणान्) तुण्डप्रहारेण (वक्त्राघातेन), तथा अपरान् (अन्यान् गणान्) खुरक्षेपैः (खुराघातैः) अन्यान् च लाङ्गूलताडितान् शृङ्गाभ्यां विदारितान् च, (कृत्वा) (भूतले पातयामास) ॥ २२ ॥

कांश्चित् (गणान्) वेगेन, अपरान् नादेन, (शब्देन) भ्रमणेन (मण्डलाकारगमनेन) च, अन्यान् निश्वासपवनेन (निश्वासवायुना) भूतले पातयामास ॥ २३ ॥

किसीको तुण्डाघातके द्वारा किसीको खुराघातके द्वारा किसीको लाङ्गूल ताड़न एवं किसीको शृङ्गके द्वारा विदीर्ण करने लगा और किसी अन्य सैन्यको वेग एवं गर्जनके द्वारा, अन्य कितने सैन्योंको भ्रमणके द्वारा, एवं

भगवतीका वाहन बन कर अपने अधीन कर लिया है, जिसपर शुद्धसत्त्वमयी चिन्मयरूपधारिणी ब्रह्मशक्ति विराजमान हैं। देवासुर संग्राममें जयलाभ करनेके अनन्तरकी दशाका यह शान्त सत्त्वमय स्वरूप है क्योंकि युद्धके समय रजका विकाश रहता है ॥ २१ ॥

निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः
सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपश्चक्रे ततोऽम्बिका ॥ २४ ॥
सोऽपि कोपान्महावीर्य्यः खुरक्षुण्णमहीतलः ।
शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ॥ २५ ॥
वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्य्यत ।

सः असुरः प्रमथानीकं (प्रमथसैन्यं) (एवं) निपात्य महादेव्याः सिंहं हन्तुं अभ्यधावत, ततः अम्बिका कोपं (क्रोधं) चक्रे (कृतवती) ॥ २४ ॥

महावीर्य्यः सः (असुरः) अपि कोपात् खुरक्षुण्ण-महीतलः (सन्) शृङ्गाभ्यां उच्चान् पर्वतान् चिक्षेप, ननाद च (शब्दं कृतवान्) ॥ २५ ॥

तस्य (असुरस्य) वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही (पृथिवी) व्यशीर्य्यत (विशीर्णा अभवत्) लांगूलेन आहतः

अन्य कितनेहीको निश्वास वायुकेद्वारा पृथ्वीपर गिरा दिया। इस प्रकार वह महिषासुर प्रमथ सैन्योंको आहत करके महादेवीके सिंहको आहत करनेके लिये दौड़ा तब, देवी क्रोधित हो उठीं ॥ २४ ॥

तब वह महावीर्य्यशाली असुर भी खुरके द्वारा पृथ्वी-तलको पीसता हुआ शृंगकेद्वारा उच्च-उच्च पर्वतोंको फैंकने लगा और घोर शब्द करने लगा। उसके द्रुत-

लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ॥ २६ ॥
धूतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्घनाः ।
श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः ॥ २७ ॥
इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम् ।

(ताडितः) अब्धिः (समुद्रः) च सर्वतः प्लावयामास (जलैर्व्याप्तवान्) ॥ २६ ॥

घनाः (मेघाः) धूतशृंगविभिन्नाः (कम्पितशृंगविदीर्णाः) खण्डं खण्डं ययुः शतशः अचलाः (पर्वताः) च श्वासानिलास्ताः (श्वासवायुना उत्क्षिप्ताः सन्तः) नभसः (आकाशात्) निपेतुः (पतितवन्तः) ॥ २७ ॥

तदा (तस्मिन् काले) इति (उक्तप्रकारेण) आपतन्तं (आगच्छन्तं) क्रोधसमाध्मातं (क्रोधोद्दीप्तं) महासुरं

गतिसे भ्रमण करनेसे पृथिवी विदीर्ण हो गयी, उस समय महिषासुर पूछकेद्वारा समुद्रपर आघात करने लगा, उससे समुद्रसे जलराशि उछलकर सब ओर प्लावित हो गया। उस समय उसके शृंग-कम्पनकेद्वारा मेघसमूह विदीर्ण होकर खण्ड-खण्ड हो गये एवं निश्वास-वायुकेद्वारा सैकड़ों अचल पर्वत आकाशसे पृथिवीपर गिर पड़े ॥ २७ ॥

इस प्रकारसे क्रोधित होकर महिषासुरको आते देख चण्डिका देवी उसके बधके लिये क्रोधित हो

दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाऽकरोत् ॥२८॥
सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम् ।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥ २९ ॥
ततः सिंहोऽभवत् सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः ।
छिनत्ति तावत् पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ॥ ३० ॥

(महिषासुरं) दृष्ट्वा सा चण्डिका तद्वधाय (तस्य असुरस्य वधाय) कोपं अकरोत् ॥ २८ ॥

सा (चण्डिका) वै (निश्चये) तस्य (सम्बन्धे) पाशं क्षिप्त्वा तं महासुरं बबन्ध, सः (असुरः) अपि महामृधे (महायुद्धे) बद्धः (सन्) माहिषं रूपं तत्याज (त्यक्तवान्) ॥ २९ ॥

ततः सद्यः (तत्क्षणमेव सः असुरः) सिंहः अभवत् (सिंहरूपं धृतवान्) अम्बिका यावत् तस्य (सिंहस्य) शिरः छिनत्ति तावत् खड्गपाणिः पुरुषः अदृश्यत ॥ ३० ॥

उठीं । एवं पाश फेंककर उस असुरको बान्धा, तब उसने महिषरूपको परित्याग कर दिया और सिंहरूप धारण किया, एवं, जबतक अम्बिका उसका शिर काटनेको ही थी तबतक वह खड्गधारी एक पुरुष दिखायी देने लगा ॥ २९-३० ॥

तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः ।
तं खड्गचर्मणा सार्द्धं ततः सोऽभून्महागजः ॥ ३१ ॥
करेण च महासिंहं तञ्चकर्ष जगर्ज च ।
कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ॥ ३२ ॥
ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः ।

ततः एव आशु (शीघ्रं) देवी सायकैः (बाणैः) खड्गचर्मणा सार्द्धं (सह) तं पुरुषं चिच्छेद । ततः सः (महिषासुरः) महागजः (महाहस्ती) अभूत् (हस्तिरूपं धृतवान्) ॥ ३१ ॥

(सः महागजः) करेण (शुण्डादण्डेन) तं महासिंहं (देवीसिंहं) चकर्ष (आकृष्टवान्) जगर्ज (गर्जितवान्) च (ततः) तु (सिंहं) कर्षतः (तस्य) करं (शुण्डं) देवी खड्गेन निरकृन्तत (छिन्नवती) ॥ ३२ ॥

ततः (अनन्तरं) महासुरः भूयः (पुनरपि) माहिषं वपुः आस्थितः (प्राप्तः सन्) तथा एव सचराचरम्

उस समय देवीने बाणकेद्वारा खड्ग और चर्म सहित उसको छिन्न कर डाला, उसने तत्क्षण हाथीका रूप धारण किया । और शुण्डकेद्वारा देवीके सिंहको खींचकर गर्जन कर उठा, देवीने खड्गद्वारा उसके शुण्डको काट डाला । अनन्तर वह महासुर पुनः महिष-

तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ३३ ॥
ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम् ।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ॥ ३४ ॥
ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्य्यमदोद्धतः ।
विषाणाभ्याञ्च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान् ॥ ३५ ॥

(स्थावरजङ्गमात्मकं) त्रैलोक्यं क्षोमयाभास (व्याकुलीचकार) ॥ ३३ ॥

ततः जगन्माता चण्डिका क्रुद्धा (सती) उत्तमं पानं (मद्यं) पुनः पुनः एव पपौ, (ततः) अरुणलोचना (रक्तनयना) जहास च ॥ ३४ ॥

बलवीर्य्यमदोद्धतः सः असुरः अपि ननर्द (नदति स्म) च (तथा) चण्डिकां प्रति भूधरान् (पर्वतान्) विषाणाभ्यां (शृङ्गाभ्यां) चिक्षेप च (क्षिप्तवान्) ॥ ३५ ॥

देह धारण करके चराचर ब्रह्माण्डको पूर्ववत् क्षुब्ध करने लगा ॥ ३३ ॥

तदनन्तर जगदम्बा चण्डिकाने क्रुद्ध होकर बार बार अत्युत्तम मद्यपान किया । तब उनके नेत्र लाल हो गये और वे बार बार हास्य करने लगीं ॥ ३४ ॥

बल, वीर्य्य एवं मदसे उद्धत वह असुर भी गर्जन करता हुआ शृङ्गकेद्वारा पर्वतोंको उठाकर देवी चण्डिकाके ऊपर फेंकने लगा ॥ ३५ ॥

सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः ।
उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥ ३६ ॥
देव्युवाच ॥ ३७ ॥
गर्ज्ज गर्ज्ज क्षणं मूढ ! मधु यावत् पिवाम्यहम् ।

सा (देवी) च तेन (असुरेण) प्रहितान् (प्रक्षिप्तान्) तान् (भूधरान्) शरोत्करैः (बाणसमूहैः) चूर्णयन्ती मदोद्धूतमुखरागा (मदेन उद्धूतः अतिशयितः मुखरागः अधररक्तिमा यस्याः सा सती) तं (असुरं) आकुलाक्षरं (अव्यक्ताक्षरं यथा तथा) उवाच ॥ ३६ ॥

देवी उवाच, मूढ़ ! क्षणं गर्ज्ज गर्ज्ज, यावत् अहं मधु (मद्यं) पिवामि । (यथा त्वं गर्जसि तथा) मया

तब चण्डिका शरोंकेद्वारा असुरके फेंके हुए पर्वतोंको विचूर्ण करती हुई अस्पष्ट शब्दसे उसको कहने लगी, उस समय उनका मुखमंडल मद्यकेद्वारा अत्यन्त लाल हो रहा था ॥ ३६ ॥

देवी ने कहा,-रे मूढ़ ! मैं जबतक मधु पान करती

टीका-इस मधुपानका रहस्य अतिनिगूढ़ भावोंसे पूर्ण है । यद्यपि समाधि भाषामय सप्तशतीगीताका प्रत्येक श्लोक और प्रत्येक पद त्रिभावोंसे पूर्ण है, परन्तु सबकी त्रिभावात्मक व्याख्या अतिदुर्ज्ञेय है और बहुत

मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ॥ ३८ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ३६ ॥

त्वयि हते (सति) आशु (शीघ्रं) अत्र एव देवताः गर्जिष्यन्ति ॥ ३७-३८ ॥

ऋषिः उवाच, सा (देवी) एवं उक्त्वा समुत्पत्य (ऊर्ध्वं उत्प्लुत्य) तं महासुरं आरूढा (सती) पादेन

हूँ, तबतक तू गर्जन करले, मेरे द्वारा तेरे मारे जानेपर अभी यहाँ देवता गर्जन करेंगे ॥ ३७-३८ ॥

ऋषिने कहा,—देवी महिषासुरसे इस प्रकार कहकर उसपर आरोहण कर, पादकेद्वारा कण्ठको

स्थलोंमें बुद्धिभेद उत्पन्नकारी है। यह प्रसंग सदाचार-विरुद्ध होनेसे इसकी त्रिविध व्याख्या होना परमावश्यक है। मादक द्रव्योंमें परम विभूतिरूपी मधु ग्रहण करनेसे प्रत्याहार और धारणाकी सिद्धि होती है। योगियोंके द्वारा यह अनुभूत है कि, मादक द्रव्य ध्यान और समाधिका विरोधी होनेपर भी अन्तर्मुख व्यक्तियोंमें तुरत प्रत्याहारकी उत्पत्ति करता है एवं धारणामें सिद्धि प्राप्त कराता है। दूसरी ओर ऐसी सिद्धि-प्राप्त करनेमें जो धारणा-ध्यान-समाधि-मूलक संयम-क्रिया है, और जिसमें धारणाका प्राधान्य रहता है, उसमें भी मधु कारण होता है, इस कारण तन्त्रशास्त्रोंमें इसको

एवमुक्त्वा समुत्पत्य सारूढ़ा तं महासुरम् ।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताड़यत् ॥ ४० ॥
ततः सोऽपि पदाक्रान्तस्तया निजमुखात्तदा ।
अर्द्धनिष्क्रान्त एवासीद्देव्या वीर्येण संवृतः ॥ ४१ ॥

कण्ठे आक्रम्य च शूलेन एनं अताडयत् (वक्षसि ताडितवती) ॥ ३९-४० ॥

ततः तया (देव्या) पदाक्रान्तः सः (असुरः) अपि ततः (महिषरूपात्) निजमुखात् अर्द्धनिष्क्रान्त एव (सन्) देव्या अतिवीर्य्येण संवृतः (स्थगितः) ॥४१॥

आक्रमण करके शूलकेद्वारा उसके वक्षःस्थलमें आघात किया ॥ ३९-४० ॥

तदन्तर देवीकेद्वारा इस प्रकार चरणसे आक्रान्त उस असुरके मुखसे दूसरा शरीर निकलने लगा, उसके आधा निकलते ही देवीने उसको बलात् रोकदिया॥४१॥

"कारण" भी कहते हैं। मधु शक्तिकी आधिभौतिक प्रतिकृति है, इस कारण इतना फल उत्पन्न कर सकता है, किन्तु समर्थ योगिगण ही इससे इस प्रकारका लाभ उठा सकते हैं, अन्यके लिये यह विपत्ति-जनक है। इसी कारण वह असुरराजका पेय नहीं हुआ, महामायाका पेय हुआ। यह मधुपानका आधिभौतिक रहस्य है।

अर्द्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः ।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥ ४२ ॥

अर्द्धनिष्क्रान्त एव युध्यमानः असौ महासुरःतया देव्या महासिना (महाखड्गेन) शिरः छित्त्वा निपातितः ॥४२॥

तब अर्द्ध-निष्क्रान्त होकर ही युद्धमें प्रवृत्त होने पर देवीने महाअसिद्वारा उसका शिर काटकर मार डाला ॥ ४२ ॥

अन्तर्जगत्के वृत्तिराज्यमें इस रहस्यका आध्यात्मिक स्वरूप और ही है । घोर तमोबहुल रजोगुणको परास्त करनेके लिये सात्त्विक अन्तःकरणमें विशेष प्रेरणाकी आवश्यकता होती है । वह विशेष प्रेरक शक्ति यह मधु है । विना पूर्ण रजोगुणके दुर्दमनीय तमोवेगको परास्त नहीं किया जा सकता । दूसरी ओर सत्त्वगुणमय प्रशान्त अन्तःकरणमें उस राजसिक वेगको उत्पन्न करनेके लिये कर्त्तव्य-मूलक संकल्पकी आवश्यकता होती है, नहीं तो प्रशान्त व्यक्तिसे ऐसी क्रिया हो नहीं सकती है । यही इसका अध्यात्म रहस्य है, और अधिदैव रहस्य तो जगदम्बाके इस प्रकृत चरित्रमें प्रकट ही है ॥ ३८ ॥

ब्रह्म-प्रकृति महामायाके सत्त्व, रज और तम ये तीनों ही गुण समानरूपसे वलशाली हैं और तीनोंकी शक्ति ही अतुलनीय हैं । पहले चरित्रमें तमोगुणकी महाशक्तिका परिचय दिया गया है कि, उन्होंने सत्त्व-

ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत् ॥
प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥४३॥

ततः (शिरश्छेदानन्तरं) हाहाकृतं (हाहा इति शब्दः कृतः येन तत्) तत् सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश (पलायितं) सकलाः (समस्ताः) देवतागणाः च परं प्रहर्षं जग्मुः (प्राप्तवन्तः) ॥ ४३ ॥

अनन्तर बाकी सैन्यगण "हाहा" शब्द करते करते क्रमशः भाग गये और देवतागण अत्यन्त प्रसन्न होगये ॥ ४३ ॥

गुणके अधिष्ठाता देव भगवान् विष्णुको भी निद्रित कर दिया था। अब इस दूसरे चरित्रमें रजोगुणके महान प्रभावका दिग्दर्शन कराया गया है। इस चरित्रके अनुशीलनके साथ-ही-साथ इतना समझ लेनेकी आवश्यकता है, कि सत्त्वोन्मुख रजोगुण जगद्ध्वंसकारी नहीं है क्योंकि सत्त्वोन्मुख रजोगुणसे धर्मकी अभिवृद्धि होती है। वस्तुतः तमोन्मुख रजही जगत्का अनिष्ट करनेवाला होता है। वही तमोन्मुख रजही महिषासुरका आध्यात्मिक स्वरूप है। असुरराज महिषासुरका आधिभौतिक स्वरूप पुराणान्तरमें लिखा है, वह महिषरूप ही है और जगत्का अनिष्ट करनेवाला असुरभावका प्रवर्त्तक उसके अधिदैवरूपके दिग्दर्शन करानेके लिये महिषके मुखसे दूसरा रूप निकलनेका जो वर्णन है वह अधिदैव रूपका द्योतक है ॥ ४१-४२ ॥

तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः ।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ४४ ॥

इति मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
महिषासुरवधनामकस्तृतीयोऽध्यायः ।

सुराः (देवाः) दिव्यैः महर्षिभिः सह तां देवीं तुष्टुवुः, गन्धर्वपतयः जगुः (गीतवन्तः) अप्सरोगणाः च ननृतुः (नृत्यवन्तः) ॥ ४४ ॥

एवं दिव्य महर्षियोंके साथ देवतागण देवीकी स्तुति करने लगे, तब गन्धर्वराजगण और अप्सरागण भी गान नृत्यादि करने लगे ॥ ४४ ॥

इति महिषासुरवधनामक तृतीय अध्याय
समाप्त हुआ ।

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये,
तस्मिन् दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या ।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा,
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥ २ ॥

ऋषिः उवाच, अतिवीर्ये दुरात्मनि तस्मिन् (महिषासुरे) सुरारिबले च (असुरसैन्ये) देव्या निहते (सति) शक्रादयः (इन्द्रादयः) सुरगणाः (देवगणाः) प्रणतिनम्रशिरोधरांसाः (प्रणामेन नम्रं शिरोधरांसं ग्रीवाबाहुमूलं येषां ते) प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः (प्रहर्षेण जनितः यः पुलकोद्गमः रोमाञ्चोद्गमः तेन चारवः मनोरमा देहाः येषां ते) वाग्भिः तां (देवीं) तुष्टुवुः (स्तुतवन्तः) ॥ १-२ ॥

ऋषि बोले,—देवीके द्वारा अतिवीर्य्यशाली दुरात्मा महिषासुर एवं उसके सैन्योंके मारे जानेपर इन्द्रादि देवतागण शिर झुकाकर प्रणाम करते हुए वचनोंके द्वारा उस देवीकी स्तुति करने लगे । उस समय आनन्दजनित रोमांचसे उन लोगोंका देह पुलकित हो रहा था ॥ १-२ ॥

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या,
निःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां,
भक्त्या नताःस्म विदधातु शुभानि सा नः ॥ ३ ॥
यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो,

निःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या (समस्तदेवगणानां शक्तिसमूह एव मूर्तिः यस्याः तया) यया देव्या इदं जगत् आत्मशक्त्या ततं (व्याप्तं) अखिलदेवमहर्षिपूज्यां तां अम्बिकां भक्त्या नताः (प्रणताः) स्मः (भवामः) सा (देवी) नः (अस्माकं) शुभानि (मङ्गलानि) विदधातु (करोतु) ॥ ३ ॥

भगवान् अनन्तः (विष्णुः) ब्रह्मा, हरः (शिवः) च यस्याः (देव्याः) अतुलं (निरुपमं) प्रभावं (महिमानं)

(देवतागण बोले) जिस देवीकी शक्तिके द्वारा यह समस्त जगत् परिव्याप्त है और जो सम्पूर्ण देवताओंकी तेजोराशिसे मूर्त्तिमति है, सब देवताओं तथा महर्षियोंकी पूज्या उस अम्बिकाको हम भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं, वह हम लोगोंका कल्याण करे ॥ ३ ॥

जिनकी अतुलनीय शक्ति और प्रभाव भगवान् अनन्त देव, ब्रह्मा एवं शिव भी वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं, वे

ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय,
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥ ४ ॥
या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः,
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा,

बलं च वक्तुं न हि अलं (समर्थाः) सा चण्डिका अखिलजगत्परिपालनाय अशुभभयस्य नाशाय च मतिं (इच्छां) करोतु ॥ ४ ॥

या (देवी) सुकृतिनां (पुण्यशालिनां) भवनेषु स्वयं श्रीः (लक्ष्मीरूपा) पापात्मनां (भवनेषु) अलक्ष्मीः, कृतधियां (निर्मलबुद्धीनां) हृदयेषु बुद्धिः, सतां (साधूनां) श्रद्धा, कुलजनप्रभवस्य (सत्कुलजातस्य) लज्जा, तां

चण्डिका अखिल जगत्के परिपालन एवं अशुभभयनाश की इच्छा करें ॥ ४ ॥

जो पुण्यात्माओंके गृहमें लक्ष्मीरूपा हैं और जो पापात्माओंके गृहमें अलक्ष्मीरूपा हैं, जो निर्मलचेता व्यक्तियोंके हृदयमें बुद्धिरूपिणी हैं, जो सज्जनोंमें श्रद्धारूपिणी हैं और सत्कुलोद्भव व्यक्तियोंमें लज्जारूपिणी

तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥ ५ ॥
किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्,
किञ्चातिवीर्य्यमसुरक्षयकारि भूरि।
किञ्चाहवेषु चरितानि तवाति यानि,
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥ ६ ॥

(ईदृशीं) त्वां वयं नताः (प्रणताः) स्म, हे देवि ! विश्वं परिपालय ॥ ५ ॥

हे देवि ! तव अचिन्त्यं एतत्रूपं किं (कथं) वर्णयाम, किंच (तव) असुरक्षयकारि भूरि (प्रभूतं) अतिवीर्य्यं (किं वर्णयाम), किञ्च आहवेषु (युद्धेषु) सर्वेषु असुर-देवगणादिकेषु तव यानि अतिचरितानि (अत्यन्त-चेष्टितानि) (तानि च किं वर्णयाम) ॥ ६ ॥

हैं, ऐसे तुमको हम प्रणाम करते हैं। हे देवि ! तुम विश्वका परिपालन करो ॥ ५ ॥

तुम्हारा रूप एवं वीर्य्य हमारे लिये अचिन्त्य है, अतएव हम उस रूप एवं असुरविनाशकारी प्रभूत वीर्य्यका वर्णन कैसे कर सकते हैं, तुमने देवताओं और असुरोंके मध्यमें जो युद्ध सम्बन्धीय चरित्र प्रकट किया है, वह भी हमारे वाक्-मनके अतीत है, सुतरां उसका वर्णन हम किस प्रकार कर सकते हैं ॥ ६ ॥

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा ।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥ ७ ॥

(त्वं) समस्तजगतां हेतुः (कारणं) अपि (यतः त्वं) त्रिगुणा (सत्त्वरजस्तमोगुणमयी) दोषैः (रागादिभिः) न ज्ञायसे, (न केवलं अस्माभिः) हरिहरादिभिः अपि अपारा (अनधिगतस्वरूपा) सर्वाश्रया (सर्वेषाम् आधारस्वरूपा) हि (यतः) इदं अखिलं (समस्तं) जगत् (तव) अंशभूतं, (त्वं) अव्याकृता (अविकारा) परमा प्रकृतिः, त्वं आद्या (नित्या इत्यर्थः) ॥ ७ ॥

तुम समस्त जगत्का कारण हो, तुम त्रिगुणमयी हो, हमलोगोंकी तो बात ही क्या है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी तुम्हारा पार नहीं पा सकते हैं। तुम अनन्त ब्रह्माण्डोंकी आधारभूता हो, पुनः सारा जगत् तुम्हारा ही अंश है, तुम अव्याकृता परमा आद्या प्रकृति हो अर्थात् कभी तुम्हारी उत्पत्ति नहीं होती है ॥ ७ ॥

टीका—प्रत्येक ब्रह्माण्डमें भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिव ये तीनों अपने अपने अधिकार के अनुसार ईश्वर समझे जाते हैं। वे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड-जननीके अनादि अनन्त स्वरूपको कैसे समझ

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन,
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि ।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्य्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥ ८ ॥
या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व-

हे देवि ! (त्वं) स्वाहा असि यस्याः (स्वाहा इत्यस्याः) समुदीरणेन (सम्यक् उच्चारणेन) समस्तसुरता (देववृन्दं) सकलेषु मखेषु (यज्ञेषु) वै तृप्तिं प्रयाति (प्राप्नोति) च (तथा) पितृगणस्य तृप्तिहेतुः स्वधा च (त्वं असि) अतएव जनैः त्वं उच्चार्य्यसे ॥ ८ ॥

हे देवि ! हि (यस्मात्) मोक्षार्थिभिः सुनियतेन्द्रिय-

यज्ञमें जिसका उच्चारण करनेसे देवताओंकी तृप्ति होती है एवं श्राद्धमें जिसका उच्चारण करनेसे पितृगण तृप्ति लाभ करते हैं, वह स्वाहा एवं स्वधा तुम्हारा ही स्वरूप है । इसी कारण तुमको स्वाहा और स्वधारूपसे उच्चारण किया जाता है ॥ ८ ॥

सकते हैं, क्योंकि उनका ज्ञान एक ब्रह्माण्डके देश और कालसे परिच्छिन्न ही रहता है और श्रीजगदम्बा अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डोंको उत्पन्न करनेवाली, पालन करनेवाली और नाश करनेवाली हैं ॥ ७ ॥

मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः ।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥ ९ ॥
शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम् ।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय,

तत्त्वसारैः (सुसंयतेन्द्रियैः तत्त्वसारैः) च अस्तसमस्त-दोषैः (परित्यक्तदोषैः) मुनिभिः हि (त्वं) अभ्यस्यसे (चिन्त्यसे) (अतः) भगवती परमा मुक्तिहेतुः या विद्या, अविचिन्त्यमहाव्रता (त्वं) सा असि ॥ ९ ॥

शब्दात्मिका उद्गीथरम्यपदपाठवतां सुविमलर्ग्यजुषां (सुविमल ऋक्-यजुर्वेदानां) साम्नां च निधानं (आश्रयः) (त्वं) त्रयी (ऋक् यजुः सामानि च) देवी (द्योतनशीला)

तुम मुक्तिका कारण हो अचिन्त्या हो, तुम महाव्रता हो और राग-द्वेषादि समस्त दोषोंसे रहित संयतेन्द्रिय मुमुक्षु मुनिगण ब्रह्मतत्त्वकी प्राप्तिकी इच्छासे जिसकी आराधना करते हैं, हे देवि ! वह भगवती परमा विद्या भी तुम्हीं हो ॥ ९ ॥

तुम शब्दरूपिणी हो, इसीलिये तुमको उद्गीथ एवं रमणीय पद-पाठ-विशिष्ट ऋक् यजुः तथा सामका आश्रय कहते हैं पुनः तुम वेदरूपिणी हो, तुम्हीं ईश्वरी

वार्त्तासि सर्वजगतां परमार्त्तिहन्त्री ॥ १० ॥
मेधासि देवि ! विदिताखिलशास्त्रसारा,
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा ।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा,
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥ ११ ॥

भगवती, भवभावनाय (जगत्पालनाय) (त्वं) वार्त्ता (कृष्यादिचतुष्टयरूपा), सर्वजगतां परमार्त्तिहन्त्री च (दारिद्र्यदुःखनाशिनी) ॥ १० ॥

हे देवि ! विदिताखिलशास्त्रसारा (विदितः ज्ञातः अखिलानां शास्त्राणां सारः यया सा) मेधा असि, असङ्गा (संगवर्जिता) दुर्गभवसागरनौः (असि) (अतएव त्वं) दुर्गा (दुर्ज्ञेया) असि, कैटभारिहृदयैक-कृताधिवासा (विष्णुहृदयैककृताश्रया) श्रीः (लक्ष्मीः असि), शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा गौरी त्वं एव ॥ ११ ॥

हो, तुम्हीं जगत्पालनके निमित्त कृष्यादिरूपसे विद्यमान हो, एवं जगत्के दुःखोंका नाश करनेवाली हो ॥ १० ॥

हे देवि ! सब शास्त्रोंके सारको जाननेवाली मेधा तुम्हीं हो, तुम्हीं दुर्गम संसार-सागरसे पार उतरनेके लिये नौका हो, तुम निर्लिप्त हो, तुम दुर्गा अर्थात् दुर्ज्ञेया हो। तुम ही कैटभारि विष्णुके हृदयमें लक्ष्मीरूपसे विराजमान हो, पुनः तुम ही शशिमौलि शंकरके हृदयमें विराजमान गौरी हो ॥ ११ ॥

ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम् ।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि,

परिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारि (पूर्णचन्द्रबिम्बादपि मनोरमं) ईषत् सहासं अमलं कनकोत्तमकान्तिकान्तं वक्त्रं (मुखं) विलोक्य तथापि आत्तरुषा (गृहीतक्रोधेन)

हे देवि ! अत्युत्तम स्वर्णके कान्तिके समान कान्तिमय मृदु मन्द हास्य-युक्त पूर्णचन्द्र-बिम्बसे भी मनोहर तुम्हारे निर्मल मुखमण्डलको देखकर भी महिषा-

---

टीका—मुक्ति प्रसंग होनेसे केवल वैष्णवी शक्ति और शैवी शक्तिका ही वर्णन किया गया है, यहाँ ब्राह्मी शक्तिका वर्णन नहीं किया गया । श्रीमद्भगवद्गीताने सिद्ध किया है कि, मुक्ति कर्मयोगसे होती है अथवा सांख्ययोगसे होती है । कर्मको आश्रय करके वासना-रहित होकर कर्मप्रवाहमें अपनेको बहा देना यह कर्मयोग है, और अतिसावधान होकर तत्त्वज्ञानके अवलम्बनसे अग्रसर होनेको सांख्ययोग कहते हैं । इन दोनोंका शिवोपासना और विष्णु उपासनासे सम्बन्ध यथाक्रम है । इसी कारण उपास्य देवताओंमें भगवान् ब्रह्माका सम्बन्ध न रहनेसे केवल गौरी और लक्ष्मी इन दोनों शक्तियोंका ही वर्णन किया गया है ॥ ११ ॥

वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल-
मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं,
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥ १३ ॥

महिषासुरेण सहसा प्रहृतं (प्रहारः कृतः), (इति) अत्यद्भुतं (अत्याश्चर्य्यम्) ॥ १२ ॥

हे देवि! कुपितं भ्रुकुटीकरालं (भ्रुकुटीभीषणं) उद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि (तव मुखं) दृष्ट्वा महिषः तु (महिषासुरः) सद्यः (तत् क्षणे) यत् प्राणान् न मुमोच (त्यक्तवान्) तत् अतीव चित्रम् (आश्चर्य्यम्) हि (यतः) कुपितान्तकदर्शनेन (क्रुद्धयमदर्शनेन) कैः (जनैः) जीव्यते ॥ १३ ॥

सुरने क्रोधित हो तुमपर प्रहार किया यह बड़ा ही आश्चर्य है ॥ १२ ॥

हे देवि! कराल भ्रुकुटीयुक्त उगते हुए चन्द्रमाके समान तुम्हारा कुपित मुखमण्डल देख महिषासुरने उसी क्षण प्राण नहीं त्याग कर दिया, यह बड़ा ही आश्चर्य्यजनक है, क्योंकि कुपित यमको देखकर कौन जीवित रह सकता है? ॥ १३ ॥

देवि ! प्रसीद परमा भवती भवाय,
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥ १४ ॥
ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां,
तेषां यशांसि नच सीदति धर्मवर्गः ।

हे देवि ! (त्वं) भवाय (संसाराय) प्रसीद (प्रसन्ना भव) भवती (पूज्या) परमा (श्रेष्ठा) कोपवती (सती) कुलानि (रिपूणां) सद्यो विनाशयसि एतत् अधुना एव (सम्प्रति) विज्ञातं (अस्माभिः परिज्ञातं) यत् (यस्मात्) महिषासुरस्य एतत् सुविपुलं बलं (सैन्यं) अस्तं (क्षयं) नीतं (प्रापितं) ॥ १४ ॥

सदा अभ्युदयदा भवती (त्वं) येषां (सम्बन्धे) प्रसन्ना (भवति), ते (जनाः) जनपदेषु (देशेषु) सम्मता (सम्मानिताः) (भवन्ति) तेषां धनानि

हे देवि ! आप संसारके कल्याणके लिये प्रसन्न हों क्योंकि, जिसपर आप क्रोध करती हैं, उस कुलका तत्क्षण नाश करती हैं । हमलोगोंने अभी यह समझा है कि इसीलिये महिषासुरके सुविपुल सैन्योंका नाश हुआ ॥१४॥

हे देवि ! जिनपर आप प्रसन्न होती हैं, वे ही देशमें सम्मानित होते हैं, उनको ही धन और यशकी प्राप्ति होती है, वे ही धर्मादि अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और

धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥ १५ ॥
धर्म्याणि देवि ! सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि ! तेन ॥ १६ ॥

(ऐश्वर्याणि) यशांसि च (भवन्ति), तेषां धर्मवर्गः न सीदति, ते एव निभृतात्मजभृत्यदाराः (निरुद्विग्न-पुत्रकलत्राः सन्तः) धन्याः (भवन्ति) ॥ १५ ॥

हे देवि ! भवतीप्रसादात् सुकृती (पुण्यवान् जनः) सदैवात्यादृतः सन् (अति श्रद्धान्वितः सन्) प्रतिदिनं सकलानि (साङ्गानि) धर्म्याणि (धर्मयुक्तानि) कर्माणि करोति, ततः (धर्मकर्मकरणात्) स्वर्गं प्रयाति च (गच्छति च) ननु (सम्बोधने) तेन (हेतुना) लोकत्रये अपि (त्वं) फलदा (फलदात्री) ॥ १६ ॥

मोक्षरूपी चतुर्वर्गके अधिकारी होते हैं एवं आज्ञाकारी पुत्र, सुशीला स्त्री तथा वशंवद दास-दासीको प्राप्त करके धन्य होते हैं ॥ १५ ॥

हे देवि ! तुम्हारी प्रसन्नतासे ही पुण्यवान्गण प्रति-दिन श्रद्धाके साथ धार्मिक कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, एवं धार्मिक कर्मोंके अनुष्ठानद्वारा स्वर्गके अधिकारी होते हैं; अतएव तीनों लोकोंमें फल देनेवाली तुम्हीं हो ॥ १६ ॥

दुर्गे ! स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः,
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि ! का त्वदन्या,
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥ १७ ॥
एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखन्तथैते,

हे दुर्गे, (संकटे) स्मृता (सती) अशेषजन्तोः (सकल प्राणिनः) भीतिं हरसि (नाशयसि) स्वस्थैः (भयादि-रहितैः) स्मृता (सती) अतीव शुभां मतिं ददासि, हे दारिद्र्यदुःखभयहारिणि ! सर्वोपकारकरणाय (सर्वेषां उपकारार्थं) त्वदन्या का सदा आर्द्रचित्ता (भवेदिति शेषः) ॥ १७ ॥

हे देवि ! एभिः (असुरैः) हतैः (सद्भिः) जगत्

हे दुर्गे ! भयभीत होकर विपत्तिकालमें स्मरण करनेसे तुम प्राणिमात्रका भय दूर करती हो, और पुनः जो लोग स्वस्थ अवस्थामें स्मरण करते हैं, उनको तुम अति कल्याणमयी मति प्रदान करती हो, सबका दारिद्र्य दुःख विनाश करनेवाली तुम्हीं हो, तुम्हारे सिवाय प्राणियोंके सब प्रकारके उपकारके लिये किसका चित्त दयार्द्र होगा ? ॥ १७ ॥

हे देवि ! असुरकुलके नाश होनेपर जगत् स्वास्थ्य-

कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु ।
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥ १८ ॥

सुखं उपैति (प्राप्नोति), तथा एते (असुराः) चिराय नरकाय पापं नूनं न कुर्वन्तु (नाम इति अभ्युपगमे), संग्राममृत्युं (रणमूर्द्धनि मरणं) अधिगम्य (प्राप्य) दिवं (स्वर्गं) प्रयान्तु (गच्छन्तु) इति मत्वा अहितान् (शत्रून्) विनिहंसि (मारयसि) ॥ १८ ॥

सुख लाभ करेगा, एवं असुरगण नरक-यातना भोग करनेके लिये पुनः पाप संचय न करें, तथा ये संग्राममें मृत्यु प्राप्त करके स्वर्गगामी हों, यह सोचकर ही तुमने इन असुरोंको युद्धमें मारा है ॥ १८ ॥

टीका—जगत्प्रसवित्री पालयित्री जगदम्बा जो कुछ करती हैं, सो लोक-कल्याण तथा जीव-कल्याणके लिये ही करती हैं। मनुष्यकी दृष्टिसे चाहे कोई कार्य्य अशुभ समझा जाय, परन्तु कर्मके गतिवेत्ताके निकट यही प्रमाणित होगा कि, मंगलमयी जगदम्बाकी इच्छा-से जो कार्य्य होता है सो जीवके मंगलार्थ ही होता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह देवासुर-संग्राम है। सर्व-शक्तिमयीके द्वारा क्षणमात्रमें उनके भ्रूभंगसे ही असुर-राजका सर्वनाश और मरण सम्भव था, परन्तु

दृष्ट्वैव किन्न भवती प्रकरोति भस्म,
सर्वासुरानरिषु यत् प्रहिणोषि शस्त्रम्।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता,
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥ १६ ॥

भवती दृष्ट्वा एव किं (कथं) सर्वासुरान् भस्म न प्रकरोति? अरिषु (शत्रुषु) यत् शस्त्रं प्रहिणोषि (क्षिपसि) हि रिपवः (शत्रवः) अपि शस्त्रपूताः (सन्तः) लोकान् (स्वर्गादिभुवनानि) प्रयान्तु तेषु अपि (रिपुषु अपि) इत्थं अतिसाध्वी ते (तव) मतिः (इच्छा) भवति ॥१९॥

आपके दृष्टिपात करनेसे ही ये भस्मसात् हो सकते थे, परन्तु ये शस्त्रसे पवित्र होकर उच्च लोकोंको प्राप्त हों, इसी बुद्धिसे आपने इनको शस्त्रसे मारा है। शत्रुके विषयमें भी आपकी इस प्रकारकी मति अतीव शुभ है ॥१९॥

असाधारण तपःफलभोक्ता असुरराजको अन्तमें स्वर्गलोक पहुँचानेकेलिये ही उसको साधारण मृत्यु न देकर सम्मुख रणमें मृत्यु दिलानेके अर्थ, देवताओंको तपोभ्रष्ट होकर अधःपतनसे बचानेकेलिये और अपना प्रत्यक्ष शक्ति-विलास दिखाकर दैवी जगत्की ओर भक्तोंकी दृष्टि आकृष्ट करानेके अर्थ लीलामयीने ऐसी लीला की थी। अब यह शंका हो सकती है कि, असुरराजने तो स्वर्गको जीत लिया था, पुनः उसको स्वर्गमें पहुँचाना, इसका क्या तात्पर्य्य है? समाधान यह है कि, असुर-

खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः,
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥ २० ॥

उग्रैः (भयानकैः) खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैः तथा शूलाग्रकान्तिनिवहेन असुराणां दृशः (चक्षूंषि) यत् विलयं (नाशं) न आगताः (प्राप्ताः) तव अंशुमत् इन्दुखण्डयोग्याननं (चन्द्रसदृशं मुखं) विलोकयतां (तेषां) तत् एतत् (तद्विलोकनमेव चक्षुर्नाशाभावकारणमित्यर्थः) ॥ २० ॥

हे देवि ! अत्युग्र खड्गकी प्रभाके समूहोंकेद्वारा एवं शूलास्त्रके तीक्ष्ण कान्तिपुञ्जकेद्वारा असुरोंके नेत्र जो तत्क्षण नष्ट नहीं होगये उसका एकमात्र कारण यही था, कि वे ज्योतिर्मय चन्द्रखण्डके समान कान्तियुक्त तुम्हारे मुखमण्डलका निरीक्षण कर रहे थे ॥ २० ॥

गण अपने तपके प्रभावसे तपोहीन देवराजकी सेनाको परास्त करके केवल तृतीय ऊर्ध्वलोकतक जा सकते हैं, जहाँ देवराजकी राजधानी है; उससे ऊपरके लोकोंमें नहीं जा सकते हैं। असुर-योनि त्याग करनेके अनन्तर विशेष देवयोनि प्राप्त करके असुरगण उससे भी उच्च जनलोक, महर्लोक आदिमें पहुँचकर पवित्र दिव्यभावोंको प्राप्त हो सकते हैं, यही इसका तात्पर्य्य है ॥१८-१९॥

दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि! शीलं,
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः।
वीर्य्यञ्च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां,
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥ २१ ॥
केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य,

हे देवि! तव दुर्वृत्तवृत्तशमनं शीलं (स्वभावं) तथा अन्यैः अतुल्यं (अतुलनीयं) एतत् रूपं (तथा तव) हृतदेवपराक्रमाणां (असुराणां) हन्तृ (नाशकं) वीर्य्यं च अविचिन्त्यं, त्वया वैरिषु अपि (शत्रुषु) इत्थं (पूर्वोक्तप्रकारेण) प्रकटिता (प्रकाशीकृता) दया एव (अविचिन्त्या) ॥ २१ ॥

ते (तव) अस्य पराक्रमस्य केन (सह) उपमा

हे देवि! दुर्वृत्तकी दुष्ट चेष्टाका शमन करना तुम्हारा स्वभाव है, और तुम्हारा अतुलनीय रूप एवं असुरोंके नाशमें समर्थ वीर्य्य अचिन्तनीय है। एवं शत्रुकेलिये भी आपने जो दया दिखायी है, वह भी अचिन्तनीय है ॥ २१ ॥

हे देवि! तुम्हारे इस पराक्रमकी उपमा कहीं भी

टीका—कृपा और निष्ठुरता, ये दोनों विरुद्ध वृत्तियाँ

रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा,
त्वय्येव देवि! वरदे! भुवनत्रयेऽपि॥ २२॥

भवतु (न केनापि इत्यर्थः) अतिहारि (मनोहारि) (अथच) शत्रुभयकारि रूपं च कुत्र (अस्ति)? (न कुत्रापीत्यर्थः) हे देवि! वरदे! चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता (युद्धे दयाशून्यता) च भुवनत्रये अपि त्वयि एव दृष्टा (नान्यत्र इत्यर्थः)॥ २२॥

किसीके साथ नहीं हो सकती है, एवं शत्रुके लिये भय-जनक फिर भी अतिमनोहारी इस रूपकी भी अन्यत्र तुलना नहीं हो सकती है। हे वरदे! युद्धमें निष्ठुरता और चित्तमें दया एकसाथ तुममें ही सम्भव है, तुम्हारे सिवा त्रिभुवनमें अन्यत्र इसका दृष्टान्त नहीं है॥ २२॥

हैं। जैसे दिन और रात, ज्ञान एवं अज्ञान, अन्धकार तथा प्रकाश एक दूसरेके विरोधी होनेके कारण एकाधारमें नहीं रह सकते हैं, उसी प्रकार निष्ठुरता और कृपा एक ही समयमें नहीं रह सकती हैं। परन्तु जीव में जो असम्भव है, ईश्वरी में वह सम्भव है। क्योंकि, वे असम्भवको सम्भव करनेवाली हैं। वे ही एक ओर अविद्या बनकर जीवको फंसाती हैं, दूसरी ओर विद्या

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन,
त्रातं त्वया समरमूर्द्धनि तेऽपि हत्वा।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त,

त्वया रिपुनाशनेन (शत्रुविनाशेन) एतत् अखिलं त्रैलोक्यं त्रातं (रक्षितं), ते रिपुगणाः अपि समरमूर्द्धनि हत्वा दिवं (स्वर्गं) नीताः, अस्माकं उन्मदसुरारिभवं भयं

तुमने युद्धमें शत्रुओंका विनाश करके त्रिलोकका परित्राण किया है, शत्रुगण भी तुम्हारे द्वारा इस प्रकार युद्धमें प्राणत्याग करके स्वर्गगामी हुए हैं, हमलोगोंका भी उद्धत असुर-कुल-जनित भय दूर हुआ है, इसलिये

बनकर जीवको मुक्त करती हैं। इसी उदाहरणके अनुसार कर्मकी नियन्त्री सर्वदर्शी और सर्वजीवहित-कारिणी होनेके कारण वर्त्तमान समयको देखते हुए उनका आचरण निष्ठुरताका होनेपर भी भविष्यत् विचारसे उनकी वह निष्ठुरता असुरोंके लिये मंगलका कारण है, इससे उनके चित्तमें कृपा और बाहरी वर्त्तावमें निष्ठुरताका होना सिद्ध ही है। ज्ञानकी पूर्णता, शक्तिकी पूर्णता और कर्मगतिकी अभिज्ञताकी पूर्णताके विना यह हो नहीं सकता, ऐसा विचारकर देवताओंने जगदम्बाकी स्तुतिमें ऐसे शब्द कहे हैं ॥२२॥

मस्माकमुन्मदसुरारिभवन्नमस्ते ॥ २३ ॥
शूलेन पाहि नो देवि ! पाहि खड्गेन चाम्बिके ॥
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ २४ ॥
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके ! रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ! ॥ २५ ॥

अपि अपास्तं (खण्डितं) अतः ते (तुभ्यं) नमः ॥२३॥

हे देवि ! शूलेन नः (अस्मान्) पाहि (रक्ष), हे अम्बिके ! खड्गेन (नः) च पाहि, घण्टास्वनेन (घण्टाध्वनिना) चापज्यानिःस्वनेन (धनुर्गुणशब्देन) च नः (अस्मान्) पाहि ॥ २४ ॥

हे चण्डिके ! ईश्वरि ! आत्मशूलस्य भ्रामणेन (भ्रमणेन) प्राच्यां (पूर्वस्यां) (अस्मान्) रक्ष, प्रतीच्यां (पश्चिमायां दिशि) (तथा) दक्षिणे तथा उत्तरस्यां (दिशि) च (अस्मान्) रक्ष ॥ २५ ॥

तुमको नमस्कार है ॥ २३ ॥

हे देवि ! शूलसे हमारी रक्षा करो, हे अम्बिके ! तुम खड्गके द्वारा, घण्टाध्वनिके द्वारा, तथा धनुर्ज्याटङ्कारके द्वारा हमलोगोंकी रक्षा करो ॥ २४ ॥

हे चण्डिके ! तुम अपना शूल घुमाकर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण एवं उत्तर दिशाओंमें हमारी रक्षा करो ॥ २५ ॥

सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यन्तघोराणि तैरक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ २६ ॥
खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ २७ ॥
ऋषिरुवाच ॥ २८ ॥
एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ।

त्रैलोक्ये यानि सौम्यानि (मनोरमाणि) यानि च अत्यन्तघोराणि (अतिभयानकानि) ते (तव) रूपाणि विचरन्ति, तैः अस्मान् तथा भुवं रक्ष ॥ २६ ॥

हे अम्बिके ! खड्गशूलगदादीनि यानि च अस्त्राणि ते (तव) करपल्लवसंगीनि तैः (अस्त्रैः) सर्वतः अस्मान् रक्ष ॥ २७ ॥

ऋषिः उवाच, सुरैः एवं स्तुता दिव्यैः (मनोज्ञैः)

तुम्हारे जो सौम्यरूप एवं अत्यन्त भयानक रूप त्रिलोकमें विचरण करते हैं, उनके द्वारा हमारी तथा जगत्की रक्षा करो ॥ २६ ॥

हे अम्बिके ! खड्ग, शूल, गदा आदि जो अस्त्र तुम्हारे करपल्लवोंमें सुशोभित हो रहे हैं, उनके द्वारा हमारी सब ओरसे रक्षा करो ॥ २७ ॥

ऋषि बोले,–जगद्धात्री देवी इस प्रकारसे देवताओं

अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः॥ २९ ॥
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान्॥ ३० ॥

देव्युवाच ॥ ३१ ॥

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम्।

नन्दनोद्भवैः (नन्दनवनजातैः) कुसुमैः अर्चिता (पूजिता) तथा गन्धानुलेपनैः (अर्चिता) समस्तैः त्रिदशैः (देवैः) भक्त्या दिव्यैः धूपैः तु धूपिता (वासिता) जगतां धात्री प्रसादसुमुखी (सती) प्रणतान् समस्तान् सुरान् प्राह ॥ २८—३० ॥

देवी उवाच, हे सर्वे त्रिदशाः ! (देवाः !) अस्मत्तः (मत्सकाशात्) यत् अभिवाञ्छितं (प्रार्थनीयं) (तत् भवद्भिः) व्रियतां (प्रार्थ्यतां) एभिः स्तवैः सुपूजिता अहं

के द्वारा स्तुता एवं नन्दनवनके पुष्पों तथा गन्धानुलेपनके द्वारा अर्चिता एवं सब देवताओंके द्वारा भक्तिपूर्वक दिव्य धूप दिये जानेपर सुमुखी देवीने प्रसन्न होकर उन प्रणत देवताओंसे कहा ॥ २८—३० ॥

देवी बोलीं,—हे देवतागण ! मैं तुमलोगोंकी स्तुति और पूजासे प्रसन्न हूं, अतएव तुमलोग अभीष्ट वरकी

ददाम्यहमतिप्रीत्या स्तवैरेभिः सुपूजिता ॥ ३२ ॥
देवा ऊचुः ॥ ३३ ॥
भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते ।
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ॥ ३४ ॥
यदि वापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ! ।

अतिप्रीत्या (तत्) ददामि ॥ ३१—३२ ॥

देवाः ऊचुः, यत् (यस्मात्) भगवत्या (भवत्या) अस्माकं अयं शत्रुः महिषासुरः निहतः (अतः) सर्वं कृतम्, किंचित् (अपि) न अवशिष्यते ॥ ३३—३४ ॥

यदि वा अपि (पक्षान्तरे) हे महेश्वरि! त्वया अस्माकं (सम्बन्धे) वरः देयः (तदा) त्वं (अस्माभिः) संस्मृता संस्मृता (सती) नः (अस्माकं) परमापदः (अति

प्रार्थना करो, वह मैं प्रेमपूर्वक देती हूं ॥ ३१—३२ ॥

देवतागण बोले,—हे देवि ! आपने हमारे शत्रु महिषासुरका विनाश करके सब कुछ किया है और कुछ अवशिष्ट नहीं है । हे महेश्वरि ! यदि आप कृपा करके हमलोगोंको वर देना ही चाहती हैं, तो यही हमलोगोंकी प्रार्थना है कि, हमलोगोंके इसी प्रकार विपत्तिग्रस्त हो आपका स्मरण करनेपर आप हमलोगोंको उस

संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः ॥ ३५ ॥
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ।
तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ॥ ३६ ॥
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥ ३७ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ३८ ॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथात्मनः ।

शयापदः) हिंसेथाः ॥ ३५ ॥

हे अमलानने ! अम्बिके ! (विमलमुखि !) यः च मर्त्यः (मनुष्यः) एभिः स्तवैः त्वां स्तोष्यति, तस्य वित्तर्द्धिविभवैः (सह) धनदारादिसम्पदां सर्वदा वृद्धये अस्मत् प्रसन्ना (सती) त्वं भवेथाः ॥ ३६—३७ ॥

ऋषिः उवाच,—हे नृप ! (सुरथ !) देवैः जगतः तथा आत्मनः अर्थे (निमित्तं) इति (एवं) प्रसादिता भद्र-

---

विपत्तिसे रक्षा करेंगी ॥ ३३-३५ ॥

हे निर्मलमुखी ! आपसे एक और भी प्रार्थना करते कि, जो मनुष्य इस स्तोत्रके द्वारा आपकी स्तुति करे उसके धन-पुत्र-कलत्रादिकी वृद्धि हो ॥ ३६—३७ ॥

ऋषि बोले,—देवताओंके इस प्रकारसे अपने लिये एवं जगत्के लिये देवीको प्रसन्न करनेपर "ऐसा ही

तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥ ३६ ॥
इत्येतत् कथितं भूप ! सम्भूता सा यथा पुरा ।

काली तथा (भवतु) इति उक्त्वा अन्तर्हिता बभूव ॥ ३८-३९ ॥
हे भूप ! (भूपते !) पूरा (पूर्वं) जगत्त्रयहितैषिणी

होगा" ऐसा कहकर भद्रकाली देवी अन्तर्ध्यान हो गयीं ॥ ३८—३९ ॥

टीका—अपने अभ्युदय और निःश्रेयसके लिये जो धर्म-कार्य्य किया जाता है, उसको यज्ञ कहते हैं और जगत्के अभ्युदय तथा निःश्रेयस के लिये जो धर्मकार्य्य किया जाता है, उसको महायज्ञ कहते हैं। वस्तुतः यज्ञ धर्मका पर्य्यायवाचक शब्द होनेपर भी धर्म और यज्ञ इन दोनोंके भावार्थमें कुछ विशेष अन्तर है। यावत् विश्व-ब्रह्माण्डको धारण और रक्षा करनेवाला और जीवको अभ्युदय एवं निःश्रेयस देनेवाला कार्य धर्म कहाता है परन्तु यज्ञ प्रधान धर्माङ्ग होनेपर भी साधक जो कार्य भगवान्की प्रसन्नताके लिये करे और जिसके द्वारा उस भगवत्प्रसन्नताके कारण देवलोकके देवता-गण सम्बर्द्धन और अभ्युदयको प्राप्त हों; वह कार्य्य यज्ञ कहाता है। वेदमें और भगवद्गीता आदि शास्त्रों-में अनेक प्रकारके यज्ञोंका वर्णन है। यज्ञ और महायज्ञ

देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥ ४० ॥
पुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाभवत् ।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ४१ ॥

सा देवी देवशरीरेभ्यः यथा सम्भूता (समुत्पन्ना) इत्येतत् कथितं ॥ ४० ॥

पुनश्च दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः वधाय लोकानां रक्षणाय च देवानां उपकारिणी सा गौरीदेहात्

हे भूपते ! त्रिलोकका हित चाहनेवाली देवी पूर्वकालमें देवताओंके देहसे जिस प्रकार आविर्भूत हुई थीं, सो कहा । पुनः दुष्ट दैत्यों एवं शुम्भ-निशुम्भके वधके

अनेक प्रकारके होते हैं, यथा—दानयज्ञ, तपयज्ञ, कर्मयज्ञ, उपासनायज्ञ और ज्ञानयज्ञ। इन यज्ञोंके अन्तर्विभाग अनेक हैं, जिनको किसी-किसी महर्षिने बहत्तर श्रेणियोंमें भी विभक्त किया है। यह देवताओंका उपासनायज्ञ था और जगत्कल्याण-बुद्धिसे यही महायज्ञ भी था । जब दैवीशक्ति और आसुरीशक्ति ये दोनों अपनी अपनी जगह कार्य्य करें, दोनोंका सामञ्जस्य रहे, एक दूसरे का अधिकार छीनने न पावे, तभी चतुर्दश भुवनमें धर्मकी स्थिति रह सकती है और बल, ऐश्वर्य, बुद्धि और विद्या आदि प्रकाशित रहकर सुख और शान्ति विराजमान रह सकती है ॥ ३९ ॥

रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी।
तच्छृणुष्व मयाख्यातं यथावत् कथयामि ते ॥ ४२ ॥
इति मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शक्रादिस्तुतिनामकश्चतुर्थोऽध्यायः ॥

यथा समुद्भूता (जाता) अभवत्, तत् यथावत् (याथार्थ्येन) ते कथयामि, (तत्) मया आख्यातं (कथयितव्यं) शृणुष्व ॥ ४१-४२ ॥

लिये तथा त्रिलोककी रक्षाके लिये देवताओंकी उपकर्त्री देवी जिस प्रकार गौरीदेहसे आविर्भूत हुई थीं, सो यथावत् कहता हूँ, सुनो ॥ ४०-४२ ॥

इति शक्रादिस्तुति नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ।

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः ।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात् ॥ २ ॥

ऋषिः उवाच,—पुरा (पूर्वस्मिन् काले) शुम्भनिशुम्भाभ्यां असुराभ्यां शचीपतेः (इन्द्रस्य) त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च मदबलाश्रयात् (गर्वशक्त्योः आश्रयत्वात्) हृताः (अपनीताः) ॥ १-२ ॥

ऋषि बोले,-प्राचीन कालमें शुम्भ निशुम्भ नामक दोनों असुरोंने गर्व एवं बलके आश्रयसे इन्द्रका त्रिलोका-

टीका—दैवी जगत्की श्रृङ्खला और उसका स्वरूप समझनेपर तब इन बड़े देवपदधारियोंका स्वरूप समझमें आ सकता है। वेद और शास्त्रोंमें प्रत्येक ब्रह्माण्डका स्वरूप मनुष्यकी आकृतिके समान बताया गया है। जैसे मनुष्यके शरीरमें दो हाथ और दो पैर हैं, वैसे ही ब्रह्माण्डमें दो लोकालोक पर्वत और दो पाद-पर्वत किसी अलौकिक शक्तिसे बने हुए हैं। जैसे मनुष्यको धारण करनेके लिये मेरुदण्ड है, वैसे ही ब्रह्माण्डको धारण करनेके लिये अलौकिक सुमेरु पर्वत है। उस अलौकिक सुमेरु पर्वतके चारोंओर चौदह भुवनोंके अनेक लोकसमूह जकड़े हुए हैं। जैसे मनुष्यशरीरके गलेसे ऊपरके हिस्सेमें सब ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, वैसे ही ब्रह्माण्डके ऊपरके हिस्सेमें जन, मह आदि चार बड़े

तावेव सूर्य्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम्।
कौवेरमथ याम्यञ्च चक्राते वरुणस्य च ॥ ३ ॥

तौ (शुम्भनिशुम्भौ) एव सूर्य्यतां तद्वत् (यथा) ऐन्दवं (चन्द्रसम्बन्धिनं) तथा कौबेरं (कुवेरसम्बन्धिनं), याम्यं च अधिकारं, अथ (तथा) वरुणस्य च (अधिकारं) चक्राते ॥ ३ ॥

धिपत्य तथा यज्ञभाग छीन लिया। उन दोनोंने सूर्य्य, चन्द्र, कुबेर, यम एवं वरुणदेवके अधिकारोंको अपने

ऊद्धर्व लोक हैं, जिनमें क्रमशः इन्द्रिय, मन, बुद्धि और प्रकृतिपर आधिपत्य करनेवाले उच्च श्रेणीके महात्मागण और देवतागण वास करते हैं। जैसे मनुष्यशरीरमें गलेसे लेकर नाभिपर्य्यन्त ऐसा स्थान है, जिसमें यकृत्, फुसफुस् और हृदय आदि ऐसे यन्त्र हैं, जो शरीरको चलाते हैं और सुव्यवस्थित रखते हैं, वैसेही ब्रह्माण्डमें भू, भुव, स्वरूपी तीनों स्वर्लोक हैं, जिनमें दैवीकार्य्य सम्पादन करनेवाले बड़े-बड़े देवताओंकी राजधानियाँ हैं, जैसा कि, देवताओंको सम्हालनेवाले राजा इन्द्र, ऐश्वर्य्योंको सम्हालनेवाले कुबेर, जलको सम्हालनेवाले वरुण, जीवके कर्म-फल-भोगकी व्यवस्था करनेवाले यम धर्मराज, सूर्य्य और चन्द्रलोकके अधिष्ठाता आदि। जैसे मनुष्यशरीरमें नाभिके नीचे और गुह्यद्वारपर्य्यन्त

तावेव पवनर्द्धिञ्च चक्रतुर्वह्निकर्म च ॥ ४ ॥

तौ एव पवनर्द्धिं च (वायोरधिकारं) वह्निकर्म च चक्रतुः ॥ ४ ॥

अधीन कर लिया। तब शुम्भ और निशुम्भ ही वायु और अग्निके कार्य्य करने लगे ॥ १-४ ॥

अन्यान्य अधोयन्त्र हैं, वैसे ही प्रत्येक ब्रह्माण्डमें सुमेरु पर्वतके नीचेके आस-पासके हिस्सेमें सातों असुरलोक

असुर भी एक प्रकारके देवता हैं, इस कारण सातों असुरलोक भी विलस्वर्ग कहाते हैं। असुरगण इन्द्रिय-लोलुप और लोभी होनेके कारण वे देवपदधारियोंसे शत्रुता रखते हैं और देवपदधारियोंकी तपस्या घट जानेपर कभी-कभी उनपर आक्रमण करते हैं, एवं इन्द्र-पुरी अर्थात् स्वर्गलोकतक छीन लेते हैं तथा पूर्वकथित देवपदाधिकारियोंके अधिकारोंको छीनकर ब्रह्माण्डकी शृंखलाको अस्त-व्यस्त कर देते हैं। जब देवपदधारियों का अधिकार असुरोंद्वारा छिन जाता है, तभी देवासुर-संग्रामका अवसर उपस्थित हो जाता है। जब दैव-जगत्में ऐसी विशृंखलता होती है और जब देवतागण स्वतः अपनी रक्षा नहीं कर सकते हैं तभी, जगज्जननी अनन्तकोटिब्रह्माण्डभाण्डोदरी ब्रह्मशक्ति महामाया प्रकट होकर देवताओंकी रक्षा करती हैं। वे ही अनन्त-

ततो देवा विनिर्द्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ।
हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः ।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ॥ ५ ॥
तयास्माकं वरो दत्तो यथापत्सु स्मृताखिलाः ।

ततः (अनन्तरं) देवाः विनिर्द्धूताः (तिरस्कृताः) भ्रष्टराज्याः (सन्तः) पराजिताः (अभिभूता बभूवुः) हृताधिकाराः सर्वे त्रिदशाः (देवाः) ताभ्यां महासुराभ्यां निराकृताः (स्वर्गात् ताड़िताः सन्तः) अपराजितां (सर्वजित्वरीं) तां देवीं संस्मरन्ति ॥ ५ ॥

तया (देव्या) अस्माकं (सम्बन्धे) वरः दत्तः यथा

इस प्रकारसे देवतागण तिरस्कृत एवं पराजित होकर अपने राज्यसे भ्रष्ट होगये । उस समय महाअसुर शुम्भ और निशुम्भके द्वारा अधिकार-च्युत एवं स्वर्गसे निकाले जाकर देवताओंने अपराजिता देवीका स्मरण किया और सोचा, कि देवीने पहले हमलोगोंको वर प्रदान किया था कि, तुम लोगोंके स्मरण करते

कोटिब्रह्माण्डोंकी जननी हैं, उन्हींकी इच्छामात्रसे उनके एक निमेषमें अनेक ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं और अनेक ब्रह्माण्ड कालके कवलमें लय हो जाते हैं । इस देवासुर-संग्रामसे उनके अचिन्त्य लीला-सागरके एक बिन्दुका दिग्दर्शन होता है ॥ २-४ ॥

भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात् परमापदः ॥ ६ ॥
इति कृत्वा मतिन्देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥ ७ ॥
देवा ऊचुः ॥ ८ ॥
नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततन्नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणता स्म ताम् ॥ ९ ॥

आपत्सु स्मृता (सती) तत्क्षणात् भवतां अखिलाः (समस्ताः) परमापदः नाशयिष्यामि ॥ ६ ॥

देवाः इति मतिं कृत्वा नगेश्वरं (पर्वतश्रेष्ठं) हिमवन्तं (हिमालयं) जग्मुः (गतवन्तः), ततः (अनन्तरं) तत्र (पर्वते) विष्णुमायां देवीं प्रतुष्टुवुः (स्तुतवन्तः) ॥७॥

देवाः ऊचुः,—देव्यै (प्रकाशस्वरूपायै) महादेव्यै (तुभ्यं) नमः, शिवायै सततं नमः, प्रकृत्यै भद्रायै (पालनकर्त्र्यै) नमः, (वयं) नियताः (संयताः सन्तः) तां (देवीं) प्रणताः स्म ॥ ८-९ ॥

ही मैं आविर्भूत होकर तत्क्षण तुम लोगोंकी विपत्ति दूर करूँगी । ऐसा निश्चय करके देवतागण पर्वतराज हिमालयपर जाकर विष्णुमाया देवीकी स्तुति करने लगे॥५-७॥

देवतागण बोले,-तुम प्रकाशशीला हो, तुम महादेवी हो, तुम कल्याणरूपिणी हो, तुमको प्रणाम है, तुम मूलप्रकृति हो, तुम पालनकर्त्री हो, तुमको बार-बार

रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमोनमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ १० ॥
कल्याण्यै प्रणतामृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमोनमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमोनमः ॥ ११ ॥

रौद्रायै (भयानकायै) नमः नित्यायै गौर्य्यै धात्र्यै (तुभ्यं) नमोनमः, ज्योत्स्नायै इन्दुरूपिण्यै च सुखायै (सुखरूपायै) (तुभ्यं) सततं नमः ॥ १० ॥

कल्याण्यै (कल्याणरूपायै) वृद्ध्यै (उपचयस्वरूपायै) सिद्ध्यै (सिद्धिरूपायै) (तुभ्यं) प्रणताः (सन्तः) नमः नमः कुर्म्मः, नैर्ऋत्यै, (अलक्ष्मीस्वरूपायै) भूभृतां (राज्ञां) लक्ष्म्यै शर्वाण्यै (माहेश्वर्य्यै) ते (तुभ्यं) नमः नमः ॥ ११ ॥

प्रणाम है। तुम भयानक हो, तुम नित्या हो, तुम ही गौरी हो, तुम धात्री हो, तुमको प्रणाम है, तुम ज्योत्स्नारूपिणी हो, तुम इन्दुरूपिणी हो, तुम आनन्द-रूपिणी, तुमको बारम्बार प्रणाम है ॥ ८-१० ॥

तुम मंगलरूपिणी हो, तुम सम्पद्रूपिणी हो, तुम सिद्धिरूपिणी हो, तुमको हम विनम्रभावसे प्रणाम करते हैं, तुम अलक्ष्मीरूपा हो, पुनः तुम्हीं राजलक्ष्मीरूपा हो, तुम माहेश्वरी हो, तुमको बार बार प्रणाम है॥ ११ ॥

टीका—पुण्यफलसे लक्ष्मी और पापफलसे अलक्ष्मी

दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततन्नमः ॥ १२ ॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमोनमः।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमोनमः ॥ १३ ॥

दुर्गायै (दुरधिगम्यायै) दुर्गपारायै (त्राणकारिण्यै) सारायै (ब्रह्मरूपायै) सर्वकारिण्यै ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै (तुभ्यं) सततं नमः ॥ १२ ॥

अतिसौम्यातिरौद्रायै तस्यै नताः (सन्तः) नमः नमः (कुर्म्मः) जगत्प्रतिष्ठायै (तुभ्यं) नमः, देव्यै कृत्यै (क्रियास्वरूपायै) (च) (तुभ्यं) नमः नमः ॥ १३ ॥

तुम दुर्गम्या दुर्गा हो, पुनः तुमहीं दुर्गपारकर्त्री हो, तुम सबका कारण हो, तुम प्रतिष्ठारूपिणी हो, तुम कृष्ण-वर्ण हो, तुम्हीं धूम्रा हो तुमको सतत नमस्कार है ॥१२॥

तुम अति मधुरा हो, पुनः तुम्हीं भयानकरूपधारिणी हो, तुमको प्रणतभावसे वार-बार प्रणाम है। तुम जगत्की प्रतिष्ठारूपिणी हो, तुमको प्रणाम है तुम देवी हो, तुम क्रियारूपिणी हो तुमको पुनः पुनः नमस्कार है ॥ १३ ॥

की प्राप्ति होती है। पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ कर्मफल, ये सब ही शक्तिके विलास हैं इस कारण दोनों को ही कहा गया है ॥ ११ ॥

टीका—कृष्णा और धूम्रा ये दोनों सम्बोधन अति रहस्यपूर्ण हैं। कृष्ण कालेको और धूम्र धुआंके रंगको

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै ॥ १४ ॥
नमस्तस्यै ॥ १५ ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ १६ ॥

या देवी सर्वभूतेषु (प्राणिषु) विष्णुमाया (महामाया) इति शब्दिता, तस्यै नमः, तस्यै नमः, तस्यै नमः नमः नमः (तस्यै नम इत्याद्यंशः सर्वत्र एकार्थतया न पुनः पुनः व्याख्येयः) ॥ १४-१६ ॥

जो देवी विष्णुमायारूपसे प्राणिमात्रमें विद्यमान हैं, उनको बार बार प्रणाम है ॥ १४-१६ ॥

कहते हैं। प्रकृति-शक्तिका प्राधान्य कृष्णामें है और शुद्ध सत्त्वमें कार्य्य नहीं होता है। जब शुद्ध सत्त्वसे कार्य्य प्रारम्भ होता है, उस समय उस उज्ज्वलतामें जो थोड़ासी श्यामता आ जाती है, वही धूम्राका रहस्य है। इन दोनों अवस्थाओंको योगिजन समाधिद्वारा अनुभव करते हैं। सौम्य और रौद्र अर्थात् भयानक ये दोनों विरुद्ध रसके बोधक हैं। रसरूपा भगवतीमें ही एकाधारमें इनका रहना सिद्ध है। जैसा कि, पहले कृपा और निष्ठुरता-वृत्तिके विषयमें कहा गया है। ब्रह्मसे ब्रह्मप्रकृतिका जो सम्बन्ध है, प्रकृतिसे त्रिगुणका वही सम्बन्ध है और त्रिगुण-तरङ्गसे ही कर्मकी उत्पत्ति होती है। इस कारण वे क्रियारूपिणी हैं ॥ १३ ॥

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै ॥ १७ ॥
नमस्तस्यै ॥ १८ ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ १९ ॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ २० ॥
नमस्तस्यै ॥ २१ ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ २२ ॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।

या देवी सर्वभूतेषु चेतना (अन्तःकरणविशेषः) इति अभिधीयते (तस्यै इत्यादि) ॥ १७-१९ ॥

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता, (तस्यै इत्यादि) ॥ २०-२२ ॥

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण (तमोगुणावलम्बन-

जो देवी समस्त प्राणियोंमें चेतनारूपसे विद्यमान हैं, उनको बार बार प्रणाम है ॥ १७-१९ ॥

जो देवी सब प्राणिमात्रमें बुद्धिरूपसे विराजमान हैं, उनको बार बार नमस्कार है ॥ २०-२२ ॥

जो देवी सब भूतोंमें निद्रारूपसे विराजमान हैं,

नमस्तस्यै ॥ २३ ॥
नमस्तस्यै ॥ २४ ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ २५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ २६ ॥
नमस्तस्यै ॥ २७ ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ २८ ॥
या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ २९ ॥

वृत्तिरूपेण) संस्थिता, (तस्यै इत्यादि) ॥ २३-२५ ॥

या देवी सर्वभूतेषु धारूपेण (क्षुधा पार्थिवधातु क्षयकृतावसादः तद्रूपेण) संस्थिता, (तस्यै इत्यादि) ॥ २६-२८ ॥

उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ २३-२५ ॥

जो देवी सब भूतोंमें क्षुधारूपसे विराजमान है उनको पुनः पुनः प्रणाम है ॥ २६-२८ ॥

जो देवी समस्त प्राणियोंके हृदयमेंछाया अर्थात्

नमस्तस्यै ॥ ३० ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ३१ ॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ३२ ॥
नमस्तस्यै ॥ ३३ ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ३४ ॥
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ३५ ॥
नमस्तस्यै ॥ ३६ ॥

या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण (अविद्यारूपेण) संस्थिता, (तस्यै इत्यादि) ॥ २९-३१ ॥

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता (तस्यै इत्यादि) ॥ ३२-३४ ॥

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण (तृष्णा अप्राप्तौ

अन्धकाररूपसे विद्यमान हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ २९-३१ ॥

जो देवी सब भूतोंमें शक्तिरूपसे विद्यमान हैं, उनको पुनः पुनः प्रमाण हैं ॥३२-३४ ॥

जो देवी सब भूतोंमें तृष्णा (वासना) रूपसे

नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ३७ ॥'

या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता ।

नमस्तस्यै ॥ ३८ ॥

नमस्तस्यै ॥ ३६ ॥

नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ४० ॥

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ।

नमस्तस्यै ॥ ४१ ॥

नमस्तस्यै ॥ ४२ ॥

नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ४३ ॥

अभिलाषः तद्रूपेण) संस्थिता, (तस्यै इत्यादि) ॥३५-३७॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण (क्षमारूपेण) संस्थिता (तस्यै इत्यादि) ॥ ३८-४० ॥

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण (ब्राह्मणक्षत्रियत्वादिरूपेण, उत्पत्तिरूपेण वा) संस्थिता (तस्यै इत्यादि) ॥ ४१-४३ ॥

वर्त्तमान हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ ३५-३७ ॥

जो देवी समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें क्षमारूपसे विराजमान हैं, उनको पुनः पुनः प्रणाम है ॥ ३८-४० ॥

जो देवी अखिल प्राणियोंमें जातिरूपसे अवस्थान करती हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ ४१-४३ ॥

या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ४४ ॥
नमस्तस्यै ॥ ४५ ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ४६ ॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ४७ ॥
नमस्तस्यै ॥ ४८ ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ४९ ॥
या देवी सर्वभूते ! श्रद्धारूपेण संस्थिता ।

या देवी सर्वभूतेषु (सर्वप्राणिषु) लज्जारूपेण संस्थिता (तस्यै इत्यादि) ॥ ४४-४६ ॥

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता (तस्यै इत्यादि ॥ ४७-४९ ॥

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता (तस्यै

जो देवी प्राणियोंमें लज्जारूपिणी हैं, उनको वारम्बार प्रणाम है ॥ ४४-४६ ॥

जो देवी सब भूतोंमें शान्तिरूपसे विद्यमान हैं; उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ ४७-४९ ॥

जो देवी सब प्राणियोंमें श्रद्धारूपसे विद्यमान हैं,

नमस्तस्यै ॥ ५० ॥
नमस्तस्यै ॥ ५१ ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ५२ ॥
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ५३ ॥
नमस्तस्यै ॥ ५४ ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ५५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ५६ ॥
नमस्तस्यै ॥ ५७ ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ५८ ॥

इत्यादि) ॥ ५०-५२ ॥

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण (शोभारूपेण) संस्थिता (तस्यै इत्यादि) ॥ ५३-५५ ॥

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण (सम्पदारूपेण) संस्थिता (तस्यै इत्यादि) ॥ ५६-५८ ॥

उसको बारम्बार प्रणाम है ॥ ५०-५२ ॥

जो देवी सब भूतोंमें कान्तिरूपसे विद्यमान हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ ५३—५५ ॥

जो देवी सब भूतोंमें लक्ष्मीरूपसे विराजमान हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ ५६-५८ ॥

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ५९ ॥
नमस्तस्यै ॥ ६० ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ६१ ॥
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ६२ ॥
नमस्तस्यै ॥ ६३ ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ६४ ॥
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ६५ ॥

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण (क्लिष्टाक्लिष्टवृत्तिरूपेण) संस्थिता (तस्यै इत्यादि) ॥ ५९-६१ ॥

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण (संस्कार-जनितज्ञानविशेषः तद्रूपेण) संस्थिता (तस्यै इत्यादि) ॥६२-६४॥

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता (तस्यै

जो देवी सब प्राणियोंमें वृत्तिरूपसे विराजमान हैं, उनको पुनः पुनः प्रणाम है ॥ ५९-६१ ॥

जो देवी प्राणियोंके हृदयमें स्मृति-शक्तिरूपसे विराजमान हैं, उनको पुनः पुनः प्रणाम है ॥ ६२-६४ ॥

जो देवी प्राणियोंमें दयारूपसे विराजमान हैं, उन-

नमस्तस्यै ॥ ६६ ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ६७ ॥
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ६८ ॥
नमस्तस्यै ॥ ६९ ॥
नमस्यस्यै नमोनमः ॥ ७० ॥
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ७१ ॥
नमस्तस्यै ॥ ७२ ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ७३ ॥

इत्यादि) ॥ ६५-६७ ॥

या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण (प्रसन्नता तद्रूपेण) संस्थिता (तस्यै इत्यादि) ॥ ६८-७० ॥

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण (जनयित्रीरूपेण) संस्थिता, (तस्यै इत्यादि) ॥ ७१-७३ ॥

को बारम्बार प्रणाम है ॥ ६५-६७ ॥

जो देवी सब प्राणियोंमें तुष्टिरूपसे विराजमान हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ ६८-७० ॥

जो देवी सब भूतोंमें मातारूपसे विद्यमान हैं, उनको पुनः पुनः प्रणाम है ॥ ७१-७३ ॥

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ७४ ॥
नमस्तस्यै ॥ ७५ ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ७६ ॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानामखिलेषु या।
भूतेषु सततन्तस्यै व्याप्त्यै देव्यै नमोनमः॥७७॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै ॥ ७८ ॥

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण (विपर्य्ययज्ञानं तद्रूपेण) संस्थिता (तस्यै इत्यादि) ॥ ७४-७६ ॥

या (देवी) इन्द्रियाणां (श्रोत्राद्येकादशानां) भूतानां (क्षित्यादीनां) अधिष्ठात्री, अखिलेषु भूतेषु व्याप्त्यै (अनुप्रविष्टायै) तस्यै देव्यै सततं नमः नमः ॥ ७७ ॥

या (देवी) चितिरूपेण (जीवरूपेण) एतत्

जो देवी सब भूतोंमें भ्रान्तिरूपसे विद्यमान हैं, उनको भूयोभूयः नमस्कार है ॥ ७४-७६ ॥

जो इन्द्रियोंकी अधिष्ठात्री हैं और जो सब भूतोंकी अधिष्ठात्री हैं, जो समस्त प्राणिमात्रमें अनुस्यूतभावसे विराजमान हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥७७॥

जो चैतन्यरूपसे सारे जगत्को व्याप्त करके

नमस्तस्यै ॥ ७९ ॥
नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ८० ॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया-
त्तथासुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥ ८१ ॥

कृत्स्नं (समस्तं) जगत् व्याप्य स्थिता, (तस्यै इत्यादि) ॥ ७८-८० ॥

(या) शुभहेतुः ईश्वरी पूर्वं अभीष्टसंश्रयात् (अभीष्टलाभात्) सुरैः (देवैः) स्तुता, तथा सुरेन्द्रेण

विराजमान हैं, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ७८-८० ॥

पूर्व कालमें अभीष्टकी प्राप्तिके कारण देवताओंने जिनकी स्तुति की थी, अब भी देवेन्द्र जिनकी प्रतिदिन

टीका—पूर्वोक्त स्तुतियोंके प्रत्येक स्थलमें पांच बार "नमः" आया है । समाधिभाषाके शब्द वृथा प्रयुक्त नही होते, इस कारण यह समझना उचित है कि, प्रत्येक स्थलमें पांच भावोंको आश्रय करके पांच बार नमस्कार किया गया है। प्रथम, उस वाचकके वाच्यका अधिभूतरूप, दूसरा अधिदैवरूप, तीसरा अध्यात्मरूप, चौथा सबकी कारणभूता सर्वशक्तिमयी मूलप्रकृतिरूप और पांचवा शक्ति और शक्तिमानकी अभेद

या साम्प्रतञ्चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति न-
स्सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ ८२ ॥

दिनेषु (प्रतिदिनं) सेविता, साम्प्रतं च (अधुना) उद्धतदैत्यतापितैः अस्माभिः सुरैः भक्तिविनम्रमूर्त्तिभिः (सद्भिः) या च नमस्यते, या च स्मृता (सती) तत्-क्षणं एव नः (अस्माकं) सर्वापदः हन्ति (दूरीकरोति), ईशा (ईश्वरी) सा नः (अस्माकं) भद्राणि (निर्विघ्नानि) शुभानि करोतु, आपदः च अभिहन्तु (नाशयतु) ॥ ८१-८२ ॥

सेवा करते हैं, जिनको हमलोग इस समय भी उद्धत दैत्योंके द्वारा त्रस्त होकर भक्ति-विनम्रभावसे प्रणाम करते हैं, जो स्मरणमात्रसे ही सब विपत्तियोंका विनाश करती हैं, वे कल्याण-विधायिनी ईश्वरी सर्वदा हमलोगोंका मंगल करें, और विपत्तियोंका नाश करें ॥ ८१-८२ ॥

अवस्था तुरीयरूप, इस प्रकारसे प्रत्येकमें पांच नमस्कार किये गये हैं, जिससे भक्तका अन्तःकरण उस परमपदमें लय हो सके ॥ ८० ॥

ऋषिरुवाच ॥ ८३ ॥

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती ।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ! ॥ ८४ ॥

ऋषिः उवाच,—हे नृपनन्दन ! (नृपते !) तत्र एवं स्तवादियुक्तानां देवानां अभि (आभिमुख्येन) पार्वती जाह्नव्याः (गङ्गायाः) तोये (जले) स्नातुं आययौ (गतवती) ॥ ८३-८४ ॥

ऋषि बोले,—हे नृपनन्दन सुरथ ! इस प्रकारसे देवतागण स्तुति कर ही रहे थे, इतनेमें पार्वती देवी देवताओंकी ओरसे होकर गंगाजलमें स्नान करनेके लिये जाने लगीं ॥ ८३–८४ ॥

टीका-ब्रह्म और ब्रह्मस्वरूपिणी जगज्जननी दोनोंमें अभेद है, दोनों एकही हैं ब्रह्म, ईश्वर, विराट्पुरुष और ब्रह्मशक्ति, ये जो भेद हैं, ये भेद महामायाके महिमा-प्रकाशक और वैभवके समर्थक हैं। दैवीमीमांसादर्शनने यह सिद्ध किया है कि, सगुण एवं निर्गुणका जो भेद है, वह केवल ब्रह्मशक्तिकी महिमाके लिये ही है। जबतक वह महाशक्ति स्वरूपके अङ्कमें छिपी रहती है, तबतक सत्, चित् और आनन्द इन तीनोंका अद्वैतरूपसे एकरूपमें अनुभव होता है, वह तुरीयाशक्ति जब स्वस्वरूपसे प्रकट

साऽब्रवीत्तान्सुरान्सुभ्रूर्भवद्भिस्स्तूयतेऽत्र का।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा॥ ८५ ॥

सुभ्रूः (सुन्दरभ्रूः) सा (देवी) "भवद्भिः अत्र का स्तूयते" (इति) तान् सुरान् (देवान्) अब्रवीत् (कथयतिस्म) (तस्मिन् समये) अस्याः (देव्याः) शरीरकोशतः च (शरीरकोशात्) शिवा समुद्भूता (सती) अब्रवीत्॥ ८५ ॥

उन्होंने समवेत देवताओंसे पूछा कि, आप लोग किसकी स्तुति कर रहे हैं? सुन्दर भ्रूवाली भगवतीके ऐसा पूछते ही उनके अपने शरीरकोशसे शिवा आविर्भूत होकर बोलीं कि, ये देवतागण युद्धक्षेत्रमें शुम्भ

होकर सत् और चित्को अलग-अलग दिखाती हुई आनन्द विलासको उत्पन्न करती हैं, तब वह पराशक्ति कहाती है, वही पराशक्ति जब स्वरूपज्ञान उत्पन्न कराकर जीवके अस्तित्वके साथ स्वयं भी स्वस्वरूपमें लय हो निःश्रेयसका उदय करती है, तब उसीको पराविद्या कहते हैं। ये ही दोनों अवस्थायें सृष्टि-विलासकी उत्पत्ति और लयका कारण हैं। औपनिषदिक ये अवस्थायें केवल समाधिगम्य हैं। इस विज्ञानको अन्य प्रकारसे समझनेयोग्य है। स्वस्वरूपमें जब वह तुरीया-रूपधारिणी महा-

स्तोत्रम्ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः।
दैवैस्समेतैस्समरे निशुम्भेन पराजितैः॥ ८६ ॥

शुम्भदैत्यनिराकृतैः निशुम्भेन समरे पराजितैः देवैः समेतैः (मिलितैः) (सद्भिः) मम एतत् स्तोत्रं क्रियते ॥ ८६ ॥

निशुम्भके द्वारा पराजित होकर हमारी ही स्तुति कर रहे हैं ॥ ८५–८६ ॥

माया सत्-भाव और चित्-भाव इन दोनोंको अलग-अलग अनुभव करानेके लिये आनन्द-विलासरूपी दृश्यको प्रकट करने लगती है, तब उसीका नाम पराशक्ति है और जब जीवके निःश्रेयस-प्राप्तिके समय आत्म-ज्ञानका उदय कराकर वह स्वयं भी स्वस्वरूपके अङ्कमें छिप जाती है, तब उसके उसी अवस्थाका नाम पराविद्या है, यह उपनिषद्-कथित रहस्य है। वस्तुतः ये दोनों अवस्थायें तुरीयाशक्तिके ही भेद हैं और "अहं ममेति वत्" ब्रह्म और ब्रह्मशक्तिमें भेद नहीं है, यह पहले ही कहा गया है। इन्हीं दोनों तुरीया-शक्तिके अनन्त वैभव-युक्त रूपोंको सप्तशतीगीता-के इस स्थलमें कौशिकी और कालिकारूपसे अभिहित किया है। यह भी समाधिगम्य औपनिषदिक रहस्य है

शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निस्सृताम्बिका।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥ ८७ ॥

तस्याः पार्वत्याः शरीरकोशात् यत् (यस्मात्) अम्बिका निःसृता (आविर्भूता), ततः (कारणात्) समस्तेषु लोकेषु कौशिकी इति गीयते ॥ ८७ ॥

यह देवी पार्वतीके शरीर-कोशसे उत्पन्न होनेके कारण जगत्में "कौशिकी" नामसे विख्यात हुईं ॥ ८७ ॥

कि, सत्, चित् और आनन्द इन तीनों भावोंमेंसे अस्ति-भावसे प्रकृतित्व, भाति-भावसे पुरुषत्व और दोनों-के विलाससे आनन्द-वैभवरूपी दृश्य-प्रपञ्च प्रकट होता है। प्रकृति सद्भावके आश्रयसे ही परिणामिनी होती है। सुतरां सद्भावमय ही नगराज हिमालयका अध्यात्म-स्वरूप है। वह प्रकृति-प्रसूत जड़मय दृश्यकी प्रतिकृति भी है और हिमालय सब प्रकारके ऐश्वर्य्योंकी खानि होनेके कारण पुराण-कथित गौरीका पितरालय भी है और सद्भावाश्रित अधिदैवको पुराण-शास्त्र गौरीके पितारूपसे वर्णन करता है, सो भी विज्ञान-सिद्ध ही है। देवासुर-संग्रामका त्रिविध स्वरूप पहले ही निर्णय किया गया है। इन्द्रिय-सुख-मूलक, अविद्याजनित-अस्मिता, राग-द्वेष, और अभिनिवेशके द्वारा जो वृत्तियाँ अन्तःकरणको तरङ्गायित करती रहती हैं, इसी अवस्था-

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाऽभूत्सापि पार्वती ।
कालिकेति समाख्याता हिमालयकृताश्रया ॥ ८८ ॥

तस्यां (कौशिक्यां) विनिर्गतायां (सत्यां) सा पार्वती तु कृष्णा (कृष्णवर्णा) अभूत् (सा) अपि हिमालय-कृताश्रया (हिमालयकृतवसतिः) कालिका इति (नाम्ना) समाख्याता (कथिता) ॥ ८८ ॥

कौशिकीके शरीरसे निकल जानेपर पार्वती कृष्ण-वर्ण होगयीं इस कारण 'कालिका' नामसे विख्यात हुईं और वे हिमालयपर ही रहीं ॥ ८८ ॥

से असुरोंके अध्यात्मस्वरूपका सम्बन्ध है। दूसरी ओर इस आसुरी अवस्थाको परास्त करके जय-लाभ करनेके अभिप्रायसे शक्ति-विलासके क्षेत्ररूपी हिमालयमें जाकर पराशक्ति और पराविद्यारूपिणी जगज्जननी महामायाके निकट पहुँचकर जो वृत्तियाँ स्तुति करनेमें समर्थ होती हैं, अन्तःकरणकी इसी अवस्थासे देवताओंके अध्यात्मरूपका सम्बन्ध समझना उचित है। स्वरूपज्ञान की ओर जो चित्त-वृत्तियोंका प्रवाह है, वही गंगाका अध्यात्मस्वरूप है, ऐसी ज्ञान-प्रवाहा गङ्गामें तुरीया-शक्तिरूपिणी जगज्जननीका स्नान करने जाना स्वाभा-विक है। भक्तोंके आर्त्तनादसे बहिर्दृष्टि होते ही वह ब्रह्मशक्ति दो स्वरूपमें विभक्त हुई और कौशिकी देव-ताओंके भयनिवारणमें रत हुई। द्वैत-सम्बन्ध स्थापित

ततोऽम्बिकां परं रूपम्बिभ्राणां सुमनोहरम्।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ८९ ॥
ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता सातीव सुमनोहरा।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥ ९० ॥

ततः (अनन्तरं) सुमनोहरं परं रूपं विभ्राणां अम्बिकां शुम्भनिशुम्भयोः भृत्यौ चण्डः मुण्डः च ददर्श ॥ ८९ ॥

हे महाराज ! हिमाचलं (हिमालयं) भासयन्ती अतीव सुमनोहरा का अपि स्त्री आस्ते, (इति) ताभ्यां (चण्डमुण्डाभ्यां) शुम्भाय सा आख्याता (कथिता) ॥ ९० ॥

अनन्तर कौशिकी अम्बिका परम रमणीय रूप धारण करके विराजमान हुई, उस समय शुम्भ-निशुम्भके सेवक चण्ड एवं मुण्डने उनको देखा ॥ ८९ ॥

चण्ड और मुण्डने शुम्भसे जाकर कहा कि, हे महाराज! एक परम सुन्दरी कोई स्त्री हिमालयको अपनी प्रभासे प्रकाशित करती हुई अवस्थान कर रही है, वैसा

होते ही जो चित्में सद्भावका प्राधान्य होता है, वही देवीका श्यामवर्ण होना है। यह अध्यात्म रहस्य योगि-जन-दुर्लभ और उपनिषद्का सार है। इससे यह समझना उचित नहीं है कि, इस गाथाका अधिदैव और अधि-भूत रहस्य नहीं है अथवा देवासुर-संग्राम हुआ ही नहीं

नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम् ।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यताञ्चासुरेश्वर ॥ ९१ ॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र ! तां भवान्द्रष्टुमर्हति ॥ ९२ ॥
यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो ।

हे असुरेश्वर ! केनचित् (जनेन) तादृक् (तादृशं) उत्तमं रूपं क्वचित् अपि (कुत्रचित् स्थाने) न एव दृष्टं, असौ देवी का (इति) ज्ञायतां गृह्यतां च ॥ ९१ ॥
हे दैत्येन्द्र ! त्विषा (कान्त्या) दिशः द्योतयन्ती (प्रकाशयन्ती) अतिचार्व्वङ्गी स्त्रीरत्नं सा तु तिष्ठति, भवान् तां द्रष्टुमर्हति ॥ ९२ ॥
हे प्रभो ! त्रैलोक्ये यानि वै गजाश्वादीनि रत्नानि,

सुन्दर रूप शायद् कभी किसीने नहीं देखा होगा । हे असुरेन्द्र ! आप इसको जानें, कि यह स्त्री कौन है ? एवं जानकर आप इसको ग्रहण करें। हे दैत्येन्द्र ! यह स्त्रियों-में रत्नरूपा है, इसके प्रभा-पटलसे सारा दिङ्मण्डल भासमान हो रहा है, आप चाहें तो, उसको देख सकते हैं । हे प्रभो ! त्रिलोकमें जो कुछ श्रेष्ठ हस्ती, अश्वादि

था । यह त्रिविध भावमय रहस्य पहले लक्ष्य कराया गया है ॥ ८४–८८ ॥

त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ॥ ९३ ॥
ऐरावतस्समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात् ।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैश्श्रवा हयः ॥ ९४ ॥
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे ।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥ ९५ ॥

(तथा) मणयः (तानि) तु समस्तानि ते (तव) गृहे साम्प्रतं भान्ति (शोभन्ते) ॥ ९३ ॥

(त्वया) पुरन्दरात् (इन्द्रात्) गजरत्नं (हस्तिश्रेष्ठः) ऐरावतः अयं पारिजाततरुः तथा च उच्चैःश्रवाः हयः (उच्चैःश्रवा नामा) समानीतः एव ॥ ९४ ॥

हंससंयुक्तं यत् विमानं (रथः) अद्भुतं रत्नभूतं (रत्नस्वरूपं) वेधसः (ब्रह्मणः) आसीत्, (तत्) एतत् (विमानं) इह आनीतं (सत्) ते (तव) अङ्गणे तिष्ठति ॥९५॥

रत्न तथा महापद्मादि मणि हैं, वे सभी इस समय आपके भवनमें सुशोभित हैं ॥ ९०-९३ ॥

आप हस्तीश्रेष्ठ ऐरावत, पारिजातका वृक्ष तथा उच्चैःश्रवा नामक प्रसिद्ध अश्व इन्द्रके यहाँसे ले आये हैं एवं अति अद्भुत हंस-वाहन-युक्त ब्रह्माका विमान भी आपके आङ्गनमें सुशोभित है। आप यह महापद्म

निधिरेष महापद्मस्समानीतो धनेश्वरात्।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ॥९६॥
छत्रन्ते वारुणङ्गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति।
तथायं स्यन्दनवरो यः पुरासीत्प्रजापतेः ॥ ९७॥
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश! त्वया हृता।

(त्वया) एष महापद्मः निधिः (रत्नं) धनेश्वरात् (कुबेरात्) समानीतः (तथा) अब्धिः (समुद्रः) किञ्जल्किनीं (एतन्नाम्नीं) अम्लानपङ्कजां मालां च ददौ ॥९६॥

काञ्चनस्रावि (स्वर्णप्रस्रवणशीलं) वारुणं (वरुणसम्बन्धि) छत्रं ते (तव) गेहे तिष्ठति, तथा अयं स्यन्दनवरः (रथश्रेष्ठः) यः (स्यन्दनः) पुरा प्रजापतेः आसीत् ॥ ९७॥

हे ईश! त्वया मृत्योः (यमस्य) उत्क्रान्तिदा नाम (एतन्नाम्नी) शक्तिः हृता, (तथा) तव भ्रातुः निशु-

---

नामक निधि धनपति कुबेरके पाससे लाये हैं, किञ्जल्किनी नामक माला भी समुद्रने आपको दिया है, जिसका पद्म कभी मलिन नहीं होता है। आपके गृहमें वरुणका छत्र शोभायमान हो रहा है, जिससे सर्वदा स्वर्ण-प्रस्रवण होता रहता है, पुनः देखिये, प्रजापतिका यह श्रेष्ठ रथ भी आपके गृहमें विद्यमान है।

पाशस्सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे।
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः ॥ ९८ ॥
वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥ ९९ ॥
एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥ १०० ॥

म्भस्य परिग्रहे (हस्ते) सलिलराजस्य (वरुणस्य) पाशः, अब्धिजाताः (समुद्रभवाः) समस्ता रत्नजातयः च (रत्नप्रकाराः) (सन्ति) ॥ ९८ ॥

वह्निः (अग्निः) अपि अग्निशौचे (अग्निना शौचं शुद्धिः ययोः ते) वाससी (वस्त्रयुगलं) च तुभ्यं ददौ ॥ ९९ ॥

हे दैत्येन्द्र ! ते (त्वया) एवं (अनेन प्रकारेण) समस्तानि रत्नानि आहृतानि, स्त्रीरत्नं कल्याणी (शुभलक्षणयुक्ता) एषा त्वया कस्मान् न गृह्यते ॥ १०० ॥

आपने यमकी उत्क्रान्तिदा नामकी शक्ति भी अपहरण करके अपने यहाँ रक्खी है। वरुणदेवका पाश और समुद्रसे उत्पन्न सारे रत्नसमूह भी आपके भ्राता निशुम्भके हाथोंमें शोभायमान हैं। अग्निने भी अदाह्य दोनों वस्त्र आपको प्रदान किये हैं। हे दैत्यपते ! इस प्रकारसे सभी श्रेष्ठ रत्न आपके पास हैं, तो इस मंगलमयी रत्नस्वरूपा स्त्रीको आप क्यों नहीं ग्रहण करते हैं ? ॥ ९४-१०० ॥

ऋषिरुवाच ॥ १०१ ॥

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः ।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ॥ १०२ ॥
इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम ।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ॥१०३॥

ऋषिः उवाच, स शुम्भः तदा चण्डमुण्डयोः इति वचः (वाक्यं) निशम्य (श्रुत्वा) महासुरं सुग्रीवं (सुग्रीवनामानं) दूतं देव्याः (समीपे) प्रेषयामास (प्रेरितवान्) ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

(तत्र) गत्वा (त्वया) इति च इतिच (इत्येवं) सा (देवी) मम वचनात् वक्तव्या, संप्रीत्या (प्रणयेन) यथा लघु (शीघ्रं) अभ्येति च (आगच्छति) त्वया तथा कार्यं (कर्त्तव्यं) ॥ १०३ ॥

ऋषि बोले,—शुम्भने इस प्रकार चण्ड और मुण्डकी बात सुनकर देवीके पास सुग्रीव नामक महासुर दूतको भेजा और उससे कहा कि, तुम हमारे कथनके अनुसार देवीसे कहना तथा जिससे वह प्रेम-सहित शीघ्र चली आवे ऐसा करना ॥ १०१-१०३ ॥

स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने ।
सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥ १०४ ॥

दूत उवाच ॥ १०५ ॥

देवि ! दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः ।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥ १०६ ॥
अव्याहताज्ञस्सर्वासु यः सदा देवयोनिषु ।

सा देवी यत्र अतिशोभने शैलोद्देशे आस्ते, सः (दूतः) तत्र गत्वा ततः (अनन्तरं) मधुरया गिरा (वाक्येन) श्लक्ष्णं (कोमलं यथा तथा) तां (देवीं) प्राह (कथयति) ॥ १०४ ॥

दूत उवाच, हे देवि ! दैत्येश्वरः शुम्भः त्रैलोक्ये परमेश्वरः अहं इह तेन (शुम्भेन) प्रेषितः (सन्) त्वत् सकाशं (तव समीपं) आगतः ॥ १०५-१०६ ॥

यः सदा सर्वासु देवयोनिषु अव्याहताज्ञः (अप्रतिहताज्ञः) निर्जिताखिलदैत्यारिः (निर्जितसमस्तदेवगणः)

वह दूत अति रमणीय हिमालय प्रदेशपर जहाँ देवी विराजमान थीं, जाकर अतिनम्रतासे मधुर वचन बोला ॥ १०४ ॥

दूत बोला,—हे देवि ! दैत्यराज शुंभ त्रिलोकका अधीश्वर है, मैं उसीके द्वारा भेजा हुआ तुम्हारे पास आया हूँ ॥ १०५-१०६ ॥

जिसकी आज्ञा सब देवयोनियोंमें अवाधरूपसे

निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ॥ १०७ ॥
मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः ।
यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ॥ १०८ ॥
त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः ।
तथैव गजरत्नञ्च हृतं देवेन्द्रवाहनम् ॥ १०९ ॥

सः (शुम्भः) यत् आह तत् शृणुष्व ॥ १०७ ॥

मम अखिलं (समस्तं) त्रैलोक्यं, देवाः मम वशानुगाः, अहं सर्वान् यज्ञभागान् पृथक् पृथक् उपाश्नामि (भक्षयामि) ॥ १०८ ॥

त्रैलोक्ये वररत्नानि (श्रेष्ठरत्नानि) तथैव गजरत्नं (ऐरावतादीनि) च अशेषतः (साकल्येन) मम वश्यानि। अमरैः (देवैः) क्षीरोदमथनोद्भूतं (क्षीरोद-सागर-मन्थ-

---

चलती है, जिसने सब शत्रुओंको निःशेषरूपसे पराजित किया है,उस शुम्भने आपको जो कहा है,सो सुनिये॥१०७॥

समस्त त्रैलोक्य हमारा है, देवगण हमारे आज्ञाधीन हैं, मैं सारे देवताओंके यज्ञभागोंका पृथक् पृथक् भोग करता हूँ। त्रिलोकमें जितने श्रेष्ठ रत्न हैं, वे सब हमारे पास हैं, उसी प्रकार हस्तीश्रेष्ठ ऐरावत भी हमारे ही वशवर्त्ती हैं। क्षीरोदसागरका मथन करके जो उच्चैःश्रवा नामक अश्वरत्न मिला था और जो

क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ॥ ११० ॥
यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥ १११ ॥
स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि! लोके मन्यामहे वयम्।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥ ११२ ॥

नात् जातं) उच्चैःश्रवससंज्ञं देवेन्द्रवाहनं तत् अश्वरत्नं हृत्वा (आनीय) प्रणिपत्य मम समर्पितं ॥ १०६-११० ॥

हे शोभने! देवेषु, गन्धर्वेषु उरगेषु (वासुकिप्रभृतिषु) च यानि अन्यानि रत्नभूतानि (रत्नस्वरूपाणि) भूतानि च (वस्तूनि) (सन्ति), तानि मयि एव (सन्ति, इदानीं सर्वं मदधीनमित्यर्थः ॥ १११ ॥

हे देवि! वयं लोके त्वां स्त्रीरत्नभूतां मन्यामहे, सा (तादृशी) त्वं अस्मान् उपागच्छ (प्राप्नुहि) यतः वयं रत्नभुजः (रत्नभोक्तारः) ॥ ११२ ॥

इन्द्रका वाहन था, उसे भी देवताओंने मुझको ही समर्पण किया है। हे शोभने! अधिक क्या, देव, गन्धर्व, वासुकि आदि नागोंके जो कुछ श्रेष्ठ रत्न थे, वे सभी इस समय हमारे पास हैं। हे देवि! हम लोग इस लोकमें आपको रत्न समझते हैं, अतः आप हमको वरण करें, क्योंकि रत्नभोजी हम ही हैं। हे चंचला-

मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम् ।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि ! रत्नभूतासि वै यतः ॥ ११३ ॥
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् ।
एतद्बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥ ११४ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ११५ ॥

हे चञ्चलापाङ्गि ! यतः त्वं रत्नभूता वै असि, (अतः) त्वं उरुविक्रमं (अतिशयविक्रमं) मां वा, मम अनुजं निशुम्भं अपि वा भज (आश्रय) ॥ ११३ ॥

मत्परिग्रहात् (मदाश्रयात्) अतुलं परमैश्वर्य्यं प्राप्स्यसे बुद्ध्या एतत् समालोच्य (विचार्य्य) मत्परिग्रहतां (मम कलत्रतां) व्रज (प्राप्नुहि) ॥ ११४ ॥

ऋषिः उवाच,-तदा (तस्मिन् काले) दुर्गा भगवती भद्रा (मंगलरूपिणी) यया (देव्या) इदं जगत् धार्य्यते, सा देवी (दूतेन) इति उक्ता (कथिता सती) गम्भीरा

पाङ्गि ! तुम स्त्रीरत्नरूपा हो, इसलिये तुमको कहता हूँ, तुम मुझको अथवा मेरे प्रबल पराक्रमशाली भाई निशुंभ का आश्रय करो । मेरा आश्रय करनेसे तुम अतुल श्रेष्ठ ऐश्वर्य्योंकी अधिकारिणी होंगी इसका विचार करके मुझे ग्रहण करो ॥ १०८-११४ ॥

ऋषि बोले,-इस प्रकार दूतके कहनेपर मंगलमयी

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥ ११६ ॥

देव्युवाच ॥ ११७ ॥

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किञ्चित्त्वयोदितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ॥ ११८ ॥
किन्त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम् ।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥ ११९ ॥

अन्तःस्मिता (अव्यक्तहासा सती) जगौ (उक्तवती) ॥ ११५-११६ ॥

देवी उवाच, शुम्भः त्रैलोक्याधिपतिः, निशुम्भः अपि तादृशः च (इति) त्वया सत्यं उक्तं अत्र (विषये) किञ्चित् (अपि) त्वया मिथ्या न उदितं (कथितं) ॥ ११७-११८ ॥

किन्तु अत्र (पाणिग्रहणविषये) (मया) यत् प्रतिज्ञातं, तत् कथं मिथ्या क्रियते, अल्पबुद्धित्वात् या प्रतिज्ञा पुरा कृता, (सा) श्रूयतां ॥ ११९ ॥

भगवती दुर्गा जिन्होंने इस जगत्को धारण कर रखा है, गम्भीरभावसे थोड़ा मुस्कराकर बोलीं ॥ ११५-११६ ॥

देवीने कहा,—शुम्भ-निशुम्भ त्रिलोकके सम्राट् हैं, यह जो तुमने कहा सो सत्य है, तुमने मिथ्या कुछ नहीं कहा। किन्तु अल्पबुद्धिवश पूर्वमें मैंने एक प्रतिज्ञा की थी, उसको मिथ्या कैसे करूं? वह प्रतिज्ञा सुनो॥११९॥

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति ।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्त्ता भविष्यति ॥ १२० ॥
तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महाबलः ।
मां जित्वा किञ्चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ॥ १२१ ॥

दूत उवाच ॥ १२२ ॥

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः ।

संग्रामे (युद्धे) यः मां जयति, यः मे (मम) दर्पं (बलित्वाभिमानं) व्यपोहति (दूरीकरोति) यः (च) लोके मे प्रतिबलः (तुल्यबलः) सः मे भर्त्ता (स्वामी) भविष्यति ॥ १२० ॥

तत् (तस्मात्) महाबलः शुम्भः निशुम्भः वा अत्र (स्थाने) आगच्छतु मां जित्वा लघु (शीघ्रं) मे (मम) पाणिं गृह्णातु, अत्र चिरेण (विलम्बेन) किम् ॥१२१॥

दूत उवाच, हे देवि ! त्वं अवलिप्ता (गर्व्विता)

जो युद्धमें मेरे दर्पको नष्ट करके मुझे पराजित कर सकेगा और जो संसारमें मेरे समान बली है, वही मेरा पति होगा। अतएव अब देरी करनेकी आवश्यकता क्या है, महाबलशाली शुम्भ अथवा निशुम्भ शीघ्र ही युद्धमें मुझे पराजित करके मेरा पाणिग्रहण करें ॥ १२०-१२१ ॥

दूत बोला,—देवि ! आप इस प्रकार अभिमानकी बात हमारे सामने न करें, क्योंकि संसारमें ऐसा कौन

त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ॥१२३॥
अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि ।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि ! किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ॥१२४॥
इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे ।
शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ॥१२५॥

असि, मम अग्रतः एवं मा ब्रूहि, त्रैलोक्ये शुम्भनिशुम्भयोः अग्रे कः पुमान् (पुरुषः) तिष्ठेत् ? ॥ १२२-१२३ ॥

अन्येषां (शुम्भनिशुम्भभिन्नानां) अपि दैत्यानां सम्मुखे युधि (युद्धे) वै सर्वे देवाः न तिष्ठन्ति, हे देवि ! त्वं एकिका (एकाकिनी) पुनः स्त्री किं (स्थास्यसि) ॥१२४॥

येषां संयुगे (युद्धे) इन्द्राद्याः सकलाः देवाः न तस्थुः (स्थितवन्तः) स्त्री (त्वं) तेषां शुम्भादीनां सम्मुखं कथं प्रयास्यसि ? ॥ १२५ ॥

पुरुष है, जो युद्धक्षेत्रमें शुम्भ-निशुम्भके सामने ठहर सके ? ॥ १२२-१२३ ॥

हे देवि ! शुम्भ-निशुम्भकी तो बात ही क्या है, सब देवतागण एकत्र होकर अन्य दैत्योंके सम्मुख भी युद्धमें ठहर नहीं सकते हैं। तब तुम अकेली स्त्री होकर किस प्रकार उनके सामने युद्धमें ठहर सकोगी ? इन्द्रादि देवगण युद्धक्षेत्रमें जिनके निकट ठहर नहीं सके, उन शुम्भादिकोंके निकट तुम स्त्री होकर कैसे जाओगी ? ॥ १२४-१२५ ॥

सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ।
केशाकर्षणनिर्द्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ॥ १२६ ॥

देव्युवाच ॥ १२७ ॥

एवमेतद्बली शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ॥ १२८ ॥
स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः ।

(अतः) मया एव उक्ता सा त्वं शुम्भनिशुम्भयोः पार्श्वं (समीपं) गच्छ, केशाकर्षणनिर्द्धूतगौरवा (सती) मा गमिष्यसि (न गमिष्यसि अपि तु गमिष्यस्येव) ॥१२६॥

देवी उवाच,—शुम्भः बली (बलवान्) निशुम्भश्च अतिवीर्य्यवान्, एतत् एवं (सत्यं एव), मे (मया) यत् (यस्मात्) पुरा अनालोचिता (अविचारिता सती) प्रतिज्ञा (कृता) (अत्र) किं करोमि ॥ १२७-१२८ ॥

सः (तेन प्रेरितः) त्वं गच्छ, मया यत् ते उक्तं,

अतः मेरे कहनेसे तुम शीघ्र ही शुम्भ-निशुम्भके निकट चलो, अन्यथा तुम्हारा केश पकड़ कर बलात् तुमको ले जाएँगे, उसमें तुम्हारा गौरव वैसाही नष्ट होगा ॥ १२६ ॥

देवी बोलीं, शुम्भ बलशाली है, निशुम्भ भी वैसाही है यह सत्य है, किन्तु मैंने जो बिना बिचारे पहले प्रतिज्ञा कर डाली है, उसके लिये क्या करूँ ? अतएव तुम

तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु यत् ॥ १२९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्या दूतसंवादो नाम पञ्चमोऽध्यायः।

एतत् सर्वं आदृतः (सादरः सन्) असुरेन्द्राय (शुम्भाय) आचक्ष्व (कथय), सः (शुम्भः) च यत् युक्तं तत् करोतु ॥ १२९ ॥

जाकर मैंने जो कहा, वह सब अति आदर-पूर्वक असुरराजसे कहो, वे जो उचित समझें सो करें ॥ १२७—१२९ ॥

इति देवी और दूतका संवाद नामक पञ्चम अध्याय समाप्त हुआ।

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः ।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ॥ २ ॥
तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः ।
सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ॥ ३ ॥
हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः ।

ऋषिः उवाच,—सः दूतः देव्या इति वचः (वाक्यं) आकर्ण्य (श्रुत्वा) अमर्षपूरितः (सक्रोधः सन्) समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् समाचष्ट (कथितवान्) ॥१-२॥

ततः (अनन्तरं) असुरराट् (शुम्भः) तस्य दूतस्य तत् वाक्यं आकर्ण्य (श्रुत्वा) सक्रोधः (सन्) दैत्यानां अधिपं धूम्रलोचनं प्राह (कथयतिस्म) ॥ ३ ॥

ऋषि बोले—दूतने इस प्रकार देवीकी बात सुनकर क्रोधित हो दैत्यराजके निकट आकर विस्तारसे सब कहा ॥ १-२ ॥

दैत्यराजने दूतकी वह बात सुन क्रोधित होकर दैत्यपति धूम्रलोचनसे कहा कि, हे धूम्रलोचन ! तुम शीघ्र ही अपने सैन्योंके साथ जाकर उस दुष्टा स्त्रीको बाल पकड़ कर घसीट लाओ। यदि उसकी रक्षा करनेके

तामानय बलाद्दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ४ ॥
तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः ।
स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा ॥ ५ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ६ ॥

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः ।
वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥ ७ ॥

हे धूम्रलोचन ! त्वं आशु (शीघ्रं) स्वसैन्यपरिवारितः (सन्) दुष्टां तां (स्त्रियं) बलात् केशाकर्षणविह्वलां (केषाकर्षणपीड़ितां कृत्वा) आनय ॥ ४ ॥

यदि वा तत्परित्राणदः (सन्) कश्चित् अपरः उत्तिष्ठते (उद्यमं करोति) सः अमरः (देवः) वा यक्षः अपि गन्धर्व्वः एव वा (अस्तु) (सः) हन्तव्यः ॥ ५ ॥

ऋषिः उवाच,—ततः (अनन्तरं) दैत्यः सः धूम्रलोचनः तेन (शुम्भेन) आज्ञप्तः (प्रेरितः) (सन्) शीघ्रं असुराणां सहस्राणां षष्ट्या वृतः (सन्) द्रुतं ययौ (गतवान्) ॥६-७॥

लिये कोई दूसरा खड़ा हो, तो वह देव, यक्ष, या गन्धर्व ही क्यों न हो, उसको मार डालना ॥ ४-५ ॥

ऋषि बोले,–दैत्य धूम्रलोचन शुम्भकी आज्ञा पातेही उसी समय साठ हजार असुर सैन्योंको साथ लेकर चला गया ॥ ६-७ ॥

स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् ।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ८ ॥
न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्त्तारमुपैष्यति ।
ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ९ ॥

देव्युवाच ॥ १० ॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः ।

ततः सः (धूम्रलोचनः) तुहिनाचलसंस्थितां (हिमालयवासिनीं) तां देवीं दृष्ट्वा, शुम्भनिशुम्भयोः मूलं (समीपं) प्रयाहि (गच्छ) इति उच्चैः जगाद (कथितवान्) ॥ ८ ॥

चेत् (यदि) भवती प्रीत्या (प्रणयेन) मद्भर्त्तारं (शुम्भं) न उपैष्यति, ततः एष (अहं) अद्य बलात् (त्वां) केशाकर्षणविह्वलां (कृत्वा) नयामि ॥ ९ ॥

देवी उवाच,—दैत्येश्वरेण (शुम्भेन) प्रहितः (प्रेरितः)

तब धूम्रलोचन हिमाचलनिवासिनी उस देवीको देख कर उच्च स्वरसे बोला,—तुम शीघ्र ही शुम्भ-निशुम्भके निकट चलो। यदि तुम प्रेमसहित हमारे स्वामीके समीप नहीं जाओगी, तो आज तुमको बलात् बाल पकड़ कर घसीट ले जायेगें ॥ ९ ॥

देवी बोलीं,—तुम दैत्यसम्राट् शुम्भके द्वारा भेजे

बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ॥ ११ ॥

ऋषिरुवाच ॥ १२ ॥

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः।
हुङ्कारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ॥ १३ ॥

बलवान् बलसंवृतः (सैन्यपरिवेष्टितः त्वं), एवं (अनेन-प्रकारेण)मां बलात् नयसि,ततःअहं ते किं करोमि॥१०-११॥

ऋषिः उवाच,—सः धूम्रलोचनः असुर इति (देव्या) उक्तः (कथितः सन्) तां (देवीं प्रति) अभ्यधावत्, (धावितवान्), ततः सा अम्बिका हुङ्कारेण एव तं भस्म चकार॥ १२-१३ ॥

हुए आये हो, स्वयं भी बलवान् हो एवं सैन्य भी तुम्हारे साथ है। अतएव यदि बलपूर्वक मुझे ले जाओगे तो मैं तुम्हारा क्या करूंगी ? ॥ १०-११ ॥

ऋषि बोले,-देवीके ऐसा कहनेपर असुर धूम्र-लोचन देवीकी ओर दौड़ा, तब देवीने हुङ्कारसे ही उसको भस्म कर डाला ॥ १२-१३ ॥

टीका—असुर-सम्राट्के इस सामन्तको हुङ्कार-द्वारा भस्म करनेका जो यह अधिदैव चरित्र-वर्णन है, इसका अध्यात्मभाव अतिरहस्यपूर्ण और भक्तोंके लिये आनन्दजनक है। दैवीसम्पत्तिके अधिकारी उन्नत व्यक्तिके अन्तःकरणमें जब कोई इन्द्रिय-आसक्ति-मूलक असद्वृत्ति प्रकट होती है, उस समय भगवच्च-

अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिकाम् ।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥ १४ ॥
ततो धूतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम् ।

अथ (अनन्तरं) तथा असुराणां महासैन्यं क्रुद्धं (सत्) तीक्ष्णैः सायकैः (बाणैः) तथा शक्तिपरश्वधैः (शक्तिकुठारैः) अम्बिकां ववर्ष (आच्छन्नवान्) ॥१४॥
ततः देव्याः स्ववाहनः (सः) सिंहः कोपात् धूतसटः

अनन्तर असुरोंकी सेना क्रोधित होकर देवी अम्बिका पर शक्ति एवं बाणोंकी वर्षा करने लगी ॥ १४ ॥
तब देवीके वाहन सिंह भी क्रोधसे स्कन्धरोमावली-

रणोंमें युक्त भक्त जब मनको डाटता है, तब तुरंत ही मन सावधान हो जाता है और उसकी आसुरी वृत्ति भस्मीभूत होजाती है। अन्तर्मुख भक्तगण प्रायः अपने अन्तःकरणमें इस प्रकारसे धूम्रलोचनका वध होना अनुभव किया करते हैं, परन्तु जब बार-बार असुरका प्राकट्य अन्तःकरणमें होता है, तब युद्ध करना पड़ता है। यदि वह युद्ध कूटस्थके आधिपत्यमें अथवा इष्टको सन्मुख करके किया जाय, तो सदा जयही हुआ करती है। अधिभूत जगत्में तो इस प्रकार धूम्रलोचनका वध प्रायः देखनेमें आता है। आसुरी प्रजाको पहली दशामें दैवी-सम्पत्ति-युक्त व्यक्ति धमकाकर ही उसकी आसुरी चेष्टाका दमन कर देता है ॥ १३ ॥

पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः॥ १५॥
कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान्।
आक्रान्त्या चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान्॥१६॥
केषांचित् पाटयामास नखैः कोष्ठानि केशरी।

(कम्पितकेशरः सन्) सुभैरवं (अतिभयानकं) नादं (शब्दं) कृत्वा असुरसेनायां (असुरसेनामध्ये) पपात॥ १५॥

सः कांश्चित् दैत्यान् करप्रहारेण, अपरान् च आस्येन (मुखेन), अन्यान् महासुरान् आक्रान्त्या (आक्रमणेन) अधरेण च जघान (हतवान्)॥ १६॥

केशरी (सिंहः) नखैः केषांचित् कोष्ठानि (उदरस्थानानि) पाटयामास (विदारयामास), तथा तल-

हिलाता हुआ अतिभयानक नाद करके असुरसेनापर टूट पड़ा। उसने किसीको थप्परसे किसीको मुखसे और किसीको अधरके प्रहारसे मार डाला॥ १६॥

कितनेहीका नखके द्वारा पेट फाड़ डाला, अन्य कितने असुरोंका चपेटाघातसे शिर विच्छिन्न कर दिया

टीका—इस पहली दशामें तमोन्मुख रजोगुणको शुद्ध रजोगुण ही नाश कर सकता है। जगत्में भी देखनेमें आता है, कि अनेक तामसिक प्रजाको एक ही राजसिक व्यक्ति दबा देता है। इसी आधिभौतिक दृष्टान्तसे

तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥ १७ ॥
विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथाऽपरे ।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धूतकेशरः ॥ १८ ॥
क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना ।

प्रहारेण (चपेटाघातेन) (केषांचित्) शिरांसि पृथक् कृतवान् ॥ १७ ॥

तथा अपरे (दैत्याः) तेन (सिंहेन) विच्छिन्न-बाहुशिरसः कृताः, (ततः सः सिंहः) धूतकेशरः अन्येषां कोष्ठात् रुधिरं च पपौ (पीतवान्) ॥ १८ ॥

महात्मना (महाबलेन) अतिकोपिना (अतिक्रोध-

तथा अन्यान्य असुरोंके बाहु एवं मस्तक छिन्न करके रोमावलियोंको कम्पित करताहुआ उन लोगोंके पेटका रक्त पीने लगा ॥ १७-१८ ॥

इस प्रकार क्षणमात्रमें ही अतिक्रोधी देवीके वाहन

आध्यात्मिक और आधिदैविक रहस्य समझना उचित है। इस सम्बन्धमें जगज्जननीके वाहनरूपी सिंहकी लीला-का रहस्य इस प्रकारसे समझने-योग्य है। शुद्ध सत्त्वमयी कौशिकी देवीका वाहन शुद्ध रजोगुणमय सिंह ही हो सकता है; क्योंकि तमोगुण रजोगुणके द्वारा परास्त होता है और रजोगुण सत्त्वगुणके अधीन हो जाता है। इसी कारण शुद्धरजोगुणरूपी देवीका वाहन सिंहने तमोबाहुल्यरूपी दैत्य सेनाओंको मार भगाया ॥ १५-१९॥

तेन केशरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥ १९ ॥
श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् ।
बलञ्च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेशरिणा ततः ॥ २० ॥
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः ।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥ २१ ॥

युक्तेन) देव्या वाहनेन तेन केशरिणा (सिंहेन) क्षणेन तत् सर्वं बलं (सैन्यं) क्षयं (नाशं) नीतं (प्रापितं) ॥१९॥

देव्या तं असुरं धूम्रलोचनं निहतं, देवीकेशरिणा (देवीवाहनसिंहेन) कृत्स्नं (समस्तं) बलं क्षयितं (विनष्टं) च श्रुत्वा, ततः (अनन्तरं) दैत्याधिपतिः (दैत्यानामधीश्वरः) शुम्भः प्रस्फुरिताधरः (कम्पिताधरः सन्) चुकोप, तौ (पूर्वोक्तौ) चण्डमुण्डौ महासुरौ आज्ञापयामास च ॥ २०-२१ ॥

सिंहने सब असुर सैन्योंका विनाश कर डाला ॥ १९ ॥

दैत्यराज शुम्भ देवीके द्वारा धूम्रलोचन और देवीके सिंहके द्वारा असुर-सैन्योंके विनाशका समाचार सुनकर क्रोधित हो उठा, उस समय क्रोधसे उसके ओठ फरकने लगे, और उसने महासुर चण्ड-मुण्डको आज्ञा दी ॥ २०-२१ ॥

हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥ २२ ॥
केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥ २३ ॥
तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते।

हे चण्ड! हे मुण्ड! बहुभिः (अनेकैः) बलैः (सैन्यैः) परिवारितौ (सन्तौ) तत्र (हिमालये) गच्छत, गत्वा च लघु (शीघ्रं) सा (देवी) केशेषु आकृष्य बद्ध्वा वा समानीयतां, यदि वः (युष्माकं) युधि (युद्धे) संशयः (जेष्यामि न वा इति संदेहः) तदा सर्वैः असुरैः अशेषायुधैः (सा देवी) विनिहन्यताम् ॥ २२-२३ ॥

दुष्टायां तस्यां (देव्यां) हतायां (आहतायां सत्याम्) सिंहे विनिपातिते च (सति) अथ (अनन्तरं) तां

कि, हे चण्ड! हे मुण्ड! तुम बहुत सैन्योंको साथ लेकर उस रमणीके निकट जाओ और उसको शीघ्र ले आओ। उसका केश पकड़कर अथवा बाँध कर ले आना। यदि किसी प्रकार यह भी न कर सको तो तुम सब असुर मिलकर नाना प्रकारके अस्त्रोंसे उसको प्रहार करना ॥ २३ ॥

उस स्त्रीके हतप्राय होनेपर, सिंहको मार डालने-

शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ॥२४॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
धूम्रलोचनवधोनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अम्बिकां गृहीत्वा बद्ध्वा शीघ्रं आगम्यताम् ॥ २४ ॥

के अनन्तर उस अम्बिकाको बाँध करके ले आना ॥२४॥
धूम्रलोचनवधनामक षष्ठ अध्याय समाप्त हुआ ।

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः ।
चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥ २ ॥
ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम् ।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने ॥ ३ ॥

ऋषिः उवाच,—ततः (अनन्तरं) ते चण्डमुण्डपुरोगमाः (चण्डमुण्डप्रभृतयः) दैत्याः चतुरङ्गबलोपेताः आज्ञप्ताः (सन्तः) अभ्युद्यतायुधाः (उद्यतास्त्राः सन्तः) ययुः (गतवन्तः) ॥ १-२ ॥

ततः ते (दैत्याः), महति काञ्चने (स्वर्णमये) शैलेन्द्रशृंगे (हिमालयशृंगे) सिंहस्य उपरि व्यवस्थितां ईषद्धासां (ईषत् हसन्तीं) देवीं ददृशुः (दृष्टवन्तः) ॥३॥

ऋषि बोले,—शुम्भकी आज्ञा पाते ही चण्ड-मुण्ड आदि दैत्यगण हस्ती, अश्व, रथ तथा पदाति दलसे परिवेष्टित हो अस्त्र-शस्त्रसे तैयार होकर गये और हिमालयके कांचन शृंगके ऊपर सिंहपर बैठी ईषत् हास्यवदना देवीको देखा ॥ ३ ॥

टीका—भारतद्वीपके उत्तर दिशामें हिमालय पर्वत है। उसके एक बड़े शिखरका नाम काञ्चनशृंग है। इस कारण यह शङ्का हो सकती है, कि यह देवासुर-संग्राम दैवजगत्में न होकर भारतद्वीपमें ही हुआ

ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः ।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥ ४ ॥
ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन्प्रति ।
कोपेन चास्या वदनं मसीवर्णमभूत्तदा ॥ ५ ॥

ते आकृष्टचापासिधराः तथा अन्ये तत् समीपगाः (देवीसमीपवर्त्तिनः) उद्यताः (सन्तः) तां दृष्ट्वा समादातुं (ग्रहीतुं) उद्यमं चक्रुः ॥ ४ ॥

ततः अम्बिका तान् अरीन् (शत्रून्) प्रति उच्चैः कोपं चकार, कोपेन च अस्याः (देव्याः) वदनं तदा मसीवर्णं (अत्यारक्तं) अभूत् ॥ ५ ॥

होगा । ऐसी शंकाका समाधान यह है कि, दैवजगत्में भी हिमालय पर्वत है और उसीको प्रतिकृति भारतद्वीपका हिमालय पर्वत है । इस मृत्युलोकमें जो दैवी-सृष्टि है, उसका मूल देवलोकमें है । उदाहरणरूपसे समझ सकते हैं, कि जैसे गङ्गा नदी इस भारतद्वीपमें भी है और स्वर्गमें भी है ॥ ३ ॥

तब उद्धत चण्ड-मुण्ड आदि प्रधान दैत्यगण, धनु, असि धारण करके देवीके निकट जाकर उनको पकड़ने की चेष्टा करने लगे ॥ ४ ॥

अनन्तर अम्बिकाने उन शत्रु असुरोंके प्रति बहुत क्रोध किया, क्रोधसे उनका मुखमण्डल रक्तवर्ण हो उठा ॥५॥

भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम् ।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥ ६ ॥
विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा ।
द्वीपिचर्मपरिधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥ ७ ॥
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा ।

तस्याः (देव्याः) भ्रुकुटीकुटिलात् ललाटफलकात् द्रुतं (शीघ्रं) करालवदना (भीषणमुखी) असिपाशिनी (खड्गपाशधारिणी) काली विनिष्क्रान्ता (आविर्भूता) ॥६॥

(सा देवी) विचित्रखट्वाङ्गधरा (विचित्रं खट्वाङ्गं लोहमययष्टिः यस्याः सा) नरमालाविभूषणा द्वीपिचर्मपरिधाना (व्याघ्रचर्मपरिधाना) शुष्कमांसातिभैरवा (शुष्कं मांसं यस्याः अतएव भैरवा भीषणा) अति विस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा (जिह्वायाः ललनं चलनं, तेन

तब उनके भीषण भ्रुकुटी करनेपर ललाटदेशसे असि एवं पाशधारिणी करालवदना कालीदेवी निकलीं ॥ ६ ॥

वे विचित्र लोहमय यष्टिधारिणी नर-मुण्ड-मालासे विभूषित और व्याघ्रचर्म पहनी हुई थीं और शरीरमें मांस न होनेसे अतिभयानक आकृति मालूम हो रही थीं । उनका मुखमण्डल अतिविस्तृत तथा लोल-जिह्वा होनेसे देखतेही भय होता था । इनके नेत्र धँसे

निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥ ८ ॥
सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान्।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम् ॥ ९ ॥

भीषणा (निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥७-८॥
सा (ईदृशी) महासुरान् घातयन्ती तत्र सुरारीणां (असुराणां) सैन्ये (सैन्यमध्ये) वेगेन अभिपतिता (सती) तत् बलं (असुरसैन्यं) अभक्षयत (भक्षितवती ॥ ९ ॥

हुए और लाल थे और इन्होंने गर्जनसे दिङ्मण्डलको परिव्याप्त किया था ॥ ७—८ ॥

वह अतिवेगसे आकर असुर-सैन्योंको आहत करती हुई भक्षण करने लगी ॥ ९ ॥

टीका—पहले ही ब्रह्म-प्रकृतिके चारों स्वरूपों अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म, कारण और तुरीयका वर्णन हो चुका है। उनके इन चारों रूपोंमेंसे भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिवकी जननी जगदम्बा कारणशक्ति पाश, अंकुश, वर और अभय-धारिणीका प्रथम तमोमयरूप प्रथम चरित्रमें प्रकाशित हो चुका है। और महिषासुर-वधरूपी दूसरे चरित्रमें उन्हीं महासरस्वती, महाकाली और महालक्ष्मी-रूपिणीकी रजःप्रधान महिमा प्रकाशित हुई है। इस तृतीय चरित्रमें उनकी सत्त्वप्रधान लीलाका वर्णन है। सर्व-आश्रयभूता तुरीयाशक्तिके दो

पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान् ।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥ १० ॥

(सा) पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान् वारणान् एकहस्तेन समादाय (गृहीत्वा) मुखे चिक्षेप॥१०॥

अनन्तर पार्श्वरक्षक, अग्ररक्षक, योद्धा एवं घण्टा आदि आभरण सहित हाथियोंको एक हाथसे पकड़ कर मुखमें डालने लगीं ॥ १० ॥

स्वरूपोंमेंसे कौशिकीदेवी ही देवासुर-संग्राममें प्रवृत्त हुई थीं और दूसरी आद्याशक्तिरूपिणी कालिका वहीं रह गयी थी। अतः इस अध्यायमें वर्णित कालीस्वरूपके साथ उन कालिका देवीका सम्बन्ध नहीं है। पूर्वकथित कालिका तुरीयाशक्तिभावसे प्रकट हुई थीं, यह चामुण्डा काली युद्धमें कौशिकीदेवीके ललाटसे प्रकट हुई हैं। सत्त्वगुणके प्राधान्यकी अवस्थामें वैराग्य-विभूति-सुशोभित तत्त्वज्ञानकी प्रबलावस्था ही इन चामुण्डाकाली देवीका अध्यात्मस्वरूप है। उनकी कृपा होनेपर इन्द्रिय-लोलुप सब आसुरी सेनाएँ वाहन-सहित उनके कराल वदनमें प्रविष्ट हो जाती हैं। यावत् वैषयिक प्रपंच उनका भक्ष्य भी है। तन्त्रोंमें कालिका और चामुण्डा दोनोंका रूप पृथक् पृथक् वर्णित है। ब्रह्म-शवपर महा-काल, और महाकालको वशीभूत करती हुई उनके वक्षः-स्थलपर स्थित महाकालीका स्वरूप दिखाया गया है एवं

तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह ।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयत्यतिभैरवम् ॥ ११ ॥
एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम् ।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसाऽन्यमपोथयत् ॥ १२ ॥

तथा तुरगैः (अश्वैः सह) योधं (अश्वारोहं) सारथिना सह रथं वक्त्रे निक्षिप्य एव अतिभैरवं (अतिभीषणं यथा तथा) दशनैः (दन्तैः) चर्व्वयति ॥ ११ ॥

(सा) एकं केशेषु अथ अपरं च ग्रीवायां अन्यं च पादेन आक्रम्य जग्राह, अन्यं उरसा (वक्षसा) एव अपोथयत् (मर्द्दितवती) ॥ १२ ॥

तथा अश्वसहित अश्वारोही और सारथिसहित रथको एक हाथसे पकड़, मुखमें डालकर अति भयानक रूपसे चबाने लगीं ॥ ११ ॥

किसीका केश पकड़ कर, किसीका गला पकड़ कर तथा पैरके द्वारा आक्रमण कर और किसीको वक्षःस्थलद्वारा कुचल डाला ॥ १२ ॥

चामुण्डाका स्वरूप तो ऊपर वर्णित ही है। ब्रह्मको जड़वत् निश्चेष्ट रखकर अनादि अनन्त महाकालको अपने वशीभूत करके अपने इङ्गितमात्रसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डका सृष्टि-स्थिति-लय करानेवाली कालिका देवी हैं। परन्तु यह चामुण्डा देवी अन्तःकरणकी उद्दाम इन्द्रियोन्मुख वृत्तिरूप असुर-दलको भक्षण कर जीवको निःश्रेय प्रदान करनेवाली हैं ॥ ६-११ ॥

तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः।
मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ॥ १३ ॥
बलिनां तद्बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम्।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ॥ १४ ॥
असिना निहताः केचित् केचित्खट्वाङ्गताडिताः।

तैः असुरैः मुक्तानि (निक्षिप्तानि) शस्त्राणि तथा महास्त्राणि च मुखेन जग्राह, तथा दशनैः (दन्तैः) अपि रुषा (क्रोधेन) मथितानि (चूर्णितानि) (चकार)॥१३॥

बलिनां असुराणां दुरात्मनां तत् सर्वं बलं (सैन्यं) ममर्द (मर्दितवती), अन्यान् च अभक्षयत्, तथा अन्यान् च अताड़यत् (ताड़ितवती) ॥ १४ ॥

केचित् (असुराः) असिना (खड्गेन) निहताः केचित् खट्वाङ्गताड़िताः, तथा (केचित्) असुराः दन्ता-

---

तब असुरोंके द्वारा अस्त्र-शस्त्र चलाये जानेपर उन्होंने उन सबोंको क्रोधसे मुंहमें डाल कर दांतोंके द्वारा विचूर्ण कर दिया ॥ १३ ॥

इस प्रकारसे बलवान् दुष्ट असुर-सैन्योंको किसीको कुचल डाला, किसीको खा डाला और अन्यान्य कितने ही को भगा दिया कितने ही को तलवारसे काट डाला एवं अन्य कितने ही असुर खट्वाङ्गद्वारा ताड़ित होकर विनाशको प्राप्त हुए तथा अन्य कुछ असुरोंको

जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ॥ १५ ॥
क्षणेन तद्बलं सर्वमसुराणां निपातितम् ।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥ १६ ॥
शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः ।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः ॥ १७ ॥
तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् ।

ग्राभिहताः (सन्तः) विनाशं जग्मुः (प्राप्तवन्तः) चण्डः क्षणेन असुराणां तत् सर्वं बलं निपातितं दृष्ट्वा अतिभीषणां तां कालीं अभिदुद्राव (आभिमुख्येन अधावत्) ॥ १५-१६ ॥

महासुरः (चण्डः) महाभीमैः (अतिभयानकैः) शरवर्षैः, मुण्डः च क्षिप्तैः सहस्रशः चक्रैः भीमाक्षीं (भीषणनयनां) तां छादयामास ॥ १७ ॥

तानि अनेकानि चक्राणि तन्मुखं (तस्याः कालिकायाः

दांतोंके अग्रभागसे काटकर मार डाला ॥ १४—१५ ॥

इस प्रकारसे क्षणमात्रमें ही असुर-सैन्योंको नष्ट होते देख चण्ड अतिभीषण रूपधारिणी कालीकी ओर दौड़ा और अतिभीषण बाण-वर्षणद्वारा भीषणनयना कालीको आच्छादित कर दिया, मुण्डासुरने भी चक्रोंको फेंककर उनको ढांक दिया ॥ १६—१७ ॥

उस समय असुरके चक्रसमूह देवीके मुख-

बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ॥ १८ ॥
ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी ॥
काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥ १९ ॥
उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत ।

मुखं) विशमानानि (प्रविष्टानि सन्ति) घनोदरं (मेघाभ्यन्तरं विशमानानि) सुबहूनि अर्कबिम्बानि (सूर्य्यबिम्बानि) यथा (इव) बभुः (शुशुभिरे) ॥ १८ ॥

ततः भैरवनादिनी करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला काली अतिरुषा (क्रोधेन) भीमं (भयानकं) जहास (हसितवती) ॥ १९ ॥

देवी हं (इति शब्दं कृत्वा) महासिं उत्थाय च (उद्यम्य) चण्डं (प्रति) अधावत, (ततः) केशेषु

मण्डलमें प्रविष्ट होकर मेघमें प्रविष्ट बहुसूर्य्यबिम्बके समान सुशोभित होने लगे ॥ १८ ॥

तब भीषणनादिनी कालीने क्रोधसे भयदायक हास्य किया, उससे उनकी भयानक दंत-पंक्तियोंके द्वारा उनका मुखमण्डल उज्ज्वल हो उठा ॥ १९ ॥

देवी "हं" ऐसा शब्द करके असि लेकर चण्डासुर-

टीका–जिस प्रकार कूटस्थ चैतन्यव्यापिनी महादेवीके हुंकारसे धूम्रलोचनका वध होसकता है, चण्डमुण्डका वध उस प्रकार नहीं होसकता है। चण्ड-मुण्ड-

गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाऽच्छिनत् ॥ २० ॥
अथ मुण्डोऽप्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।
तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा ॥ २१ ॥

गृहीत्वा तेन असिना (खड्गेन) अस्य (चण्डस्य) शिरः अच्छिनत् च ॥ २० ॥

अथ (अनन्तरं) चण्डं निपातितं दृष्ट्वा मुण्डः अपि तां (कालीं प्रति) अधावत्, सा (देवी) तं (मुण्डं) अपि रुषा खड्गाभिहतं (खड्गेन निहतं) भूमौ अपातयत् ॥ २१ ॥

की ओर धावित हुई तथा बाल खैंचकर उसी तलवारसे उसका शिर काट डाला ॥ २० ॥

चण्डासुरको मृत देखकर मुण्डासुर धावित हुआ, तब देवीने भी खड्गद्वारा उसको निहत करके पृथिवी-पर गिरा दिया ॥ २१ ॥

का वध चामुण्डा कालीके द्वारा होसकता है। असुर-भाव-जनित राग-द्वेष ही चण्ड-मुण्ड नामक असुर हैं। अधिदैवरूप-सम्पन्न दैवराज्यके इन दोनों असुरोंका अध्यात्मरूप यही है। काली देवीका अध्यात्मरूप पहले ही कहा गया है, जिसको विचारनेसे यह जाना जायगा कि कालीके द्वारा ये कैसे वध्य हैं। राग और द्वेष ये दोनों रज एवं तमोगुण-सम्भूत हैं। रज और तमका

हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
मुण्डञ्च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम्॥ २२॥

ततः हतशेषं सैन्यं सुमहावीर्यं चण्डं मुण्डं च निपातितं दृष्ट्वा भयातुरं (सत्) दिशः भेजे (पलायितमित्यर्थः)॥ २२॥

अनन्तर बचे हुए सैन्य अति वीर्यशाली चण्ड और मुण्डको मरे हुए देख भयभीत हो इधर-उधर भाग गये॥ २२॥

समन्वय सत्त्वमें होता है। सत्त्वगुणमें ही सृष्टिकी सामञ्जस्य-रक्षा होती है। इसी कारण चण्ड और मुण्ड, दोनोंके शिर सत्त्वगुणमयी महादेवीको वैराग्य-विभूति-विभूषित तत्त्वज्ञान-स्वरूपिणी काली देवीने उपहार दिये हैं। इस स्थानमें श्रीकालीदेवीने युद्ध-यज्ञमें चण्ड-मुण्ड-रूपी महापशुओंके उपहार देनेकी बात कही है। यज्ञका लक्षण पहले विस्तृतरूपसे कहा गया है। उस लक्षणके अनुसार यह युद्धक्रिया यज्ञ है। इस यज्ञमें विशेषता यह है, कि यह पशुयाग है। पशुयाग उसको कहते हैं, जिसमें पशुबलि दी जाती है। सब यज्ञोंमें पशुबलि नहीं होती है, केवल उन्हीं यागोंमें पशुबलि होती है, जिनमें कर्त्ताके अधिकारके अनुसार बाधा-निवारणकी आवश्यकता होती है। वैसे तो बलि-

शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च ।
प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ॥ २३ ॥
मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू ।

काली चण्डस्य शिरः (मुण्डस्य) च मुण्डं गृहीत्वा चण्डिकां अभ्येत्य (च) प्रचण्डाट्टहासमिश्रं (यथा तथा) प्राह (अकथयत्) ॥ २३ ॥

अत्र युद्धयज्ञे मया चण्डमुण्डौ महापशू तव उप-

तब काली चण्ड-मुण्डका शिर लेकर भयानक अट्टहास करती हुई चण्डिकादेवीके पास गयीं और बोलीं ॥२३॥

मैंने इस युद्धयज्ञमें चण्ड-मुण्ड-नामक महापशुओंको

दानकी आवश्यकता प्रायः सभी यागोंमें होती है, यहाँ तक कि, आत्मबलिरूपी जैव अहङ्कारादिकी बलि देनेकी विधि अन्तर्यागमें पायी जाती है, इसी प्रकार विशेष-विशेष सकाम यज्ञोंमें पशुबलिका विधान है। इस स्थलपर कालीदेवीने पशुबलिका ही उल्लेख किया है। इसमें सन्देह ही नहीं कि पशुभावकी बलि दिये विना दिव्यभावकी प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि इन्द्रिय-सम्बन्धीय पशुभाव आत्मा-सम्बन्धीय दिव्य-भावका बाधक है। यही विज्ञान पशुयाग और बलि-दानके रहस्यका द्योतक है। इसी आध्यात्मिक रहस्य-पूर्णभावका आधिदैविक स्वरूप इस देवासुर-संग्राममें कालीदेवीके चरित्रद्वारा प्रकट हुआ है ॥ २०-२४ ॥

युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ॥ २४ ॥
ऋषिरुवाच ॥ २५ ॥
तवानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ ।
उवाच कालीं कल्याणीं ललितं चण्डिका वचः ॥ २६ ॥
यस्माच्चण्डञ्च मुण्डञ्च गृहीत्वा त्वमुपागता ।

हृतौ (उपढौकितौ), (त्वं) स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ॥ २४ ॥

ऋषिः उवाच,—ततः तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ आनीतौ दृष्ट्वा कल्याणीं (मंगलमयीं) कालीं चण्डिका ललितं (मनोहरं) वचः (वाक्यं) उवाच ॥ २५–२६ ॥

यस्मात् त्वं चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा उपागता (मत्समीपं आगता) ततः (तस्मात् कारणात्) हे

आपको उपहार दिये अब तुम स्वयं शुम्भ-निशुम्भका विनाश करोगी ॥ २४ ॥

ऋषि बोले,—देवी चण्डिका चण्ड और मुण्डके शिरोंको लेकर आयी हुई कालीको देख अतिमधुर वाक्यसे बोलीं—हे देवि ! तुम चण्ड-मुण्डके मस्तक लेकर मेरे निकट आयी हो, अतएव तुम जगत्में

चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि ! भविष्यसि ॥ २७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये चण्डमुण्डवधोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

देवि ! लोके (त्वं) चामुण्डा इति ख्याता (प्रसिद्धा) भविष्यसि ॥ २७ ॥

"चामुण्डा" नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ २५-२७ ॥

देवीमाहात्म्यका चण्डमुण्ड वधनामक सप्तम अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते ।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥ २ ॥
ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान् ।
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥ ३ ॥
अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः ।

ऋषिः उवाच,—चण्डे दैत्ये निहते, मुण्डे विनिपातिते च (विनष्टे) (सति) बहुलेषु सैन्येषु क्षयितेषु (सत्सु) च प्रतापवान् असुरेश्वरः शुम्भः ततः (अनन्तरं) कोपपराधीनचेताः (सन्) दैत्यानां सर्वसैन्यानां उद्योगं (युद्धोत्साहं) आदिदेश ह (कृतवान्) ॥ १-३ ॥

अद्य सर्वबलैः (युक्ताः) षडशीतिः दैत्याः उदायुधाः (उद्यतास्त्राः सन्तः) (तथा) कम्बूनां (कम्बूनां दैत्य-

---

ऋषि बोले,—चण्ड, मुण्ड एवं सैन्योंके नष्ट हो जाने पर प्रतापशाली असुरेश्वर शुम्भने क्रोधित होकर सब असुर सैन्योंको युद्धयात्राके निमित्त उद्योग करनेकी आज्ञा दी ॥ १-३ ॥

आज षडशीति (छियासी) दैत्यगण अपने सब सैन्योंके साथ अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर जायँ और कम्बूकुल-सम्भूत चतुरशीति (चौरासी) दैत्यगण भी अपने सैन्योंके

कम्बूनां चतुरशीतिनिर्यान्तु स्वबलैर्वृताः ॥ ४ ॥
कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै ।
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥ ५ ॥
कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः ।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥ ६ ॥

कुले जातानां) चतुरशीतिः (दैत्याः) स्वबलैः वृताः (सन्तः) (युद्धाय) निर्गच्छन्तु (निर्गताः भवन्तु) ॥४॥

कोटिवीर्य्याणि (कोटिवीर्य्यकुलजातानि) असुराणां पंचाशत् कुलानि (गणाः) (तथा) धौम्राणां (धूम्रवंशजातानां) शतं कुलानि ममाज्ञया निर्गच्छन्तु (युद्धाय गच्छन्तु) ॥ ५ ॥

तथा कालकाः, दौर्हृदाः, मौर्य्याः, कालकेयाः (कालकदौर्हृदमौर्य्यककालकेयवंशीयाः) असुराः त्वरिताः (त्वरायुक्ताः) युद्धाय सज्जाः (सज्जिताः सन्तः) मम आज्ञया निर्यान्तु ॥ ६ ॥

साथ जायँ । कोटिवीर्य्य नामक असुरकुल-सम्भूत पचास, धौम्रवंशीय एक सौ दैत्य मेरी आज्ञासे जायँ और कालक, दौर्हृद, मौर्य्य तथा कालकेय असुरगण मेरी आज्ञासे अतिशीघ्र युद्धके लिये सुसज्जित होकर जायँ ॥ ४-६ ॥

टीका—जैसे देवलोकमें देवताओंके अनेक प्रकारकी

इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः।
निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः॥ ७॥
आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम्।

भैरवशासनः असुरपतिः शुम्भः इति आज्ञाप्य बहुभिः महासैन्यसहस्रैः वृतः (सन्) निर्जगाम (युद्धाय निर्गतवान्)॥ ७॥

चण्डिका आयान्तं अतिभीषणं तत् सैन्यं (शुम्भसैन्यं) दृष्ट्वा ज्यास्वनैः (ज्याशब्दैः) धरणीगगनान्तरं (आकाश-

---

भयानक शासन करनेवाला असुरराज शुम्भ इस प्रकार आज्ञा देकर हजारों-हजारों सैन्योंके साथ चला॥ ७॥

चण्डिकाने शुम्भके उस भयानक सैन्यको आते देखकर

श्रेणियां हैं और उनके अनेक पदधारी हैं, जिनके नाम वेद और पुराणादि शास्त्रोंमें पाये जाते हैं, उसी प्रकार अतल, वितल आदि असुर लोकोंमें नाना असुर-पदधारी हैं और असुरोंकी अनेक श्रेणियां भी हैं। उन्हीं कुछ पदधारियों एवं कुछ श्रेणियोंके नाम यहां हैं। दुर्गासप्तशती पूर्ण शक्तिसे युक्त दिव्यग्रन्थ है, इस कारण इसमें सब बातोंकी पूर्णता है॥ ४–६॥

ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ॥ ८ ॥
ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप।
घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चोपबृंहयत् ॥ ९ ॥
धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा।
निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारिताननना ॥ १० ॥
तन्निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम्।

पृथिवीमध्यं) पूरयामास (परिव्याप्तवती) ॥ ८ ॥

हे नृप! ततः सिंहः अतीव महानादं (महाशब्दं) कृतवान् अम्बिका च घण्टास्वनेन (घण्टाशब्देन) तं नादं (शब्दं) उपबृंहयत् (वर्द्धितवती) ॥ ९ ॥

नादापूरितदिङ्मुखा विस्तारिताननना काली भीषणैः निनादैः (शब्दैः) धनुर्ज्यासिंहघण्टानां (शब्दं) जिग्ये (जितवती) ॥ १० ॥

दैत्यसैन्यैः तन्निनादं (तत्शब्दं) उपश्रुत्य सरोषैः

ज्याटङ्कारसे पृथिवी और आकाशको गूंजित कर दिया ॥८॥

हे राजन्! तब सिंहने भी अतीव गर्ज्जन किया, अम्बिकाने घण्टा-ध्वनिसे उसको और भी बढ़ा दिया ॥९॥

विस्तृतमुखी कालीने शब्दके द्वारा दिङ्मण्डलको परिव्याप्त कर भीषण शब्दसे धनु, बाण, सिंह तथा घण्टाके शब्दोंको अभिभूत कर डाला ॥ १० ॥

अनन्तर दैत्यसैन्योंने देवीके शब्दको सुनकर क्रोधित

देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः ॥ ११ ॥
एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम्।
भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः ॥ १२ ॥
ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ॥ १३ ॥

(क्रोधयुक्तैः सद्भिः) चतुर्दिशं (चतुर्दिक्षु) देवी सिंहः तथा काली (चामुण्डा) परिवारिताः (परिवेष्टिताः)॥११॥

हे भूप ! एतस्मिन् अन्तरे सुरद्विषां विनाशाय अमरसिंहानां (देवश्रेष्ठानां) भवाय (कल्याणाय) अतिवीर्य्यबलान्विताः ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथा इन्द्रस्य च शक्तयः (तेषां) शरीरेभ्यः विनिष्क्रम्य (आविर्भूय) तद्रूपैः (तत्तद्देवतारूपैः) चण्डिकां ययुः (चण्डिकासमीपं गतवत्यः) ॥ १२-१३ ॥

हो देवी, काली तथा उनके सिंहको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ११ ॥

हे भूपते ! इसी समय देवताओंके शत्रु असुरोंके विनाश तथा श्रेष्ठ देवताओंके कल्याणके लिये ब्रह्मा, शिव, कार्त्तिकेय, विष्णु एवं इन्द्रकी अतिबलवीर्य्यशालिनी शक्तियाँ उन लोगोंके शरीरसे निकल कर तत्तद्रूपमें चण्डिकाके निकट उपस्थित हुईं ॥ १२-१३ ॥

यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् ।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ॥ १४ ॥
हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ॥ १५ ॥
माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी ।

यस्य देवस्य यत् रूपं यथा भूषणवाहनं, तत् शक्तिः तद्वदेव हि (तथाविधैव) (सती) असुरान् योद्धुं (प्रहर्त्तुं) आययौ (आगतवती) ॥ १४ ॥

अग्रे (प्रथमं) ब्रह्मणः शक्तिः साक्षसूत्रकमण्डलुः हंसयुक्तविमाना (सती) आयाता, सा ब्रह्माणी अभिधीयते (कथ्यते) ॥ १५ ॥

माहेश्वरी (महेश्वरशक्तिः) वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी महाहिवलया (महासर्पवलया) चन्द्ररेखाविभू-

---

जिस देवताका जो रूप, जैसा भूषण और वाहन है, उसकी शक्ति वैसा ही रूप, भूषण और वाहन-सहित-असुरोंके साथ युद्ध करनेको आयी ॥ १४ ॥

अक्षमाला और कमण्डलु धारणकर हंसयुक्त विमानपर आरूढ़ा ब्रह्माकी शक्ति युद्धक्षेत्रमें आयीं, जो ब्रह्माणी नामसे अभिहित होती हैं॥ १५ ॥

त्रिशूलधारिणी महेश्वरकी शक्ति वृषारूढ़ा होकर

महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा ॥ १६ ॥
कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना ।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी ॥ १७ ॥
तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरिसंस्थिता ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥ १८ ॥
यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतो हरेः ।

षणा (अर्द्धचन्द्रविभूषिता सती) प्राप्ता (आगता) ॥१६॥

गुहरूपिणी (कार्त्तिकेयाकृतिः) कौमारी (कार्त्तिकेयशक्तिः) अम्बिका च शक्तिहस्ता मयूरवरवाहना (सती) दैत्यान् योद्धुं अभ्याययौ (आगतवती) ॥ १७ ॥

तथा एव वैष्णवी शक्तिः गरुडोपरिसंस्थिता शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ता (सती) अभ्युपाययौ (आगता) ॥१८॥

अतुलं यज्ञवाराहं रूपं (वराहमूर्तिं) बिभ्रतः (धारयतः) हरेः (विष्णोः) या शक्तिः, सा अपि तत्र

युद्धभूमिमें आयीं, जो सर्प-वलय और अर्द्धचन्द्रविभूषित थीं ॥ १६ ॥

कार्त्तिकेय-प्रतिकृति उनकी शक्ति हाथमें शक्ति ले मयूरपर सवार होकर आयीं ॥ १७ ॥

वैष्णवी शक्ति भी शङ्ख, चक्र, गदा, धनु और खड्ग-हस्ता हो गरुड़पर आरूढ़ होकर वहाँ आयीं ॥ १८ ॥

यज्ञवाराहरूपी हरिकी शक्ति वाराहीरूप धारण

शक्तिः साप्यायययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम् ॥ १९ ॥
नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥ २० ॥
वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरिस्थिता।
प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा ॥ २१ ॥

(युद्धे) वाराहीं तनुं (वाराहमूर्त्ति) बिभ्रती (सती) आययौ ॥ १९ ॥

नारसिंही (नृसिंहशक्तिः) नृसिंहस्य सदृशं वपुः (शरीरं) बिभ्रती सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः (केशरक्षेपेण उत्क्षिप्ता नक्षत्रसंहतिः नक्षत्रसमूहः यया सा सती) प्राप्ता (आगता) ॥ २० ॥

सहस्रनयना ऐन्द्री (इन्द्रशक्तिः) तथैव (च) वज्रहस्ता गजराजोपरिस्थिता (सती) प्राप्ता, यथा शक्रः (इन्द्रः) सा (इन्द्रशक्तिः) तथैव ॥ २१ ॥

कर आयीं ॥ १९ ॥

नारसिंही शक्ति नृसिंहके समान शरीर धारण कर आयीं, जिनकी केशराजिके आघातसे नक्षत्रमण्डल टूटकर गिरने लगा ॥ २० ॥

उसी प्रकार इन्द्रशक्ति हाथमें वज्र धारण करती हुई ऐरावतपर आरूढ़ होकर आयीं, इनके सहस्रनेत्र आदि इन्द्रके समान थे ॥ २१ ॥

ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याह चण्डिकाम् ॥ २२ ॥
ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा।
चण्डिका शक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥ २३ ॥
सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता।

ततः ताभिः देवशक्तिभिः परिवृतः ईशानः (शिवः) मम प्रीत्या (प्रीत्यर्थं) असुराः शीघ्रं हन्यन्तां (इति) चण्डिकां आह ॥ २२ ॥

ततः अतिभीषणा अत्युग्रा (अतिशयक्रोधयुक्ता) शिवाशतनिनादिनी (शिवाशतशब्दपरीता) चण्डिका शक्तिः देवीशरीरात् तु विनिष्क्रान्ता (आविर्भूता) ॥२३॥

अपराजिता (सर्वजित्वरी) सा च धूम्रजटिलं (धूम्रवर्णजटाविशिष्टं) ईशानं (शिवं) आह, हे भगवन्!

अनन्तर महेश्वर समस्त शक्तियोंके द्वारा परिवेष्टित होकर चण्डिकासे बोले,—हमारी प्रसन्नताके लिये आप इन असुरोंका शीघ्र वध करें ॥ २२ ॥

शिवजीके ऐसा कहते ही देवी चण्डिकाके शरीरसे अतिभयानक अतिउग्र उनकी शक्ति आविर्भूत हुई, एवं उनके साथ ही सैकड़ों शिवा (सियाल) उत्पन्न होकर निनाद करने लगीं ॥ २३ ॥

उन्होंने धूम्रवर्ण जटाओंसे विभूषित महादेवजीसे

दूतत्वं गच्छ भगवन्पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ २४ ॥
ब्रूहि शुम्भं निशुम्भश्च दानवावतिगर्वितौ ।
ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥ २५ ॥
त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः ।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥ २६ ॥

शुम्भनिशुम्भयोः पार्श्वं (प्रति) (त्वं) दूतत्वं गच्छ (प्राप्नुहि) ॥ २४ ॥

अतिगर्व्वितौ दानवौ शुम्भं निशुम्भं च ब्रूहि, तत्र ये च अन्ये दानवाः युद्धाय समुपस्थिताः (तान् अपि) (ब्रूहि कथय) ॥ २५ ॥

इन्द्रः त्रैलोक्यं लभतां, देवाः हविर्भुजः सन्तु (भवन्तु) यदि यूयं जीवितुं (प्राणान् धारयितुं) इच्छथ (तर्हि) पातालं प्रयात (गच्छत)॥ २६ ॥

कहा कि भगवन् ! आप दूतरूपसे शुम्भ और निशुम्भके निकट जाइये और बलगर्वसे गर्वित उन शुम्भ-निशुम्भसे तथा युद्धार्थी अन्यान्य दानवोंसे कहिये कि, अब इन्द्र त्रिलोकरक्षा-कार्य्यमें नियुक्त हों, देवतागण अपना-अपना हविर्भाग ग्रहण करें, और तुमलोग यदि जीवित रहना चाहते हो, तो शीघ्र ही पातालको चले जाओ ॥ २४—२६ ॥

टीका—उपासना-सम्बन्धसे केवल विष्णु और

बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकाङ्क्षिणः ।
तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥ २७ ॥

अथ चेत् (यदि) बलावलेपात् (बलगर्व्वात्) भवन्तः युद्धकांक्षिणः (भवन्ति), तदा आगच्छत, वः (युष्माकं) पिशितेन (मांसेन) मच्छिवाः तृप्यन्तु (तृप्ता भवन्तु) ॥ २७ ॥

एवं यदि आप बलगर्वसे गर्वित होकर युद्ध ही करना चाहते हो, तो शीघ्र ही आओ, तुम लोगोंके मांसके द्वारा हमारे शिवागण तृप्तिलाभ करें ॥ २७ ॥

शिवकी उपासना ही शास्त्र-सम्मत है, क्योंकि, मुक्ति-प्रसङ्गसे इन दोनोंका ही प्राधान्य है। चित्-विज्ञानसे सांख्ययोग और सत्-विज्ञानसे कर्मयोग, इन दोनोंका वर्णन श्रीगीतोपनिषद्में भलीभाँति पाया जाता है। सांख्ययोगके फल-प्रदाता भगवान् विष्णु और कर्मयोगके फल-प्रदाता भगवान् शिव हैं। इसी कारण प्रथम चरित्रमें प्रथमका और तीसरे चरित्रमें दूसरेका सम्बन्ध दिखाया गया है। प्रथममें सृष्टि-प्रसङ्ग होनेसे विष्णुको स्वयं युद्ध करना पड़ा था, और तीसरे चरित्रमें लय-प्रसङ्ग होनेसे शिवजीको केवल दूत बनकर सहायक बनना पड़ा था, क्योंकि, पहिले चरित्रमें तमोमयी देवी-को केवल सहायता देनी पड़ी थी, एवं इस तीसरे चरित्रमें प्रत्यक्षरूपसे युद्ध समाप्त करना पड़ा है। इससे

यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम् ।
शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता ॥ २८ ॥

यतः तया देव्या शिवः स्वयं दौत्येन नियुक्तः, ततः सा अस्मिन् लोके शिवदूतीति ख्यातिं (प्रसिद्धिं) आगता (प्राप्ता) ॥ २८ ॥

क्योंकि इन देवीने स्वयं भगवान् शिवको दूतरूपसे नियुक्त किया, इस कारण वह "शिवदूती" नामसे जगत्में विख्यात हुईं ॥ २८ ॥

भगवान् विष्णु और भगवान् शिवका आध्यात्मिक स्वरूप लक्षित होगा; परन्तु देवताओंके इन अध्यात्म-स्वरूपोंसे कोई इनके अधिदैव और अधिभूत स्वरूपोंपर अश्रद्धा न करें। इनके अधिदैव स्वरूपसे सप्तशतीगीता दैवी-शक्ति-सम्पन्न हुई हैं, क्योंकि सप्तशतीगीताके विधिवत् अनुष्ठानसे ऐसा कोई कार्य्य नहीं है, जो सुसिद्ध नहीं हो सकता। इस सम्बन्धसे इतना अवश्य समझना चाहिये कि, इन सबका प्रत्यक्ष अधिभूतरूप षष्ठ एवं सप्तम उपासना लोकोंमें भक्तोंके लिये दर्शनीय है। उपासकगण अपने उपासना-बलसे उन लोकोंमें पहुंचकर अथवा उपासना-बलसे इस लोकमें भी उनके दर्शनकर कृत-कृत्य होते हैं। देवासुर-संग्रामका यह प्रबल युद्ध था, इस कारण सब देवताओंकी शक्तियोंको प्रकट

तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः ।
अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता ॥ २९ ॥
ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः ।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः ॥ ३० ॥

ते महासुराः अपि शर्वाख्यातं (महादेवेन कथितं) देव्याःवचः (वाक्यं) श्रुत्वा अमर्षापूरिताः (क्रोधपरिपूर्णाः) (सन्तः) यत्र (यस्मिन् स्थाने) कात्यायनी स्थिता (तत्र) जग्मुः ॥ २९ ॥

ततः प्रथमं एव अग्रे (पुरतः) अमरारयः (असुराः) उद्धतामर्षाः (अतिशयक्रोधयुक्ताः) शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः तां देवीं ववर्षुः (आच्छादयामासुः) ॥ ३० ॥

देवीकी बात महादेवके निकट सुन क्रुद्ध होकर असुरगण जहां अम्बिका विराजमान थीं, वहां गये॥२९॥

तदनन्तर प्रथमही असुरगण क्रोधित हो शर, शक्ति, और ऋष्टि अस्त्र देवीपर वर्षाने लगे ॥ ३० ॥

होना पड़ा था। उस समय विवेकरूपिणी शिवदूतीने मुक्तिप्रदाता शिवको दौत्य-कार्य्यमें नियुक्त किया एवं सृष्टिकी सामञ्जस्य-रक्षासे प्रकृति-प्रवाहको सरल करनेके लिये असुरोंको एकबार अन्तिम अवसर दिया कि, वे देवताओंके अधिकारको छोड़कर अपने अधिकारमें चले जायँ ॥ २६-२७ ॥

सा च तान्प्रहितान्बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान्।
चिच्छेद लीलयाध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥ ३१ ॥
तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान्।
खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन्कुर्वती व्यचरत्तदा ॥ ३२ ॥
कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान्हतौजसः।

सा (देवी) च प्रहितान् (असुरक्षिप्तान्) तान् बाणान् शूलचक्रपरश्वधान् लीलया (अनायासेन) ध्मातधनुर्मुक्तैः महेषुभिः (महाबाणैः) चिच्छेद ॥ ३१ ॥

तथा काली तदा अरीन् (शत्रून्) शूलपातविदारितान् खट्वाङ्गपोथितान् (खट्वाङ्गेन मथितान्) च कुर्व्वती तस्य (असुरस्य) अग्रतः (सम्मुखे) व्यचरत् (विचरितवती) ॥ ३२ ॥

ब्रह्माणी येन येन (दिगन्तरेण) धावतिस्म, (तेन

तब देवीने असुर निक्षिप्त बाण, शूल, चक्र एवं कुठारसमूहोंको धनुष्टङ्कार करके बाणोंके द्वारा अनायास ही छिन्न कर डाला ॥ ३१ ॥

काली भी अवशिष्ट असुरोंमें किसीको शूलाघातसे विदीर्ण कर किसीको खट्वाङ्गद्वारा मर्दित करती हुई शुम्भासुरके सामने विचरण करने लगीं ॥ ३२ ॥

ब्रह्माणीने भी इधर-उधर घूम-घूम कर कमण्डलुके

ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून्येन येन स्म धावति ॥ ३३ ॥
माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी ।
दैत्यान् जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥ ३४ ॥
ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः ।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥ ३५ ॥

देशेन) शत्रून् कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्य्यान् हतौजसः (हततेजसः) च अकरोत् (कृतवती) ॥ ३३ ॥

माहेश्वरी त्रिशूलेन, तथा वैष्णवी चक्रेण, तथा अतिकोपना (अतिशयक्रोधयुक्ता) कौमारी शक्त्या दैत्यान् जघान ॥ ३४ ॥

ऐन्द्रीकुलिशपातेन (इन्द्रशक्तेः वज्रपातेन) विदारिताः (अतः) रुधिरौघप्रवर्षिण : (रक्तप्रवाहवाहिनः) शतशः दैत्यदानवाः पृथ्व्यां (पृथिव्यां) पेतुः (पतितवन्तः) ॥ ३५ ॥

जल-क्षेपणके द्वारा शत्रुओंको वीर्य्यहीन और निस्तेज कर दिया ॥ ३३ ॥

माहेश्वरी त्रिशूल, वैष्णवी चक्र, और कार्त्तिकेय-शक्ति शक्तिअस्त्रद्वारा दैत्योंको आहत करने लगीं ॥३४॥

तब इन्द्रशक्तिने भी वज्रके द्वारा सैकड़ों दैत्योंको विदीर्ण कर डाला, वे सब रक्त-वमन करते हुए पृथिवी-पर गिर पड़े ॥ ३५ ॥

तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः ।
वाराहमूर्त्यान्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ॥ ३६ ॥
नखैर्विदारितांश्चान्यान्भक्षयन्ती महासुरान् ।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा ॥ ३७ ॥
चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः ।

(केचित् असुराः) वाराहमूर्त्या तुण्डप्रहारवि-ध्वस्ताः (केचित् असुराः) दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः चक्रेण च विदारिताः (सन्तः) न्यपतन् (पतितवन्तः) ॥ ३६ ॥

नारसिंही (नरसिंहशक्तिः) (कांश्चित् असुरान्) नखैः विदारितान् (कुर्व्वती), अन्यान् च महासुरान् भक्षयन्ती नादापूर्णदिगम्बरा (सती) आजौ (युद्धे) चचार (विचरितवती) ॥ ३७ ॥

चण्डाट्टहासैः (चण्डैः सकोपैः अट्टहासैः (उच्चहासैः) शिवदूत्यभिदूषिताः (शिवदूत्या अभिहताः) (केचित्)

वाराहीने किसीको तुण्डाघातद्वारा किसीको दांतों-के द्वारा और किसीको चक्रके द्वारा विदारित कर दिया, इससे वे सब पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ३६ ॥

नारसिंही भी सिंहनादके द्वारा दिङ्मण्डलको परि-व्याप्त कर नखोंद्वारा कितने ही असुरोंको विदीर्ण एवं अन्य कितने ही महासुरोंको भक्षण करती हुई युद्धक्षेत्रमें विचरण करने लगीं ॥ ३७ ॥

शिवदूती भी अतिभयानक अट्टहास करती हुई

पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥ ३८ ॥
इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् ।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥ ३९ ॥
पलायनपरान्दृष्ट्वा दैत्यान्मातृगणार्दितान् ।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥ ४० ॥

असुराः पृथिव्यां पेतुः (पतितवन्तः) अथ (अनन्तरं) सा (देवी) तदा पतितान् तान् (असुरान्) चखाद (खादितवती) ॥ ३८ ॥

इति (इत्येवं) विविधैः अभ्युपायैः महासुरान् मर्दयन्तं क्रुद्धं मातृगणं दृष्ट्वा देवारिसैनिकाः (असुरसैनिकाः) नेशुः (पलायितवन्तः) ॥ ३९ ॥

महासुरः रक्तबीजः क्रुद्धः (सन्) दैत्यान् मातृगणार्दितान् (अतएव) पलायनपरान् दृष्ट्वा योद्धुं अभ्याययौ ॥ ४० ॥

असुरोंको आहत एवं पृथिवीपर गिराकर भक्षण करने लगीं ॥ ३८ ॥

इस प्रकारसे नाना उपायोंके द्वारा मातृगण महाअसुरोंको विमर्दित करने लगीं, तब दैत्यसेनापतिगण युद्धस्थानसे भाग गये। इस प्रकार माताओंके द्वारा विमर्दित दैत्यसेनाओंको भागते हुए देख महाअसुर रक्तबीज अतिक्रोधित होकर युद्ध करने आया ॥ ३९-४० ॥

रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः ।
समुत्पतति मेदिन्यास्तत्प्रमाणस्तदासुरः ॥ ४१ ॥
युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः ।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥ ४२ ॥
कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम् ।

यदा अस्य (रक्तबीजस्य) शरीरतः (शरीरात्) रक्तबिन्दुः भूमौ पतति तदा तत्प्रमाणः (तत्सदृशः) असुरः मेदिन्याः समुत्पतति (समुत्पन्नो भवति) ॥४१॥

सः महासुरः (रक्तबीजः) गदापाणिः (गदाहस्तः) (सन्) इन्द्रशक्त्या (सह) युयुधे, ततः ऐन्द्री च स्ववज्रेण रक्तवीजं अताड़यत् (ताड़ितवती) ॥ ४२ ॥

कुलिशेन (वज्रेण) आहतस्य तस्य (रक्तबीजस्य) शोणितं (रक्तं) आशु (शीघ्रं) सुस्राव (प्राभ्रश्यत),

---

रक्तबीजके युद्धमें प्रवृत्त होनेपर जब उसके शरीरसे रक्तबिन्दु गिरने लगा, तत्क्षणात् पृथिवीपर गिरे हुए प्रत्येक रक्तबिन्दुसे रक्तबीजके समान ही बलशाली एक-एक असुर उत्पन्न होने लगे। इस प्रकार रक्तबीजके गदा हाथमें लेकर इन्द्रशक्तिके साथ युद्ध करनेपर इन्द्रशक्तिने अपने वज्रके द्वारा उसपर आघात किया, तब उसके देहसे बहुत रक्तस्राव हुआ और

समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ ४३ ॥
यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥ ४४ ॥
ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः।
समं मातृभिरत्युग्रं शस्त्रपातातिभीषणम् ॥ ४५ ॥

ततः तद्रूपाः (रक्तबीजस्वरूपाः) तत्पराक्रमाः (तत्तुल्यबलाः (योधाः समुत्तस्थुः (उत्थितवन्तः) ॥ ४३ ॥

तस्य शरीरात् यावन्तः रक्तबिन्दवः पतिताः, तद्-वीर्य्यबलविक्रमाः तावन्तः पुरुषाः जाताः (उत्पन्नाः) ॥४४॥

रक्तसम्भवाः ते पुरुषाः अपि तत्र च मातृभिः समं अत्युग्रं शस्त्रपातातिभीषणं (यथा तथा) युयुधुः ॥ ४५ ॥

उससे रक्तबीजके समान ही आकृति एवं पराक्रमशाली योद्धागण उत्पन्न हुए ॥ ४१-४३ ॥

रक्तबीजके देहसे जितने बिन्दु रक्त निकले, उतने ही रक्तबीजके समान वीर्य्य, बल एवं पराक्रमवाले पुरुष उत्पन्न हुए ॥ ४४ ॥

वे सब पुरुषगण भी अस्त्र-शस्त्र लेकर भयानकरूप-से मातृगणके साथ युद्ध करने लगे ॥ ४५ ॥

पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा ।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥ ४६ ॥
वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह ।
गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥ ४७ ॥
वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः ।

(ऐन्द्र्या) पुनश्च वज्रपातेन यदा अस्य शिरः क्षतं (तदा) रक्तं ववाह (सुस्राव) ततः (रक्तात्) सहस्रशः पुरुषाः जाताः ॥ ४६ ॥

वैष्णवी समरे (युद्धे) चक्रेण च एनं अभिजघान ह (आहतवती), ऐन्द्री तं असुरेश्वरं गदया ताड़यामास ॥ ४७ ॥

वैष्णवीचक्रभिन्नस्य (रक्तबीजस्य) रुधिरस्राव-

अनन्तर ऐन्द्रीशक्तिके वज्रके द्वारा रक्तबीजका शिर काट डालनेपर जैसा रक्त-प्रवाह चला, उससे हजारों असुर उत्पन्न हो गये ॥ ४६ ॥

वैष्णवीशक्तिने युद्धक्षेत्रमें चक्रके द्वारा उसको आहत किया, ऐन्द्री शक्तिने उस असुरेश्वरको गदासे प्रहार किया ॥ ४७ ॥

वैष्णवीके रक्तबीजको चक्रद्वारा आहत करनेपर

सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥ ४८ ॥
शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना ।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ॥ ४९ ॥
स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक् ।
मातॄः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥ ५० ॥

सम्भवैः तत्प्रमाणैः (तत्सदृशैः) सहस्रशः महासुरैः जगत् व्याप्तं ॥ ४८ ॥

कौमारी शक्त्या (शक्त्यस्त्रेण), तथा वाराही असिना, माहेश्वरी त्रिशूलेन च महासुरं रक्तबीजं जघान ॥ ४९ ॥

कोपसमाविष्टः महासुरः सः रक्तबीजः दैत्यः अपि च गदया सर्वाः एव मातॄः पृथक् अहनत् (आहतवान्) ॥ ५० ॥

उसके रक्तप्रवाहसे उसीके समान हजारों-हजारों महाअसुर उत्पन्न होजानेसे उन असुरोंके द्वारा जगत् आच्छन्न होगया । तब कौमारी, वाराही तथा माहेश्वरी यथाक्रम शक्ति, खड्ग और त्रिशूलके द्वारा रक्तबीजको आहत करने लगीं ॥ ४८-४९ ॥

रक्तबीजने भी क्रोधित होकर गदाद्वारा प्रत्येक मातृशक्तिको पृथक् पृथक्रूपसे आहत किया ॥ ५० ॥

तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि ।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ॥ ५१ ॥
तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् ।
व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥ ५२ ॥
तान्विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा ।

(मातृगणेन) शक्तिशूलादिभिः आहतस्य तस्य भुवि यः रक्तौघः (रक्तप्रवाहः) पपात, तेन शतशः असुराः आसन् (उत्पन्नाः बभूवुः) ॥ ५१ ॥

असुरासृक्सम्भूतैः (असुररक्तजातैः) तैः असुरैः च सकलं जगत् व्याप्तं आसीत्, ततः देवाः उत्तमं (अतिशयं) भयं आजग्मुः (प्राप्तवन्तः) ॥ ५२ ॥

चण्डिका तान् सुरान् विषण्णान् दृष्ट्वा प्राह,

और स्वयं भी शक्ति, शूलादिद्वारा आहत होनेसे उसके रक्तसे सैकड़ों-सैकड़ों असुर उत्पन्न होने लगे ॥ ५१ ॥

उस असुरके रक्तसे उत्पन्न दैत्योंसे जगत्को परिव्याप्त देखकर देवतागण भयभीय होगये ॥ ५२ ॥

तब देवी चण्डिकाने देवताओंको भयसे उद्विग्न देखकर युद्धमें शीघ्रता करते हुए कालीको कहा,—हे

उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ॥ ५३ ॥
मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान् ।
रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिता ॥ ५४ ॥
भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान् ।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥ ५५ ॥

सत्वरा (रणसत्वरा सती) "हे चामुण्डे ! वदनं (मुखं) विस्तीर्णं कुरु (इति) कालीं उवाच ॥ ५३ ॥

त्वं मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून् रक्तबिन्दोः (उत्पन्नान्) महासुरान् (च) अनेन वक्त्रेण (मुखेन) वेगिता (सजातवेगा सती त्वं) प्रतीच्छ (भक्षय) ॥५४॥

(त्वं) तदुत्पन्नान् (रक्तबिन्दुजातान्) महासुरान् भक्षयन्ती (खादयन्ती) रणे चर (विचर), एवं (अनेन प्रकारेण) एषः दैत्यः क्षीणरक्तः (सन्) क्षयं (विनाशं) गमिष्यति (प्राप्स्यति) ॥ ५५ ॥

चामुण्डे ! तुम शीघ्रतासे अपना मुख फैलाओ । मेरे शस्त्रके आघातद्वारा रक्तबीजके देहसे रक्त गिरते ही तुम उसको पी जाओ, एवं जो असुर उत्पन्न हो जायँ, उनको भी खा जाओ ॥ ५३-५४ ॥

इस प्रकारसे भक्षण करती हुई रणक्षेत्रमें तुम्हारे विचरण करनेपर शीघ्र ही यह दैत्य क्षीणरक्त होकर

भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे॥ ५६ ॥
इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् ।
मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम्॥ ५७ ॥
ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् ।
न चास्या वेदनाञ्चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि ॥ ५८ ॥

अपरे असुराः त्वया भक्ष्यमाणाः उग्राः (युद्धाय सोत्साहाः) न च उत्पत्स्यन्ति ॥ ५६ ॥

देवी तां इति उक्त्वा शूलेन तं (असुरं) अभिजघान (आहतवती)। ततः काली (च) मुखेन रक्तबीजस्य शोणितं (रक्तं) जगृहे (गृहीतवती) ॥ ५७ ॥

ततः असौ (रक्तबीजः) अथ (अपि) तत्र गदया चण्डिकां आजघान; (किन्तु) गदापातः अस्याः च (देव्याः) अल्पिकां अपि वेदनां न चक्रे (जनयामास) ॥ ५८ ॥

विनष्ट हो जायगा और तुम्हारे इस प्रकार भक्षण करने पर पुनः अन्य उत्पन्न नहीं होंगे ॥ ५५-५६ ॥

भगवती चण्डिकाने इस प्रकार कालीको कह कर अपने शूलके द्वारा असुरको मारा और काली तत्क्षणात् रक्तबीजकी रक्तराशि पान करने लगीं ॥ ५७ ॥

अनन्तर रक्तबीज गदाद्वारा चण्डिकाको आघात करने लगा, किन्तु गदाघात-जनित कोई कष्ट उनको नहीं हुआ ॥ ५८ ॥

तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् ।
यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति ॥ ५९ ॥
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः ।
तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम् ॥ ६० ॥
देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ।

आहतस्य तस्य यतः देहात् तु बहु शोणितं (रक्तं) सुस्राव ततः (तस्मादेव देहप्रदेशात्) तत् (शोणितं) चामुण्डा वक्त्रेण सम्प्रतीच्छति (सम्यक् पिवतिस्म)॥५९॥

रक्तपातात् अस्याः (काल्याः) मुखे ये महासुराः समुद्गताः (समुत्पन्नाः), चामुण्डा तान् (सर्वान्) चखाद (खादितवती) अथ तस्य (रक्तबीजस्य) शोणितं च पपौ (पीतवती) ॥ ६० ॥

देवी चामुण्डापीतशोणितं तं रक्तबीजं शूलेन, वज्रेण

किन्तु रक्तबीजके आहत होनेसे उसके देहसे रक्त प्रवाहित होने लगा, चामुण्डा जहाँका-तहाँ उसको पान करने लगीं ॥ ५९ ॥

एवं रक्त गिरते-गिरते ही मुखमें जो असुर उत्पन्न हुए थे, उन लोगोंको भी भक्षण किया और रक्तपान किया । इस प्रकार चामुण्डाके रक्त पान

जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् ॥ ६१ ॥

बाणैः असिभिः ऋष्टिभिः (अस्त्रविशेषैः) (च) जघान ॥ ६१ ॥

करनेपर देवीने शूल, वज्र, बाण, असि तथा ऋष्टिशस्त्र-के द्वारा रक्तवीजको आहत किया ॥ ६०-६१ ॥

टीका—चामुण्डा काली देवीका जैसे चण्ड-मुण्ड वध्य हैं, ऐसे ही रक्तबीजके वधमें भी उनकी सहायता प्रधान है। यह पहले ही कहा गया है कि, सप्तशतीगीता अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत, तीनों भावोंकी प्रकाशिका है, इसका प्रत्येक प्रकरण त्रिभावात्मक है। उसी शैली के अनुसार असुर रक्तबीजका भी त्रिभावात्मक स्वरूप निश्चित है। रक्तबीजका अध्यात्मस्वरूप समझनेके लिये पूज्यपाद महर्षि भरद्वाजकृत कर्ममीमांसादर्शनका संस्कारप्रकरण समझनेयोग्य है। कर्ममीमांसादर्शनने संस्कारके दो भेद किये हैं, यथा, स्वाभाविक और अस्वाभाविक। स्वाभाविक संस्कार एक है और अस्वा-भाविक संस्कार अनन्त हैं। स्वाभाविक संस्कार मुक्ति देने-वाला है, अस्वाभाविक संस्कार बन्धन-दशाको स्थायी रखनेवाला है। अस्वाभाविक संस्कारके एक संस्कारसे अनन्त संस्कारोंकी उत्पत्ति होती है। केवल तत्त्वज्ञानके द्वारा वासनाका नाश होनेसे ही अस्वाभाविक संस्कारका नाश होता है। जैव-वासना-जनित अस्वाभाविक कर्म-

स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः ।

हे महीपाल ! शस्त्रसंघसमाहतः नीरक्तः (रक्तरहितः)

हे राजन् ! इस प्रकार रक्तबीज शस्त्रोंके द्वारा

वीज संस्कार ही रक्तबीजका आध्यात्मिक स्वरूप है । रक्तबीजका रक्त जबतक पृथिवीपर गिरेगा, प्रत्येक रक्तबिन्दुरूपी बीजसे नवीन वासना-जनित नवीन संस्कार उत्पन्न होता हुआ नवीन-नवीन रक्तबीजकी उत्पत्ति होती रहेगी । भोगके स्थायी होने और आवागमनचक्रके नियमित चलते रहनेका यही कारण है । यदि तत्त्वज्ञानकी सहायतासे अन्तःकरणमें उस संस्कारका संग्रह होना बन्द होजाय और तत्त्वज्ञानसे मनोनाश होकर नवीन वासना संग्रहीत न होने पावे, तभी रक्तबीजका नाश सम्भव है, देवासुर-संग्राममें चण्डिका देवीकी सहायतासे रक्तबीजके परास्त होने एवं मृत्युका यही रहस्य है । चण्ड-मुण्डको कालीदेवीने स्वयं मारा था और रक्तबीजके मृत्यु में परम सहायक हुई थीं । राग-द्वेषका नाश तत्त्वज्ञान से हो सकता है, परन्तु दृढ़ अभिनिवेश-जनित जैववासनासे उत्पन्न अस्वाभाविक संस्कार विद्यादेवी की कृपा और तत्त्वज्ञानकी सहायताके विना नष्ट नहीं हो सकता है । यह दार्शनिक सिद्धान्त है, कि विषय-वैराग्यसे विभूषित तत्त्वज्ञानकी सहायतासे

नीरक्तश्च महीपाल ! रक्तबीजो महासुरः ॥ ६२ ॥
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप ! ।

च महासुरः सः रक्तबीजः महीपृष्ठे पपात ॥ ६२ ॥
हे नृप ! ततः (अनन्तरं) ते त्रिदशाः (देवाः) अतुलं हर्षं अवापुः, तेषां (त्रिदशानां सम्बन्धे) जातः

निहत हो, रक्तशून्य होकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ ६२ ॥
हे नृप ! उस समय देवगण रक्तबीजको मृत देखकर

वासना-नाश होकर मनोनाश होता है और मनोनाश होनेसे बद्धजीव मुक्त होजाता है। यह भी दार्शनिक सिद्धान्त है, कि तत्त्वज्ञानी व्यक्ति ही राग-द्वेषसे बच सकता है और आत्मज्ञानी व्यक्ति ही विद्यादेवीकी सहायतासे अविद्यासे बच जाता है। इन दार्शनिक सिद्धान्तोंको इस औपनिषदिक गाथाके साथ मिलानेसे इस लीलाका आध्यात्मिक स्वरूप प्रकट हो जायगा। तात्पर्य यह है, कि राग-द्वेषरूपी दोनों पशुओंको मार-कर वैराग्य-विभूति-भूषित तत्त्वज्ञानरूपिणी कालीदेवीने विद्यारूपिणी महामायाको बलि प्रदान किया। तदनन्तर कालीदेवीकी सहायतासे जब जैव-वासनारूपी प्रबल असुर रक्तबीज हीनवीर्य हो गया, तब आत्मज्ञान-प्रसविनी विद्यादेवीने उसको मारडाला। विना आत्म-ज्ञानके मनका समूल नाश नहीं होता है। अतः वासना-

तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः ॥ ६३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवधोनामा-
ष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

(उत्पन्नः) मातृगणः असृङ्मदोद्धतः (सन्) ननर्त्त (नृत्यतिस्म) ॥ ६३ ॥

परमानन्दको प्राप्त हुए, मातृगण भी रक्तपानमें मत्त होकर नृत्य करने लगीं ॥ ६३ ॥

रूपी रक्तबीज विद्यारूपिणी कौशिकी देवीका ही वध्य है। इस विषयका यही औपनिषदिक रहस्य है ॥ ६३ ॥

देवीमाहात्म्यका रक्तबीज-वध नामक अष्टम अध्याय
समाप्त हुआ।

राजोवाच ॥ १ ॥

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम ।
देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥ २ ॥
भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते ।
चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः ॥ ३ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ४ ॥

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते ।

राजा उवाच—हे भगवन्! इदं विचित्रं (अत्यद्भुतं) देव्याः रक्तबीजवधाश्रितं चरितं माहात्म्यं भवता मम (सम्बन्धे) आख्यातं (कथितम्) ॥ १-२ ॥

रक्तबीजे निपातिते (सति) अतिकोपनः शुम्भः निशुम्भः च यत् कर्म चकार, अहं (तत्) भूयः च (पुनरपि) श्रोतुं इच्छामि ॥ ३ ॥

ऋषिः उवाच,—आहवे (युद्धे) रक्तबीजे निपातिते (सति) बहुलेषु सैन्येषु आहतेषु (सत्सु) च शुम्भासुरः

राजा बोले,—भगवन्! आपने रक्तबीजके वध-विषयक उपाख्यानके साथ जो देवीका माहात्म्य वर्णन किया, सो अति आश्चर्य्य-जनक है, अतः रक्तबीजके मारे जानेपर अतिक्रोधी शुम्भ-निशुम्भने जो कुछ किया सो मैं पुनः आपसे सुनना चाहता हूँ ॥ १-३ ॥

ऋषि बोले,—रक्तबीज एवं अन्यान्य दैत्योंके युद्धमें

शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥ ५ ॥
हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन् ।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया ॥ ६ ॥
तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः ।
सन्दष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ॥ ७ ॥
आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः ।

निशुम्भः च अतुलं कोपं (क्रोधं) चकार ॥ ४-५ ॥

अथ (अनन्तरं) महासैन्यं हन्यमानं विलोक्य (दृष्ट्वा) अमर्षं (क्रोधं) उद्वहन् (धारयन्) निशुम्भः मुख्यया असुरसेनया (परिवृतः सन्) अभ्यधावत् (धावितवान्) ॥ ६ ॥

तथा तस्य (असुरस्य) अग्रतः (अग्रे) पृष्ठे पार्श्वयोः च महासुराः सन्दष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धाः (सन्तः) देवीं हन्तुं उपाययुः ॥ ७ ॥

महावीर्य्यः शुम्भः अपि स्वबलैः (स्वसैन्यैः) वृतः

मारे जानेपर शुम्भ-निशुम्भ बहुत ही क्रोधित हो उठे और निशुम्भ प्रधान असुर-सेनाओंको साथ लेकर अत्यन्त क्रोधित हो युद्धके लिये दौड़ा, तब उसके आगे-पीछे एवं पार्श्वमें अनेक प्रधान असुरगण क्रोधसे ओठ चबाते हुये देवीको मारनेके लिये गये ॥ ४-७ ॥

उस समय शुम्भासुर भी अपने सैन्योंको साथ

निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥ ८ ॥
ततो युद्धमतीवासीद्देव्या शुम्भनिशुम्भयोः ।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥ ९ ॥
चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिकाशु शरोत्करैः ।
ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥ १० ॥

(सन्) मातृभिः (सह) युद्धं कृत्वा तु कोपात् चण्डिकां निहन्तुं आजगाम ॥ ८ ॥

ततः (अनन्तरं) मेघयोः इव अतीव उग्रं शरवर्षं (बाणवर्षं) वर्षतोः (कुर्व्वतोः) शुम्भनिशुम्भयोः देव्या (सह) अतीव युद्धं आसीत् ॥ ९ ॥

चण्डिका आशु (शीघ्रं) शरोत्करैः (बाणसमूहैः) ताभ्यां (असुराभ्यां) अस्तान् (क्षिप्तान्) शरान् चिच्छेद, शस्त्रौघैः (शस्त्रसमूहैः) अङ्गेषु असुरेश्वरौ ताड़यामास च ॥ १० ॥

लेकर माताओंके साथ युद्ध करके चण्डिकाको मारने के लिये आया, अनन्तर देवीके साथ शुम्भ-निशुम्भका तुमुल संग्राम आरम्भ हुआ और शुम्भ तथा निशुम्भ दोनों असुर वर्षनेवाले मेघके समान बाणवर्षण करने लगे ॥ ८-९ ॥

चण्डिका भी शरसमूहोंके द्वारा असुरद्वारा चलाये हुए बाणोंको काट कर असुरराज शुम्भ-निशुम्भके अङ्गमें प्रहार करने लगीं ॥ १० ॥

निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम् ।
अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥ ११ ॥
ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम् ॥ १२ ॥
छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ।

निशुम्भः निशितं (शाणितं) खड्गं सुप्रभं चर्म च आदाय (गृहीत्वा) देव्याः उत्तमं वाहनं सिंहं मूर्ध्नि (मस्तके) अताड़यत् ॥ ११ ॥

देवीवाहने ताड़िते (सति) क्षुरप्रेण (क्षुरप्रनामास्त्रेण) निशुम्भस्य उत्तमं असिं, अष्टचन्द्रकं चर्म च अपि आशु चिच्छेद ॥ १२ ॥

सः असुरः चर्मणि खड्गे च छिन्ने (सति) शक्तिं चिक्षेप (क्षिप्तवान्) (सा देवी) अभिमुखागतां अस्य

तब निशुम्भने शाणित खड्ग और प्रभाशाली चर्मफलक (ढाल) लेकर देवीके वाहन सिंहके ऊपर प्रहार किया, सिंहके आहत होनेपर देवीने क्षुरप्र नामक अस्त्रके द्वारा निशुम्भकी उत्तम तलवार एवं अष्टचन्द्र (मणिमय चक्र विशेष) विभूषित चर्मफलकको काट डाला ॥ ११-१२ ॥

तलवार और ढालके कट जानेपर उस असुरने शक्ति अस्त्र चलाया । देवीने उसको सामने आते-न-

तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥ १३ ॥
कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः ।
आयान्तं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥ १४ ॥
आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति ।
सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥ १५ ॥

तां (शक्तिं) अपि चक्रेण द्विधा चक्रे ॥ १३ ॥
अथ (अनन्तरं) निशुम्भः दानवः कोपाध्मातः (क्रोधपरिपूरितः) (सन्) शूलं जग्राह, देवी आयान्तं तत् (शूलं) च अपि मुष्टिपातेन अचूर्णयत् ॥ १४ ॥
अथ सः (असुरः) अपि चण्डिकां प्रति गदां आविध्य (भ्रामयित्वा) चिक्षेप, सा (गदा) अपि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना (सती) भस्मत्वं आगता (प्राप्ता) ॥ १५ ॥

आते ही चक्रके द्वारा दो खण्ड कर डाला ॥ १३ ॥
तब क्रोधित होकर निशुम्भने शूलास्त्र फेंका, देवीने उसको भी मुष्टिके आघातसे विचूर्ण कर डाला, तब उस असुरने गदा को घुमाकर चण्डिकाके ऊपर फेंका, देवीने भी तत्क्षण त्रिशूलके द्वारा उस गदाको चूर्ण करके भस्म कर डाला ॥ १४-१५ ॥

ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् ।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ॥ १६ ॥
तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे ।
भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥ १७ ॥
स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ।

ततः देवी परशुहस्तं आयान्तं (आगच्छन्तं) तं दैत्यपुंगवं (दैत्यश्रेष्ठं) बाणौघैः (बाणसमूहैः) आहत्य भूतले अपातयत ॥ १६ ॥

भीमविक्रमे (भीषणपराक्रमे) तस्मिन् भ्रातरि निशुम्भे भूमौ निपतिते (सति) (शुम्भः) अतीव संक्रुद्धः (सन्) अम्बिकां हन्तुं प्रययौ (गतवान्) ॥ १७ ॥

तथा स रथस्थः अत्युच्चैः गृहीतपरमायुधैः अतुलैः

अनन्तर परशु हाथमें लेकर उस दैत्य-श्रेष्ठको आते देख देवीने शरसमूहके आघातद्वारा उसको पृथिवी-पर गिरा दिया ॥ १६ ॥

इस प्रकार भीषण पराक्रमशाली भ्राता निशुम्भके पृथिवीपर गिर जानेपर, शुम्भ अतीव क्रोधित होकर अम्बिकाको मारनेके लिये गया । रथपर सवार हो बड़े-बड़े आठों हाथोंमें नाना प्रकारके आयुध

भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ॥ १८ ॥
तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत् ।
ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुस्सहम् ॥ १९ ॥
पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च ।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥ २० ॥
ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः ।

अष्टाभिः भुजैः अशेषं (समस्तं) नभः (आकाशं) व्याप्य बभौ (शुशुभे) ॥ १८ ॥

देवी तं (शुम्भं) आयान्तं समालोक्य (दृष्ट्वा) शङ्खं अवादयत्, धनुषः अतीव दुःसहं ज्याशब्दं च अपि चकार ॥ १९ ॥

समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना निजघण्टास्वनेन (निजघण्टाध्वनिना) च ककुभः (दिशः) पूरयामास ॥ २० ॥

ततः सिंहः त्याजितेभमहामदैः महानादैः (महाशब्दैः)

ग्रहण करके समस्त आकाशमण्डलको परिव्याप्त करता हुआ सुशोभित होने लगा ॥ १७-१८ ॥

उस असुरको आते देख देवीने शङ्ख बजाया एवं धनुके ज्याका शब्द किया । और समस्त दैत्य-सेनाओंके तेजको नष्ट करनेवाली अपनी घण्टाध्वनिके द्वारा समस्त दिशाओंको गुञ्जायमान कर दिया ॥ १९-२० ॥

अनन्तर सिंहने भी मत्त हाथियोंके मदको दूर

पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ॥ २१ ॥
ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत् ।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥ २२ ॥
अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह ।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥ २३ ॥

गगनं (आकाशं) गां (पृथिवीं) तथा दश दिशः पूरयामास (पूरितवान्) ॥ २१ ॥

ततः काली गगनं समुत्पत्य कराभ्यां (हस्ताभ्यां) क्ष्मां (पृथिवीं) अताडयत्, तन्निनादेन ते प्राक्स्वनाः (पूर्वोक्तधनुर्ज्यासिंहघण्टाशब्दाः) तिरोहिताः (आच्छादिताः) ॥ २२ ॥

शिवदूती अशिवं (शत्रूणां अमङ्गलसूचकं) अट्टाट्टहासं ह चकार तैः शब्दैः असुराः त्रेसुः (भीतवन्तः), शुम्भः (च) परं कोपं ययौ (प्राप्तवान्) ॥ २३ ॥

करनेवाला महान् गर्जन करके आकाश, पृथ्वी एवं दशों दिशाओंको गुंजा दिया ॥ २१ ॥

तदनन्तर कालीने आकाशमें कूदकर हाथसे पृथिवीपर आघात किया, उसके शब्दसे पूर्वकृत धनु-ज्या आदि की ध्वनि तिरोहित हो गयी, शिवदूती शत्रुओंके अशुभसूचक अट्टाट्टहास करने लगीं, उनके अट्टहाससे असुरसेना भयभीत हो गयी जिससे शुम्भ बहुत क्रोधित हो उठा ॥ २२–२३ ॥

दुरात्मंस्तिष्ठतिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा ।
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥ २४ ॥
शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा ।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ॥ २५ ॥
सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम् ।

यदा अम्बिका "दुरात्मन्! तिष्ठ तिष्ठ" इति व्याजहार (उक्तवती), तदा आकाशसंस्थितैः देवैः जय इति अभिहितं (कथितं) ॥ २४ ॥

शुम्भेन आगत्य ज्वालातिभीषणा या शक्तिः मुक्ता (क्षिप्ता), वह्निकूटाभा सा (शक्तिः) आयान्ती (सती) महोल्कया (शक्तिविशेषेण) निरस्ता (नाशिता) ॥२५॥

शुम्भस्य सिंहनादेन लोकत्रयान्तरं व्याप्तं, हे अव-

जब देवी अम्बिका शुम्भसे बोलीं,—"रे दुरात्मन्! ठहर ठहर" तब आकाशमें स्थित देवताओंने जय-जयकार किया ॥ २४ ॥

अनन्तर शुम्भने आकर शक्तिअस्त्र फेंका, इसकी ज्वाला अतिभयानक थी, इस अस्त्रको वह्निराशिके समान आते हुए देख देवीने महोल्काशक्तिके द्वारा उसको निरस्त कर दिया ॥ २५ ॥

तब शुम्भके सिंहनादसे स्वर्ग-मर्त्य-पाताल परिव्याप्त हो गया, उसके भयानक प्रतिशब्दने इस शब्दको

निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते ! ॥ २६ ॥

नीपते ! घोरः (भयानकः) निर्घातनिःस्वनः (सिंह-नादध्वनिः) जितवान् ॥ २६ ॥

भी अभिभूत कर लिया ॥ २६ ॥

टीका—श्रीसप्तशती गीताके तीनों चरित्रोंमेंसे यह अन्तिम चरित्र अद्भुत रहस्योंसे पूर्ण है। जैसे वेदके मंत्रसमूह त्रिविध भावोंसे पूर्ण होते हैं, वैसे ही सप्त-शती गीता भी अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतरूपी त्रिविध भावोंसे पूर्ण है, जिसका दिग्दर्शन स्थान-स्थान-पर कराया गया है, परन्तु सब स्थलोंका त्रिविध अर्थ ऐसे छोटे ग्रन्थमें नहीं हो सकता है और न साधारण अधिकारी उसकी धारणा ही कर सकते हैं। पूर्ण शक्तिशाली मन्त्र होनेके कारण इससे सब कामनाओं-की सिद्धि होती है। सप्तशती गीताका प्रथम चरित्र तमोमयरूपका प्रकाशक होनेके कारण और तममें क्रिया नहीं होनेके कारण वहाँकी क्रिया भगवान् विष्णुसे हुई थी। दूसरे चरित्रमें शुद्धसत्त्वमें तमोगुणको परास्त करनेके निमित्त रजका सम्बन्ध स्थापनके लिये "गर्ज्ज गर्ज्ज क्षणं मूढ़ ! मधु यावत् पिवाम्यहम्" आदि अलौ-किक भावोंका समावेश कैसा किया गया है, सो भावुक-भक्तगण समझ सकेंगे। इस तीसरे चरित्रमें भगवतीकी निर्लिप्तताके साथ-ही-साथ क्रियाशीलता अति अलौ-

शुम्भमुक्ताञ्छरान् देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २७ ॥
ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम् ।
स तदाभिहतो भूमौ मूर्छितो निपपात ह ॥ २८ ॥

देवी शुम्भमुक्तान् शतशः सहस्रशः शरान् शुम्भः अथ तत्प्रहितान् (देवीप्रहितान्) शरान् उग्रैः (भीषणैः) स्वशरैः चिच्छेद ॥ २७ ॥

ततः सा चण्डिका क्रुद्धा (सती) शूलेन तं अभिजघान, सः (असुरः) तदा अभिहतः मूर्छितः (सन्) भूमौ निपपात ह ॥ २८ ॥

उस समय देवीके सैकड़ों-हजारों शरसमूहोंके द्वारा शुम्भनिक्षिप्त शरोंको छिन्न कर देनेपर शुम्भने भी देवी-द्वारा फेंके हुए शरोंको काट डाला ॥ २७ ॥

अनन्तर चण्डिकाने क्रुद्ध होकर शूलके द्वारा शुम्भ-पर प्रहार किया तब वह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २८ ॥

किक रीतिसे प्रकट हुई है; क्योंकि यह चरित्र सत्त्व-प्रधान चरित्र है। इस चरित्रमें पहले भगवती कालिका देवीका हिमालयमें स्थिर रहना और कौशिकी देवीका युद्ध करना, पुनः उनसे चामुण्डा काली देवीका एवं शिवदूतीका निकलना कैसा गंभीर विज्ञानका प्रकाशक है, सो पहले कहा गया है। राग, द्वेष और

ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केशरिणं तथा ॥ २६ ॥

ततः निशुम्भः चेतनां संप्राप्य आत्तकार्मुकः (गृहीत-धन्वा सन्) शरैः देवीं, कालीं तथा केशरिणं (सिंहं) आजघान ॥ २९ ॥

तब निशुम्भ सचेत हो धनु लेकर शरके द्वारा देवी, काली एवं उनके सिंहको आघात करने लगा ॥ २९ ॥

अभिनिवेश-जनित वासना-जाल एवं अस्वाभाविक संस्कारके नाश होनेपर भी अविद्या और अस्मिता रह जाती है। यह अविद्या और अस्मिता शुम्भ-निशुम्भका अध्यात्मस्वरूप है। अविद्या और अस्मिता इन दोनोंको ज्ञानजननी भगवती विद्याके अतिरिक्त और कोई नहीं मार सकता है। यही इस युद्ध-प्रकरणका गूढ़रहस्य है। शंका-समाधानके लिये यह समझना उचित है, कि जैसे ब्रह्मशक्ति महामायाकी विद्यारूपिणी शक्तिने इस देवासुर-संग्राममें नाना रूप धारण कर युद्ध किया था और अन्तमें निशुम्भ और शुम्भको मारकर इस युद्धका अन्त किया था, उसी प्रकार समझना उचित है, कि दैत्यराज शुम्भमें अविद्यारूपिणी शक्तिका पूर्ण विकाश था और उसके भ्राता निशुम्भमें अस्मिताशक्तिका विकाश था। इसी कारण इन दोनोंका अध्यात्म स्वरूप निर्णीत हुआ है ॥ ६–२६ ॥

पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः ।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥ ३० ॥
ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥ ३१ ॥
ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम् ।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसैन्यसमावृतः ॥ ३२ ॥

पुनश्च दनुजेश्वरः (दैत्याधिपतिः) दितिजः (निशुम्भः) बाहूनां अयुतं कृत्वा चक्रायुधेन चण्डिकां छादयामास ॥ ३० ॥

ततः दुर्गार्त्तिनाशिनी भगवती दुर्गा क्रुद्धा (सती) स्वशरैः तानि चक्राणि तान् सायकान् (बाणान्) च चिच्छेद ॥ ३१ ॥

ततः निशुम्भः वेगेन गदां आदाय (गृहीत्वा) दैत्य-सैन्यसमावृतः (सन्) चण्डिकां हन्तुं वै अभ्यधावत ॥३२॥

पुनः असुरराजने दशसहस्र बाहुओंका विस्तार करके चक्र अस्त्रसे चण्डिकाको आच्छन्न कर दिया ॥३०॥

तदनन्तर दुःखनाशिनी भगवती दुर्गाने अपने शरोंके द्वारा उस चक्र तथा शरसमूहोंको छिन्न कर डाला ॥ ३१ ॥

तब निशुम्भ दैत्यसेनाओंके साथ गदा ले अति-शीघ्रतासे चण्डिकाको मारनेके लिये दौड़ा ॥ ३२ ॥

तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका ।
खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥ ३३ ॥
शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम् ।
हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ॥ ३४ ॥

चण्डिका आपततः (धावतः) एव तस्य (असुरस्य) गदां शितधारेण खड्गेन आशु (शीघ्रं) चिच्छेद, सः (असुरः) च शूलं समाददे (गृहीतवान्) ॥ ३३ ॥

चण्डिका शूलहस्तं समायान्तं अमरार्दनं (देवविमर्दनं (निशुम्भं वेगाविद्धेन (वेगक्षिप्तेन) शूलेन हृदि विव्याध (विद्धवती) ॥ ३४ ॥

चण्डिकाने भी निशुम्भको आते हुए देख शाणित खड्गके द्वारा उसकी गदा छिन्न कर डाली, पुनः उस असुरने शूलास्त्र ग्रहण किया ॥ ३३ ॥

उस समय देवताओंके शत्रु निशुम्भको शूल लेकर आते देख चण्डिकाने तुरत शूल फेंककर उसके हृदयको विद्ध किया ॥ ३४ ॥

टीका—श्रीजगदम्बाका यह तीसरा लीलाचरित अधिदैव सम्बन्धसे जैसा एकाधारमें मधुर एवं भीषण है, उसी प्रकार इसका अध्यात्म-स्वरूप समाधिगम्य रहस्योंसे पूर्ण है। इस युद्धका अध्यात्म-स्वरूप वस्तुतः विद्या और अविद्याका युद्ध है। राग, द्वेष और अभिनिवेश के तत्त्वज्ञान एवं विवेकसे नष्ट हो जानेपर भी जबतक

भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निस्सृतोऽपरः ।
महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥ ३५ ॥

शूलेन भिन्नस्य तस्य (असुरस्य) हृदयात् अपरः (अन्यः) महाबलः महावीर्य्यः पुरुषः तिष्ठ इति वदन् निःसृतः (निर्गतः) ॥ ३५ ॥

उस समय निशुम्भका हृदय शूलसे विद्ध होनेपर उसके हृदयसे महापराक्रमी तथा अतिबलशाली एक दूसरा पुरुष "ठहरो" ऐसा कहता हुआ निकला ॥३५॥

अस्मिता और अविद्याका विलय नहीं होता, तबतक कदापि कृत-कृत्यता नहीं होती है। अविद्या एवं अस्मिता इन दोनोंका विद्याकी सहायतासे ही नाश करके जीवन्मुक्तगण कृतकृत्य होते हैं। अस्मिताका नाश पहले होता है, क्योंकि अविद्याका वह प्रथम कार्य्य तथा सहयोगी है। इस कारण शुम्भ ज्येष्ठ भ्राता और निशुम्भ लघु भ्राता है। अस्मिताका बल इतना अधिक है कि, तत्त्वज्ञानकी सहायतासे जब ज्ञानी व्यक्ति आत्मज्ञान प्राप्त करने लगता है तो, उस समय प्रथम "मैं ब्रह्म हूँ" ऐसा भान होता है। उस समय भी "मैं" रूपी अस्मिता अपना बल दिखाती है और विद्यादेवीके कार्य्यको रोकती है। उस समय विद्याके प्रभावसे "मैं ब्रह्म हूँ" इस अस्मिताके लोकातीत भावतकको नष्ट करना पड़ता है, तब स्वस्वरूपका उदय होने पाता है। निशुम्भके भीतर

तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः ।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ॥ ३६ ॥
ततः सिंहश्चखादोग्रदंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ।
असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥ ३७ ॥

ततः देवी स्वनवत् (शब्दवत्) प्रहस्य निष्क्रामतः तस्य (असुरस्य) शिरः (मस्तकं) खड्गेन चिच्छेद, ततः असौ भुवि अपतत् ॥ ३६ ॥

ततः सिंहः तान् असुरान् उग्रदंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् (कृत्वा) चखाद, तथा काली शिवदूती (च) अपरान् (असुरान्) तथा (चखाद) ॥ ३७ ॥

देवीने भी उपहासपूर्वक खड्गके द्वारा उसका शिर काट डाला, तब वह असुर भूमिपर गिर पड़ा ॥ ३६ ॥

तदनन्तर सिंह भयानक दन्तपंक्तियोंके द्वारा शिर एवं धरोंको चबाता हुआ असुरोंको भक्षण करने लगा एवं काली तथा शिवदूतीने अन्यान्य असुरोंको भक्षण कर लिया ॥ ३७ ॥

से उसके मरते समय एक दूसरे पुरुषका निकलना और देवीको रोकना यह उसी भावका प्रकाशक है। निशुम्भके साथ उस पुरुषतकको मार डालनेसे तब अस्मिताका नाश होता है और देवीके निशुम्भ-वधकी क्रिया सुसिद्ध होती है ॥ ३४–३६ ॥

कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः ।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ॥ ३८ ॥
माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे ।
वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ॥ ३९ ॥
खण्डं खण्डञ्च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः ।
वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे ॥ ४० ॥

केचित् महासुराः कौमारी-शक्ति-निर्भिन्नाः (सन्तः) नेशुः, ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेन (जलेन) अन्ये (असुराः) निराकृताः (सन्तः नेशुः) ॥ ३८ ॥

माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः अपरे (अन्ये) पेतुः (पतितवन्तः)। तथा वाराहीतुण्डघातेन चूर्णीकृताः केचित् (असुराः) भुवि (पेतुः) ॥ ३९ ॥

वैष्णव्या (शक्त्या) चक्रेण दानवाः खण्डं खण्डं च कृताः, तथा ऐन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन वज्रेण अपरे (खण्डं

तत्पश्चात् कुछ असुर कौमारीकी शक्तिके द्वारा घायल होकर भाग गये, अन्य कुछ असुरोंको ब्रह्माणीने मन्त्रपूत जलके द्वारा भगा दिया। एवं अन्य असुरगण माहेश्वरीके त्रिशूलद्वारा विदीर्ण होकर भूमिपर गिर पड़े, कितनेहीको वाराहीने तुण्डाघातसे विचूर्ण कर दिया। वैष्णवी शक्तिने भी चक्रद्वारा दैत्योंको खण्ड-खण्ड कर डाला, इन्द्रशक्तिने भी अन्यान्य

केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात् ।
भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपैः ॥ ४१ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

खण्डं कृताः) केचित् असुराः, विनेशुः (मृताः) केचित् (च) महाहवात् (महायुद्धात्) नष्टाः (पलायिताः) अपरे च कालीशिवदूतीमृगाधिपैः भक्षिताः ॥ ४०-४१ ॥

असुरोंको वज्रसे खण्ड-खण्ड कर दिया । इस प्रकार कितने ही असुर युद्धमें मारे गये, कितने ही युद्धक्षेत्रसे भाग गयें, अन्य कुछ काली शिवदूती एवं सिंहके द्वारा भक्षित हुये ॥ ३८-४१ ॥

देवीमाहात्म्यका निशुम्भवध नामक नवम
अध्याय समाप्त हुआ ।

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम् ।
हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ २ ॥
बलावलेपदुष्टे ! त्वं मा दुर्गे ! गर्वमावह ।
अन्यासां बलमाश्रित्य युध्यसे यातिमानिनी ॥ ३ ॥

ऋषिः उवाच,—प्राणसम्मितं (प्राणतुल्यं) भ्रातरं निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा बलं (सैन्यं) च एव हन्यमानं दृष्ट्वा शुम्भः क्रुद्धः (सन्) वचः अब्रवीत् ॥ १-२ ॥

हे बलावलेपदुष्टे ! (बलित्वाभिमानरूपदोषयुक्ते !) दुर्गे ! त्वं गर्व्वं मा आवह (कुरु) या (त्वं) अतिमानिनी (सती) अन्यासां (ब्रह्माण्यादीनां) बलम् आश्रित्य युध्यसे ॥ ३ ॥

देवी उवाच,—अत्र जगति अहम् एका एव, मम अपरा द्वितीया का ? हे दुष्ट ! एताः मद्विभूतयः मयि

ऋषि बोले,—प्राणके समान प्रिय अपने भ्राता निशुम्भको एवं समस्त सैन्योंको निहत देखकर शुम्भ क्रोधित हो बोला,—हे दुर्गे ! तुम बलका गर्व मत करो क्योंकि, तुम तो अन्यान्य दैवी शक्तियोंकी सहायतासे अभिमानिनी होकर युद्ध करती हो ॥ ३ ॥

देवी बोली,—रे दुष्ट ! इस जगत्में मेरे सिवा दूसरा

देव्युवाच ॥ ४ ॥

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥ ५ ॥

एव विशन्त्यः (प्रविशन्त्यः) (सन्ति) (इति) पश्य ॥४-५॥

कौन है, मैं एक ही हूँ, देख, ये मेरी विभूतियाँ अभी मुझमें प्रवेश करती हैं ॥ ४-५ ॥

टीका—ब्रह्मशक्तिकी चार अवस्थाओंका वर्णन पहले ही आ चुका है। वह शक्ति एक और अद्वितीय होनेपर भी सूक्ष्म और स्थूल शक्तिके अनेक भेद हैं। सूक्ष्म-जगद्-व्यापिनी सूक्ष्म शक्तिके प्रधानतः त्रिगुणके अनुसार तीन भेद होनेपर भी विभिन्न दैवपदोंकी क्रियाशक्तिके विचारसे उसके अनेक भेद हैं। वे ही सब दैवी शक्तियाँ इस युद्धमें प्रकट हुई थीं और अब उसी एक अद्वितीय शक्तिमें सब प्रवेश कर गयीं। वस्तुतः शुम्भ और देवीका युद्ध अविद्या और विद्याका युद्ध है। दोनोंका विलास जबतक व्यक्तावस्थामें रहता है, तब तक आसुरी सेना और देवीकी सेनाका प्राकट्य रहता है। उधर निशुम्भके मरते ही असुरोंकी विभूतियाँ परास्त और नष्ट हो गयीं एवं दैवी विभूतियाँ जो विभिन्न शक्तिरूपसे प्रकट हुई थीं, वे अन्तर्मुख-होती हुई देवीमें प्रवेश कर गयीं। इस गहन विषयको यों भी समझ सकते हैं, कि द्वितीय चरित्रका

ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम् ।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥ ६ ॥

ततः समस्ताः ब्रह्माणीप्रमुखाः (ब्रह्माणीप्रभृतयः) ताः देव्यः तस्याः देव्याः तनौ (शरीरे) लयं जग्मुः, तदा अम्बिका एका एव आसीत् ॥ ६ ॥

देवी उवाच,—अहं विभूत्या इह बहुभिः रूपैः यत्

देवीके ऐसा कहते ही ब्रह्माणीआदि समस्त शक्तियाँ उनके शरीरमें प्रवेश कर गयीं, तब अम्बिका अकेली विराजमान हुई ॥ ६ ॥

देवी बोली,—मेरी जिन विभूतियोंका विस्तार हुआ

देवासुर-संग्राम अपेक्षाकृत कम महत्त्व रखता है । यही कारण है कि उसमें जगदम्बाके श्वाससे अनेक देव योद्धा प्रकट हुए थे और उस समय सब देवपद-धारियोंकी शक्तियोंके प्रकट होनेकी आवश्यकता नहीं थी । परन्तु तीसरे चरित्रका यह देवासुर-संग्राम विशेष महत्त्वपूर्ण और आध्यात्मिकभावसे अन्तिम है इसी कारण इस युद्धमें अनेक बड़े-बड़े देवपदधारियोंकी शक्तियाँ रूप धारण कर आयी थीं । सर्वशक्तिमती महादेवीकी इच्छा मात्रासे ये सब प्रकट हुई थीं और उनकी इच्छामात्रसे ही उनमें विलीन होगयीं ॥ ६ ॥

देव्युवाच ॥ ७ ॥

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता ।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ॥ ८ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः ।
पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ॥ १० ॥
शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथा चास्त्रैः सुदारुणैः ।

आस्थिता, मया तत् संहृतं, आजौ (युद्धे) एका एव तिष्ठामि, (त्वं) स्थिरः भव ॥ ७-८ ॥

ऋषिः उवाच,—ततः देव्याः शुम्भस्य च उभयोः पश्यतां (युद्धं अवलोकयतां) सर्वदेवानां असुराणां च दारुणं (भयानकं) युद्धं प्रववृते ॥ ९-१० ॥

शरवर्षैः शितैः (शाणितैः) शस्त्रैः तथा च सुदारुणैः अस्त्रैः तयोः सर्वलोकभयंकरं भूयः युद्धं अभूत्

था, उन सबोंको मैंने समेट लिया है, अब मैं अकेली हूं, तुम स्थिर होकर युद्ध करो ॥ ७-८ ॥

ऋषि बोले,—अनन्तर देखनेवाले देवों और असुरोंके लिये भयप्रद देवी और शुम्भका युद्ध प्रारम्भ हुआ ॥९-१०॥

वे दोनों तीक्ष्ण भयंकर शस्त्रास्त्रकी सहायतासे पुनः भीषण युद्ध करने लगे, उससे स्वर्ग, मर्त्य,

तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयंकरम् ॥ ११ ॥
दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका ।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्त्तृभिः ॥ १२ ॥
मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी ।
बभञ्ज लीलयैवोग्रहुङ्कारोच्चारणादिभिः ॥ १३ ॥
ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः ।

(बभूव) ॥ ११ ॥

अथ (अनन्तरं) अम्बिका यानि दिव्यानि अस्त्राणि शतशः मुमुचे, दैत्येन्द्रः तानि (अस्त्राणि) तत्प्रतीघात-कर्त्तृभिः (तच्छेदनसमर्थैः (शरैः) बभञ्ज ॥ १२ ॥

तेन (असुरेण) मुक्तानि दिव्यानि अस्त्राणि च परमेश्वरी लीलया (अनायासेन) एव उग्रहुङ्कारोच्चारणा-दिभिः बभञ्ज ॥ १३ ॥

ततः सः असुरः शरशतैः (बाणशतैः) देवीं आच्छा-

-पाताल, सब लोक भयभीत हो गये ॥ ११ ॥

अम्बिकाने जिन दिव्यास्त्रोंको फेंका, दैत्येन्द्रने उन सबोंको उनके प्रतिघातकारी शस्त्रोंके द्वारा काट डाला ॥ १२ ॥

परमेश्वरी देवीने भी असुर-निक्षिप्त दिव्यास्त्रोंको हुङ्कारादिके द्वारा अनायास ही काट डाला ॥ १३ ॥

अनन्तर उस असुरने सैकड़ों शरोंकेद्वारा देवीको

१९

सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥ १४ ॥
छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे ।
चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥ १५ ॥
ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत् ।
अभ्यधावत तां देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥ १६ ॥
तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका ।

दयत, सा देवी अपि कुपिता (सती) इषुभिः (बाणैः) तत् धनुः च चिच्छेद ॥ १४ ॥

अथ (अनन्तरं) दैत्येन्द्रः धनुषि तथा छिन्ने (सति) शक्तिं आददे (गृहीतवान्), देवी चक्रेण अस्य करे स्थितां तां (शक्तिं) अपि चिच्छेद ॥ १५ ॥

ततः दैत्यानां अधिपेश्वरः (शुम्भः) खड्गं भानुमत् (दीप्तिमत्) शतचन्द्रं (फलकं) च उपादाय (गृहीत्वा) तां देवीं (प्रति) अभ्यधावत (धावितवान्) ॥ १६ ॥

चण्डिका आपततः (आगच्छतः) एवं तस्य (शुम्भस्य)

आच्छन्न कर दिया, तब देवीने भी क्रोधित होकर बाणों के द्वारा उसके धनुको काट दिया ॥ १४ ॥

धनुके छिन्न होनेपर दैत्यश्रेष्ठने शक्तिअस्त्र लिया, उसको भी उसके हाथमें ही चक्रके द्वारा देवीने काट डाला ॥ १५ ॥

तब दैत्यराज खड्ग (तलवार) एवं प्रभाशाली चर्म-फलक (ढाल) लेकर देवीकी ओर दौड़ा, तब चण्डिका-

धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥ १७ ॥
हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः ।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः ॥ १८ ॥
चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः ।
तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥ १९ ॥

खड्गं अर्ककरामलं चर्म च धनुर्मुक्तैः (धनुषा क्षिप्तैः) शितैः बाणैः आशु (शीघ्रं) चिच्छेद ॥ १७ ॥

सः दैत्यः हताश्वः छिन्नधन्वा, विसारथिः (सारथि-शून्यः) (सन्) अम्बिकानिधनोद्यतः (सन्) घोरं (भयङ्करं) मुद्गरं जग्राह (गृहीतवान्) ॥ १८ ॥

(देवी) आपततः (आगच्छतः) तस्य (असुरस्य) मुद्गरं निशितैः शरैः चिच्छेद, तथापि सः (असुरः) वेगवान् (सन्) मुष्टिं उद्यम्य तां (देवीं प्रति) अभ्य-धावत् ॥ १९ ॥

ने अतिशीघ्र धनुषसे शाणित बाण छोड़कर सूर्य-किरणके समान प्रभाविशिष्ट खड्ग एवं चर्मफलकको काट डाला ॥ १६-१७ ॥

तब अश्व, रथ, धनु एवं सारथिहीन होकर उस असुरने चण्डिकाको मारनेके लिये भयानक मुद्गर लिया ॥ १८ ॥

शाणित बाणोंद्वारा देवीके उस मुद्गरको काट डालनेपर वह असुर अतिशीघ्रतासे मुष्टि बांधकर

स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः ।
देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ॥ २० ॥
तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले ।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥ २१ ॥
उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः ।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥ २२ ॥

दत्यपुङ्गवः (दैत्यश्रेष्ठः) सः (असुरः) देव्याः हृदये मुष्टिं पातयामास, सा देवी तलेन उरसि (वक्षसि) तं च अपि अताडयत् ॥ २० ॥

सः दैत्यराजः तलप्रहाराभिहतः महीतले निपपात, तथा सहसा एव पुनः उत्थितः ॥ २१ ॥

(सः) देवीं प्रगृह्य उच्चैः (गृहीत्वा) उत्पत्य (ऊर्ध्वं आक्रम्य) च गगनं (आकाशं) आस्थितः, तत्र (गगने) अपि सा चण्डिका निराधारा (निराश्रया सती) तेन (असुरेण सह) युयुधे ॥ २२ ॥

चण्डिकाकी ओर दौड़ा एवं मुष्टिसे देवीके हृदयमें मारा, देवीने भी तलसे उस असुरकी छातीमें मारा, उस तलाघातसे वह दैत्यराज पृथिवीपर गिर पड़ा एवं तत्-क्षण पुनः उठ खड़ा हुआ ॥ १९-२१ ॥

अनन्तर देवीको उठाकर आकाशमें उड़ गया, वहाँ निराधार होकर भी देवी उसके साथ युद्ध करने लगीं ॥ २२ ॥

नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम्।
चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥ २३ ॥

तदा खे (आकाशे) प्रथमं दैत्यः चण्डिका च परस्परं सिद्धमुनिविस्मयकारकं नियुद्धं (बाहुयुद्धं) चक्रतुः ॥ २३ ॥

तब दोनों आकाशमें ही ठहरकर बाहुयुद्ध करने लगे जिसको देख सिद्ध एवं मुनिगण विस्मित होगये ॥२३॥

टीका—अविद्याका विलय केवल एकमात्र पराविद्याके प्रभावसे ही हो सकता है। ज्ञान-जननी विद्याके उदय होनेपर अज्ञान-प्रसविनी अविद्या प्रकाशके सम्मुख अन्धकारके समान लय हो जाती है। अविद्याको दूर करनेमें और कोई भी दैवीशक्ति कार्य्यकारिणी नहीं होती है। इस कारण सब दैवी विभूतियोंके महादेवीमें प्रवेश कर जानेपर देवी और शुम्भका यह अन्तिम युद्ध इस प्रकार प्रबलरूपसे हुआ तथा अन्तमें परास्त होकर शुम्भकी मृत्यु हुई। मृत्युसे पूर्व देवीको आकाशमें बलपूर्वक ले जाना और वहाँ युद्ध करना यह नास्तिकता-सूचक रहस्य है। सर्वव्यापक ब्रह्मसत्ताका अनुभव कराना विद्याका कार्य्य है, परन्तु सच्चिदानन्दमय ब्रह्मस्वरूपको अनुभव करते समय अविद्याके प्रभावसे सर्वव्यापक आकाशतत्त्वमें अटककर शून्यवादी होजाना, यह स्वस्वरूपके अनुभवमें सबसे बड़ा और अन्तिम

ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह ।
उत्पाट्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥ २४ ॥
स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ।
अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ॥ २५ ॥

ततः अम्बिका सुचिरं तेन सह (असुरेण सह) नियुद्धं (बाहुयुद्धं) कृत्वा उत्पाट्य भ्रामयामास धरणीतले चिक्षेप (च) ॥ २४ ॥

दुष्टात्मा सः (असुरः) क्षिप्तः (सन्) धरणीं प्राप्य वेगवान् (सन्) मुष्टिं उद्यम्य चण्डिकानिधनेच्छया अभ्यधावत ॥ २५ ॥

इस प्रकारसे बहुत देरतक बाहुयुद्ध करके अम्बिकाने उसको ऊपर घुमाकर जमीनपर फेंक दिया ॥ २४ ॥

जमीनपर गिरते ही फिर उठकर वह दुष्ट मुष्टि बाँध चण्डिकाको मारनेके लिये दौड़ा ॥ २५ ॥

विघ्न है । देवासुर-संग्रामके आकाशयुद्धका यही आध्यात्मिक रहस्य है। सच्चिदानन्दमय ब्रह्मभावका अनुभव तभी हो सकता है, जब विद्यादेवीकी सहायतासे अविद्यादेवीका विलय हो और तभी सर्वव्यापक आत्मसत्ताका उदय होता है। इस अन्तिम अनुभवमें भी अविद्याके द्वारा बाधा होनेकी सम्भावना है। इस समय अविद्याके प्रभावसे बुद्धि आकाशतत्त्वमें ही अटक जा सकती है और इस प्रकारसे आत्माके

तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् ।
जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ॥ २६ ॥
स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः ।
चालयन्सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ॥ २७ ॥

ततः देवी तं आयान्तं (आगच्छन्तं) सर्वदैत्य-जनेश्वरं शूलेन वक्षसि भित्त्वा जगत्यां (पृथिव्यां) पातयामास ॥ २६ ॥

सः (असुरः) देवीशूलाग्रविक्षतः गतासुः (मृतः) साब्धिद्वीपां (समुद्रद्वीपसहितां) सपर्वतां सकलां पृथ्वीं चालयन् उर्व्यां (पृथिव्यां) पपात ॥ २७ ॥

उसको प्रायः निकट आये हुये देखकर चण्डिकाने शूलसे उसका हृदय विदीर्ण कर पृथिवीपर गिरा दिया ॥ २६ ॥

देवीके शूलसे घायल होकर वह असुर प्राणहीन हो पृथिवीपर गिर पड़ा, उसके गिरनेसे सब पर्वत एवं सप्तद्वीप-सहित पृथिवी कांप उठी ॥ २७ ॥

स्वानुभवमें बाधा हो सकती है। ऐसी दशामें ज्ञान-जननी विद्याकी सहायतासे ही अविद्याके इस अन्तिम प्रभावका नाश हो सकता है और तभी स्वस्वरूपकी उपलब्धि हो सकती है। महादेवी और शुम्भके इस आकाश-युद्धका यही औपनिषदिक रहस्य है ॥ २२–२७ ॥

ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि ।
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः ॥ २८ ॥
उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः ।
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ॥ २९ ॥
ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः ।

ततः दुरात्मनि तस्मिन् (शुम्भे) हते (सति) अखिलं प्रसन्नं अभवत्, जगत् अतीव स्वास्थ्यं आप (प्राप) नभः च निर्मलं अभवत् ॥ २८ ॥

ये सोल्काः (उल्कापातसहिताः) उत्पातमेघाः प्राक् आसन्, तत्र (शुम्भे) पातिते (मारिते सति) ते शमं (शान्ति) ययुः (प्राप्तवन्तः) तथा सरितः (नद्यः) मार्गवाहिन्यः (पूर्वपथेन यथायोग्यं गामिन्यः) आसन्॥२९॥

ततः (अनन्तरं) तस्मिन् (शुम्भे) निहते (सति) सर्वे देवगणाः हर्षनिर्भरमानसाः (हर्षपूर्णमानसाः) बभूवुः, गन्धर्व्वाः ललितं (मनोहरं यथा तथा) जगुः

इस प्रकारसे उस दुरात्माके मारे जानेसे सब प्रसन्न हुए, सारा जगत् शान्त एवं विकार-रहित हुआ, आकाश निर्मल होगया, मेघ सब उल्का-रहित होकर अनिष्ट-सूचक भाव परित्यागपूर्वक शान्त होगये, नदियाँ पूर्ववत् यथास्थान प्रवाहित होने लगीं ॥ २८-२९ ॥

देवतागण अत्यन्त प्रसन्न हुये एवं गन्धर्वगण मधुर

बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः ॥ ३० ॥
अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ३१ ॥
ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्तदिग्जनितस्वनाः ॥ ३२ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शुम्भवधोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

(गीतवन्तः) ॥ ३० ॥

तथा एव अन्ये (गन्धर्व्वाः) अवादयन् अप्सरोगणाः च ननृतुः (नृत्यं चक्रुः) ॥ ३१ ॥

तथा वाताः (वायवः) पुण्याः (अनुकूलाः सन्तः) ववुः, दिवाकरः (सूर्य्यः) सुप्रभः (दीप्तिमान्) अभूत् अग्नयः च शान्ताः शान्तदिग्जनितस्वनाः (सन्तः) जज्वलुः ॥ ३२ ॥

संगीत गाने लगे। अन्यान्य गन्धर्वगण बजाने लगे, एवं अप्सराएँ नाचने लगीं, वायु अनुकूल होकर बहने लगी, सूर्य भगवान् मलीनता-रहित हो अपनी सुन्दर ज्योतिका विस्तार करने लगे एवं अग्निदेव शान्तिसे शान्त दिग्मण्डलको शब्दायित करके प्रज्वलित होने लगे ॥३०-३२॥

देवीमाहात्म्यका शुम्भवध नामक दशम
अध्याय समाप्त हुआ।

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥
देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे
सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभा-
द्विकाशिवक्त्राब्जविकासिताशाः ॥ २ ॥

ऋषिः उवाच—देव्या तत्र (तस्मिन्) महासुरेन्द्रे (शुम्भे) हते (सति) वह्निपुरोगमाः सेन्द्राः सुराः इष्टलाभात् (अभीष्टलाभात्) विकाशिवक्त्राब्जविकासिताशाः (सन्तः) तां कात्यायनीं (देवीं) तुष्टुवुः (स्तुतवन्तः) ॥ १–२ ॥

ऋषिने कहा—देवीके द्वारा असुर-राज शुम्भके मारेजानेपर इन्द्रसहित सब देवतागण अग्निको आगे कर देवी कात्यायनीकी स्तुति करने लगे, उस समय अभीष्ट-लाभ कर पुनः राज्यादि-प्राप्तिकी आशासे उनका मुखकमल प्रफुल्लित था ॥ १–२ ॥

टीका—देवताओंमें भी चारों वर्ण हैं। अग्नि ब्राह्मण वर्णके देवता हैं। अग्निकी ही सहायतासे देवतागण स्थूलराज्यसे यज्ञभागादि प्राप्त करते हैं। इसी कारण उपासना-कार्यमें अग्निको अग्रवर्त्ती कर देवताओंकी स्तुति करना युक्तियुक्त है ॥ २ ॥

देवि ! प्रपन्नार्तिहरे ! प्रसीद,
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि ! पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि! चराचरस्य ॥ ३ ॥
आधारभूता जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ।

देवि ! प्रपन्नार्त्तिहरे ! (शरणागतपीडानाशिनि !) प्रसीद (प्रसन्ना भव), हे मातः ! अखिलस्य जगतः (विषये) प्रसीद, हे विश्वेश्वरि ! प्रसीद, देवि ! त्वं चराचरस्य ईश्वरी, (अतः) विश्वं पाहि (रक्ष) ॥ ३ ॥

(त्वं) यतः महीस्वरूपेण (पृथिवीरूपेण) स्थिता असि, (अतः) एका त्वं जगतः आधारभूता (आश्रयभूता) हे अलङ्घ्यवीर्य्ये ! अपां (जलानां) स्वरूपस्थितया

(देवतागण बोले)—हे देवि ! शरणागतका दुःख विनाश करनेवाली ! तुम प्रसन्न हो। हे मातः ! आप सारे जगत्पर प्रसन्न हों, हे विश्वेश्वरि ! तुम चराचर जगत्की अधीश्वरी हो, तुम प्रसन्न हो एवं जगत्की रक्षा करो ॥ ३ ॥

तुम्हीं पृथिवीरूपसे अवस्थान करती हो, इसलिये एकमात्र तुम ही जगत्की आधारभूता हो, पुनः तुम्ह

अपां स्वरूपस्थितया त्वयैत-
दाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥ ४ ॥
त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
सम्मोहितं देवि समस्तमेत-
त्त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥ ५ ॥

त्वया एतत् कृत्स्नं (समस्तं जगत्) आप्यायते (आप्यायितं क्रियते) ॥ ४ ॥

त्वं अनन्तवीर्य्या वैष्णवी शक्तिः विश्वस्य बीजं परमा माया असि, हे देवि ! एतत् समस्तं (त्वया) सम्मोहितं, त्वं वै प्रसन्ना (सती) भुवि मुक्तिहेतुः (असि) ॥ ५ ॥

जलरूपसे अवस्थान करके अखिल जगत्को कृतार्थ करती हो, तुम्हारी शक्तिको कोई अतिक्रम नहीं कर सकता है ॥ ४ ॥

तुम असीम शक्तिशालिनी वैष्णवी शक्ति हो, तुम जगत्की बीजभूता हो, तुम्हींने मायारूपसे समस्त जगत्को मोहित कर रक्खा है, तुम्हारी प्रसन्नता ही मुक्तिका कारण है ॥ ५ ॥

विद्याः समस्तास्तव देवि ! भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्-
का ते स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः ॥ ६ ॥

हे देवि ! समस्ता विद्याः तव भेदाः, जगत्सु समस्ताः स्त्रियः तव सकलाः (अंशभूताः), अम्बया (जननी-रूपया) एकया त्वया एतत् पूरितं (व्याप्तं) ते (तव) स्तुतिः का, (तव स्तुतिः न कापीत्यर्थः) (यतः) स्तव्यपरा-परोक्तिः (स्तुतिः इत्यर्थः) ॥ ६ ॥

सब प्रकारकी विद्याएँ तुम्हारी ही भेद हैं, जगत्की सारी स्त्रियाँ तुम्हारी ही रूप हैं। हे अम्बे ! एकमात्र तुम्हींने सारे जगत्को परिव्याप्त कर रक्खा है, तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है ? तुमको श्रेष्ठ कैसे कहा जाय, क्योंकि तुम एक अद्वितीय हो, किसीके साथ तुम्हारी तुलना नहीं हो सकती है, तुम स्तुतिसे अतीत हो ॥ ६ ॥

टीका—इस जगत्में जो कुछ सीखने और सिखाने की वस्तुएँ हैं, वे सब इस स्थानपर 'विद्या' शब्दसे अभिहित हुई हैं। शास्त्रोंमें जितनी विद्याओं और कलाओंका वर्णन है, जितनी दैवी विद्याएँ हैं, जितनी आसुरी विद्याएँ हैं, जितने सायन्स अर्थात् पदार्थविद्याएँ हैं, जितनी शिल्पकला आदि विद्याएँ हैं, वे सभी 'विद्या'

सर्वभूता यदा देवी भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥ ७ ॥
सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदे ! देवि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥

(या) देवी सर्वभूता (सर्वस्वरूपा) (तथा) भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी, (तदा) त्वं स्तुता (स्तोतुमारब्धा सती) स्तुतये (स्तुत्यर्थं) काः परमोक्तयः वा भवन्तु (न का अपि उक्तयः भवन्तीत्यर्थः) ॥ ७ ॥

बुद्धिरूपेण सर्वस्य जनस्य हृदि संस्थिते ! स्वर्गापवर्गदे ! देवि ! नारायणि ! ते (तुभ्यं) नमः अस्तु ॥८॥

तुम सर्वस्वरूपा हो, तुम भुक्ति एवं मुक्ति-प्रदानमें समर्थ हो तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है, हमारे पास ऐसी क्या शब्द-सम्पत्ति है, जिससे तुम्हारी स्तुति कर सकें ? हे नारायणि ! तुम सबके हृदयमें बुद्धिरूपसे विराजमान हो। हे देवि ! स्वर्गापवर्गदे ! (धमरूपिणी होनेसे स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाली !) तुमको प्रणाम है ॥८॥

शब्द-वाच्य हैं। संसार-प्रपंचको स्थायी रखनेका कारण स्त्री है। यावत् शक्तियोंके आधार होनेसे उसको विभूति मानकर ऐसा कहा गया है ॥ ६ ॥

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि ! ।
विश्वस्योपरतौ शक्ते ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये ! शिवे ! सर्वार्थसाधिके ! ।
शरण्ये ! त्र्यम्बके गौरि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥१०॥

कलाकाष्ठादिरूपेण (अष्टादशनिमेषात्मकः कालः काष्ठा, त्रिंशत्काष्ठात्मकः कालः कला, तदादिरूपेण) परिणामप्रदायिनि ! विश्वस्य उपरतौ (नाशे) शक्ते ! (निपुणे) नारायणि ! ते (तुभ्यं) नमः अस्तु ॥ ९ ॥

सर्वमंगलमाङ्गल्ये ! (सर्वेषां मङ्गलानां मांगल्ये मङ्गल-स्वरूपे!) शिवे! सर्वार्थसाधिके ! शरण्ये ! (रक्षयित्रि!) त्र्यम्बके ! (त्रिनयनि !) गौरि ! नारायणि ! ते (तुभ्यं) नमः अस्तु ॥ १० ॥

(कालरूपिणी होनेसे) कला-काष्ठादिरूपसे (अठारह निमेषमें जितना समय लगता है, उसको काष्ठा कहते हैं और तीस काष्ठाकी एक कला होती है।) आप जगत्का परिणाम कराती हो, तुम्हारेद्वारा ही जगत् प्रतिमुहूर्त्त परिणामको प्राप्त करता रहता है। तुम जगत्के नाशकार्यमें निपुण हो हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ ९ ॥

तुम सब मङ्गलोंकी मूलभूता हो, तुम कल्याण-रूपिणी हो। तुम सब प्रकारकी सिद्धि-प्रदान करनेमें समर्थ हो। हे शरण्ये ! त्रिनयनि ! गौरि ! नारायणि ! आपको प्रणाम है ॥ १० ॥

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते ! सनातनि ! ।
गुणाश्रये ! गुणमये ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥११॥
शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे ! ।
सर्वस्यार्तिहरे ! देवि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥१२॥
हंसयुक्तविमानस्थे ! ब्रह्माणीरूपधारिणि ! ।

सृष्टि-स्थिति-विनाशानां शक्तिभूते ! (शक्तिस्वरूपे !) सनातनि ! (नित्ये !) गुणाश्रये ! (सत्वरजस्तमसां गुणानां आश्रयभूते !) गुणमये ! नारायणि ! ते नमः अस्तु ॥ ११ ॥

शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे ! सर्वस्य आर्त्ति-हरे ! देवि ! नारायणि ! ते नमः अस्तु ॥ १२ ॥

हंसयुक्तविमानस्थे ! ब्रह्माणीरूपधारिणि ! कौशा-

हे नित्ये ! तुम सृष्टि-स्थिति-प्रलय-विधायिनी शक्ति हो, तुम गुणोंको आश्रयभूता हो पुनः गुणमयी भी हो। हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ ११ ॥

हे देवि ! हे नारायणि ! तुम शरणागतकी दीनतासे रक्षा करती हो, तुम सबका दुःख नाश करनेमें समर्थ हो, तुमको प्रणाम है ॥ १२ ॥

तुम्हीं ब्रह्माणीरूपसे हंसयानपर आरोहण करती हो और कुशके द्वारा अभिमन्त्रित जल छिड़कती हो।

कौशाम्भः क्षरिके ! देवि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥१३॥
त्रिशूलचन्द्राहिधरे ! महावृषभवाहिनि ! ।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥
मयूरकुक्कुटवृते ! महाशक्तिधरेऽनघे ! ।
कौमारीरूपसंस्थाने ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥

म्भःक्षरिके ! (कुशाभिमन्त्रितजलक्षरिके !) देवि ! नारायणि ! ते नमः अस्तु ॥ १३ ॥

माहेश्वरीस्वरूपेण त्रिशूलचन्द्राहिधरे ! त्रिशूल-चन्द्रसर्पधारिणि) महावृषभवाहिनि ! नारायणि ! ते नमः अस्तु ॥ १४ ॥

मयूरकुक्कुटवृते ! महाशक्तिधरे ! अनघे ! (मनोरमे !) कौमारीरूपसंस्थाने ! नारायणि ! ते नमः अस्तु ॥ १५ ॥

हे देवि ! नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ १३ ॥

तुम्हींने माहेश्वरीरूपसे त्रिशूल, अर्द्धचन्द्र एवं सर्पवलय धारण किया है। हे महावृषभवाहिनि! देवि ! तुमको प्रणाम है ॥ १४ ॥

तुम्हीं मयूर-कुक्कुटोंसे परिवेष्टिता महाशक्तिधारिणी कौमारी कार्त्तिकेय शक्तिरूपसे अवस्थान करती हो। हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ १५ ॥

शंखचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे ! ।
प्रसीद वैष्णवीरूपे ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥
गृहीतोग्रमहाचक्रे ! दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ! ।
वाराहरूपिणि ! शिवे ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥१७॥
नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान्कृतोद्यमे ! ।
त्रैलोक्यत्राणसहिते ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥१८॥

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे ! वैष्णवीरूपे ! नारायणि ! (त्वं) प्रसीद, ते नमः अस्तु ॥ १६ ॥

गृहीतोग्रमहाचक्रे ! दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे (दंष्ट्रया उद्धृता वसुन्धरा पृथिवी यया सा तथाभूते !) वाराहरूपिणि ! शिवे ! नारायणि ! ते नमः अस्तु ॥ १७ ॥

उग्रेण नृसिंहरूपेण दैत्यान् हन्तुं कृतोद्यमे ! त्रैलोक्यत्राणसहिते ! नारायणि ! ते नमः अस्तु ॥ १८ ॥

तुम शङ्ख, चक्र, गदा और शार्ङ्गरूप दिव्य आयुधों को धारण करनेवाली वैष्णवी शक्ति हो तुम प्रसन्न हो, तुमको प्रणाम है ॥ १६ ॥

तुमने वाराहरूपसे उग्रमहाचक्र धारण किया है, तुमने दांतोंसे पृथिवीका उद्धार किया है, हे वाराहरूपधारिणि ! हे शिवे ! नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥१७॥

तुम भयानक नृसिंहरूप धारण कर दैत्योंके विनाश करनेमें तत्पर हुई थी, तुम त्रिलोककी रक्षा करनेवाली हो, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ १८ ॥

किरीटिनि ! महावज्रे ! सहस्रनयनोज्ज्वले ! ।
वृत्रप्राणहरे ! चैन्द्रि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥१९॥
शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले ! ।
घोररूपे ! महारावे ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥२०॥
दंष्ट्राकरालवदने ! शिरोमालाविभूषणे ! ।

किरीटिनि ! (किरीटयुक्ते !) महावज्रे ! सहस्र-नयनोज्ज्वले ! वृत्रप्राणहरे ! (वृत्रासुरप्राणनाशिनि) ऐन्द्रि ! च नारायणि ! ते नमः अस्तु ॥ १९ ॥

शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले ! घोररूपे ! महा-रावे ! (महाशब्दकारिणि ! नारायणि ! ते नमः अस्तु ॥ २० ॥

दंष्ट्राकरालवदने ! (दशनभीषणमुखि !) शिरोमाला-

तुम किरीटधारिणी हो, तुम महावज्रको धारण करनेवाली हो, तुम सहस्रनेत्रवाली हो, हे ऐन्द्रि! तुमने वृत्रासुरको मारा था, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ १९ ॥

तुमने शिवदूतीरूपसे दैत्योंकी बृहत् सेनाओंका विनाश किया है, तुम भीषणरूपिणी हो, महाशब्द-कारिणी हो, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ २० ॥

हे चामुण्डे ! तुम्हारा मुखमण्डल दन्तपंक्तियोंद्वारा अतिभयानक प्रतीत होता है, तुमने नर-मुण्ड-माल

चामुण्डे ! मुण्डमथने ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥२१॥
लक्ष्मि ! लज्जे ! महाविद्ये ! श्रद्धे ! पुष्टि ! स्वधे ! ध्रुवे ! ।
महारात्रि ! महामाये ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥२२॥
मेधे ! सरस्वति ! वरे ! भूति ! बाभ्रवि ! तामसि ! ।

विभूषणे ! (मुण्डमालाविभूषणे) चामुण्डे ! मुण्डमथने (मुण्डासुरनाशिनि !) नारायणि ! ते नमः अस्तु ॥२१॥

हे लक्ष्मि ! लज्जे ! महाविद्ये ! श्रद्धे ! पुष्टि ! स्वधे ! ध्रुवे ! (नित्ये !) महारात्रि ! (प्रलयरात्रिरूपे !) महामाये ! नारायणि ! ते नमः अस्तु ॥ २२ ॥

मेधे ! (मेधास्वरूपे !) सरस्वति ! वरे ! (श्रेष्ठे !) भूति ! (अणिमाद्यैश्वर्यस्वरूपे !) बाभ्रवि ! (शिवानि !)

धारण किया है, हे मुण्डासुरनाशिनि ! नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ २१ ॥

तुम्हीं श्रीरूपिणी हो, तुम्हीं लज्जारूपिणी हो, तुम स्वरूपप्रकाशिनी महाविद्या हो, तुम्हीं श्रद्धा, पुष्टि एवं स्वधारूपिणी हो, तुम प्रलयरात्रि हो, हे महामाये ! हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ २२ ॥

तुम मेधारूपिणी हो, तुम्हीं सरस्वती हो, तुम सर्वोत्कृष्टा हो, ऐश्वर्य्यरूपिणी हो, तुम कल्याणरूपिणी हो, पुनः तुम्हीं संहाररूपिणी हो, तुम शासन करनेवाली

नियते ! त्वं प्रसीदेशे ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥२३॥
सर्वस्वरूपे ! सर्वेशे ! सर्वशक्तिसमन्विते ! ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि ! दुर्गे ! देवि ! नमोऽस्तु ते ॥२४॥
एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि ! नमोऽस्तु ते ॥२५॥

तामसि ! (संहाररूपे !) नियते ! नारायणि ! ईशे ! (ईश्वरि !) त्वं प्रसीद, ते नमः अस्तु ॥ २३ ॥

सर्वस्वरूपे ! सर्वेशे ! (सर्वेश्वरि !) सर्वशक्तिसमन्विते ! दुर्गे ! देवि ! भयेभ्यः नः (अस्मान्) त्राहि (रक्ष) देवि ! ते नमः अस्तु ॥ २४ ॥

लोचनत्रयभूषितं सौम्यं (मनोज्ञं) एतत् ते (तव) वदनं (मुखं) सर्वभीतिभ्यः नः (अस्मान्) पातु (रक्षतु) हे कात्यायनि ! ते नमः अस्तु ॥ २५ ॥

नियमनशीला हो, हे ईश्वरि ! तुम प्रसन्न हो, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ २३ ॥

तुम जगत्‌रूपिणी हो, पुनः सबकी ईश्वरी हो, सारी शक्तियां, तुम्हारी शक्तियां हैं, हे देवि ! दुर्गे ! भयसे हमलोगोंकी रक्षा करो, हे देवि ! तुमको प्रणाम है ॥२४॥

तीन नेत्रोंसे विभूषित अतिरमणीय तुम्हारा मुख मण्डल समस्त भयोंसे हमारी रक्षा करे, हे कात्यायनि ! तुमको प्रणाम है ॥ २५ ॥

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि ! नमोऽस्तु ते ॥२६॥
हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि ! पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥ २७ ॥
असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।

ज्वालाकरालं (शिखाभीषणं) अत्युग्रं (अतिभयानकं) अशेषासुरसूदनं (समस्तदैत्यविनाशनं) त्रिशूलं भीतेः (भयात्) नः पातु, भद्रकालि ! ते नमः अस्तु ॥२६॥

हे देवि ! या स्वनेन (शब्देन) जगत् आपूर्य्य (परिव्याप्य) दैत्यतेजांसि हिनस्ति (नाशयति) सा घण्टा अनः (माता) सुतान् (पुत्रान्) इव नः पापेभ्यः पातु (रक्षतु) ॥ २७ ॥

असुरासृग्वसापङ्कचर्चितः (असुराणां असृक् रक्तं

तुमने जिस त्रिशूलके द्वारा समस्त असुर-कुलका संहार किया है, उस भयानक ज्वालाविशिष्ट एवं अतितीक्ष्ण त्रिशूलद्वारा हमलोगोंकी भयसे रक्षा करो, हे भद्रकालि ! तुमको प्रणाम है ॥ २६ ॥

जिस घंटाने ध्वनिके द्वारा जगत्को परिव्याप्त कर दैत्योंके तेजका विनाश किया है, माता जिस प्रकार पुत्रोंकी रक्षा करती है, वह उसी प्रकार पापोंसे हमलोगोंकी रक्षा करे ॥ २७ ॥

असुरोंके रक्त एवं मेदरूपी पंकसे चर्चित तुम्हारे

शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके ! त्वां नता वयम् ॥२८॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा,
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां,
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥ २९ ॥

वसा मेदः, ते एव पंकचर्चितः व्याप्तः) करोज्ज्वलः (तव करेण उज्ज्वलः) ते (तव) खड्गः शुभाय भवतु, हे चण्डिके ! त्वां वयं नताः (प्रणताः) भवामः ॥ २८ ॥

त्वं तुष्टा (सती) अशेषान् रोगान् अपहंसि, रुष्टा (सती) सकलान् अभीष्टान् कामान् (अपहंसि), त्वां आश्रितानां नराणां न विपत् (भवति) त्वां आश्रिताः (जनाः) (अन्येषां) आश्रयतां प्रयान्ति (प्राप्नुवन्ति) ॥२९॥

हस्तकमलमें विराजमान खड्ग हमारा कल्याण करे । हे चण्डिके ! हम अतिप्रणतभावसे तुमको प्रणाम करते हैं ॥ २८ ॥

तुम प्रसन्न होकर सब प्रकारके रोगोंका नाश करती हो, एवं अप्रसन्न होनेसे सब अभीष्टोंका नाश करती हो । जो तुम्हारे आश्रित होते हैं, उनको किसी प्रकारकी विपत्तिकी सम्भावना नहीं होती, एवं वे स्वयं सबका आश्रयस्थल बन जाते हैं ॥ २९ ॥

एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य,
धर्मद्विषां देवि ! महासुराणाम् ।
रूपैरनेकैर्बहुधात्ममूर्त्तिं,
कृत्वाम्बिके ! तत्प्रकरोति कान्या ॥ ३० ॥
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे-
ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ।

हे देवि ! अम्बिके ! त्वया अद्य अनेकैः रूपैः बहुधा आत्ममूर्त्तिं कृत्वा धर्मद्विषां महासुराणां यत् एतत् कदनं (विनाशनं) कृतं, अन्या (त्वद्भिन्ना) का तत् प्रकरोति ॥ ३० ॥

विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेषु (विवेकवर्द्धकेषु) आद्येषु वाक्येषु, अतिमहान्धकारे ममत्वगर्त्ते (च)

हे देवि ! अम्बिके ! नानारूपसे आविर्भूता होकर यह जो तुमने आज असुरोंका विनाश किया है, सो तुम्हारे सिवाय और कौन कर सकता है ॥ ३० ॥

सब विद्याओं, सब शास्त्रों एवं विवेक-उत्पादक आदि वाक्यरूपी वेद-वाक्योंका एकमात्र तुम्हीं कारणभूता हो। पुनः तुम्हीं इस अन्धकारमय ममताके गड्ढेमें

ममत्वगर्त्तेऽतिमहान्धकारे,
विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥ ३१ ॥
रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा,
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये,
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥ ३२ ॥

त्वदन्या का एतत् विश्वं अतीव विभ्रामयति (न कापीत्यर्थः) ॥ ३१ ॥

यत्र रक्षांसि उग्रविषाः (तीक्ष्णविषाः) नागाः (सर्पाः), यत्र अरयः (शत्रवः), यत्र दस्युबलानि, यत्र दावानलः (दावाग्निः), तथा अब्धिमध्ये (समुद्रमध्ये) तत्र स्थिता (सती) त्वं विश्वं परिपासि (रक्षसि) ॥३२॥

जगत्को बार-बार भ्रमण कराती हो ॥ ३१ ॥

जहाँपर राक्षसगण, तीक्ष्ण विषवाले विषधरगण, शत्रुगण, दस्यु-सैन्य (डाकुओंकी सेना), एवं दावानल (वनकी अग्नि) से प्राणियोंको क्लेश पहुँचता है, वहाँ तुम्हीं एकमात्र सहायिका बन जगत्की रक्षा करती हो । पुनः समुद्रमें भी सबकी तुम्हीं रक्षा करती हो ॥ ३२ ॥

टीका—जिस प्रकार अन्तर्जगत्में देवता और असुर इस प्रकारसे दो प्रकारकी सृष्टिकी प्रधानता है, उसी

विश्वेश्वरी त्वं परिपासि विश्वं,
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति,
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥ ३३ ॥

त्वं विश्वेश्वरी (अतः) विश्वं परिपासि (रक्षसि), विश्वात्मिका इति (हेतोः) विश्वं धारयसि, ये त्वयि भक्तिनम्राः, (ते) विश्वेशवन्द्या (विश्वेशानां ब्रह्मादीनां अपि वन्द्याः (स्तुत्याः) भवन्ति, भवती विश्वाश्रया (सर्वोपास्या) ॥ ३३ ॥

तुम्हीं जगदीश्वरी हो, तुम्हीं जगत्का पालन करती हो, पुनः तुम्हीं विश्वात्मिका रूपसे विश्वको धारण करती हो। जो तुम्हारा यथार्थ भक्त होता है, वह ब्रह्मादिकोंका भी वन्दनीय होता है। तुम सबकी आश्रयभूता हो ॥ ३३ ॥

प्रकार मनुष्यलोकमें तीन प्रकारकी सृष्टिका वर्णन शास्त्रोंमें पाया जाता है। परोपकारमें निरत मनुष्य देव-श्रेणी, इन्द्रिय-सेवामें निरत मनुष्य असुरश्रेणी और बिना कारण दूसरोंको दुःख पहुँचानेमें जिनकी रुचि हो, वे राक्षसश्रेणीके कहे जाते हैं ॥ ३२ ॥

देवि ! प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥ ३४ ॥
प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि ! विश्वार्त्तिहारिणि ! ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये ! लोकानां वरदा भव ॥ ३५ ॥

देवि ! प्रसीद, असुरवधात् अधुना सद्यः एव यथा (तथा) नित्यं अरिभीतेः (शत्रुभयात्) नः (अस्मान्) परिपालय, सर्वजगतां पापानि प्रशमं आशु नय, उत्पात-पाकजनितान् च महोपसर्गान् (दुर्भिक्षमरणादिस्व-रूपान्) शमं नय ॥ ३४ ॥

हे विश्वार्त्तिहारिणि ! ईड्ये ! (स्तुत्ये !) देवि ! त्वं प्रसीद, त्रैलोक्यवासिनां प्रणतानां लोकानां (सम्बन्धे) वरदा (वरदात्री) भव ॥ ३५ ॥

हे देवि ! इस समय जिस प्रकार तुमने शत्रुओंका विनाश करके जगत्की रक्षा की है, इसी प्रकार प्रसन्न होकर हम लोगोंकी शत्रुभयसे सर्वदा रक्षा करो। जगत् की सारी बाधाएँ एवं उल्कापातादि-जनित महाउपसर्गों (दुर्भिक्ष महामारिभय आदि) का नाश करो ॥ ३४ ॥

हे देवि ! तुम जगत्के दुःखका नाश करनेवाली हो, शरणागतपर प्रसन्न हो, त्रिलोकवासी सभी तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम सबकी वरदात्री हो ॥३५॥

देव्युवाच ॥ ३६ ॥

वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥ ३७ ॥

देवी उवाच—हे सुरगणाः ! अहं वरदा (वरदात्री), यं वरं मनसा इच्छथ, जगतां उपकारकं तं (वरं) वृणुध्वं, अहं प्रयच्छामि (ददामि) ॥ ३६-३७ ॥

देवी बोली—हे देवतागण ! मैं वर दूँगी, तुम लोग जिस वरकी इच्छा हो, उसकी प्रार्थना करो, जगत् कल्याणके लिये मैं वही प्रदान करूँगी ॥ ३६–३७ ॥

टीका—अबतक देवतागण केवल अपने सूक्ष्मलोक की बाधाओंको दूर करनेमें ही व्यग्रचित्त थे। सूक्ष्म दैवराज्यकी बाधा दूर होनेपर उन्होंने ऊर्ध्व अधः और मध्यरूपी त्रिलोककी बाधा दूर करनेके विचारसे श्री जगदम्बाकी स्तुति की थी। इससे पूर्व जो कुछ लीला का वर्णन है, सो ऊर्द्ध्व दैवराज्यकी अधिदैव लीलाका ही वर्णन समझनेयोग्य है। पूर्वकथित सब युद्ध सूक्ष्म देवलोकमें ही हुए थे। आगे जिन लीलाओंका वर्णन आवेगा, उसका मध्यलोकरूपी मृत्युलोकसे ही सम्बन्ध समझा जाय। इस स्थलपर जिज्ञासुओंको यह शंका हो सकती है कि, पूर्वकथित सब चरित्र देवलोकके चरित्र हैं, तो पुनः पृथ्वीलोकके अनेक तीर्थस्थानोंमें

देवा ऊचुः ॥ ३८ ॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि!।

देवाः ऊचुः—हे अखिलेश्वरि! त्रैलोक्यस्य सर्वाबाधा-

देवतागण बोले,—हे सर्वेश्वरि! तुमने इस समय

देवासुर-संग्रामोंके सम्बन्धके नाम कैसे पाये जाते हैं? इस श्रेणीकी शंकाओंका समाधान यह है, कि अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूततत्त्व इन तीनोंका नित्य अस्तित्व रहनेके कारण और तीनोंका परस्पर सम्बन्ध रहनेके कारण दैवराज्यके साथ मृत्युलोकके तीर्थोंका सम्बन्ध है। जैसे कि गंगानदीका प्रवाह ऊपरके सब देव-लोकोंमें प्रवाहित है और भारतद्वीपमें भी प्रवाहित है। हिमालय पर्वतका सम्बन्ध और पुष्कर आदि क्षेत्रों-का सम्बन्ध देवलोकमें भी है। उसी प्रकार एक तीर्थका सम्बन्ध अनेक तीर्थोंके साथ मिलता है। यथा, काशीमें सब तीर्थोंकी प्रतिकृति मिलती है। जैसे कि केदारेश्वर, मानसरोवर आदि तीर्थ काशीमें भी हैं। इसी प्रकार सूक्ष्मराज्यके अधिदैव पीठोंका सम्बन्ध मृत्युलोकके भी विशेष-विशेष तीर्थोंमें पाया जाता है। जिस प्रकार उपासनापीठके अनेक भेद हैं, उसी प्रकार तीर्थ भी एक प्रकारके पीठ हैं और उनके भेद भी अनेक हैं। प्राणमय जगत्में आवर्त्त उत्पन्न होकर दैवीशक्तिके

एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥ ३९ ॥

प्रशमनं असमद्वैरिविनाशनं एवं एव त्वया कार्य्यम् (कर्त्तव्यं) ॥ ३८-३९ ॥

जिस प्रकार शत्रुओंका नाश करके जगत्की रक्षा की है, इसी प्रकार सर्वदा आविर्भूता होकर हमारे शत्रुओंका नाश करके त्रिलोककी सब बाधाएँ दूर करोगी ॥३८-३९॥

प्रकाशित होनेका जो स्थान बनता है, उसको पीठ कहते हैं, जैसे मृत्युलोकके जीवोंके ठहरनेके लिये पृथिवी है और बैठनेके लिये आसन है, उसी प्रकार सूक्ष्म देवलोक-वासी आत्माओंके ठहरनेका स्थान पीठ है। सनातन-धर्ममें विभिन्न प्रकारके पीठोंके अवलम्बनसे उपासना की जाती है । जिन अवलम्बनोंसे उपासना-पीठ बनता है, उनके अनेक भेद हैं। यथा-अग्नि, जल, पृथ्वी, हृदय, मूर्द्धा, मूर्त्ति, यन्त्र, चित्र आदि । तीर्थ आदि भी इसी प्रकार पार्थिव पीठके अन्तर्गत हैं, इनके भी कई भेद हैं। जीव-यान्त्रिक पीठका उदाहरण बटुक और कुमारी पूजा है। सहजपीठका उदाहरण स्त्री-पुरुषके संगम-अवस्थाको समझनेयोग्य है, जिसमें स्वाभाविकरूपसे जीवोंका आकर्षण होकर गर्भाधान होता है। इसी प्रकार नित्ययन्त्र यथा शालिग्रामशिला और नर्मदेश्वर और पुष्पोंमें कमल, अपराजिता आदि सहज और नित्यपीठके अन्तर्गत हैं। इनमें विना प्राणप्रतिष्ठाके

देव्युवाच ॥ ४० ॥

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे ।

देवी उवाच,—वैवस्वते अन्तरे (मन्वन्तरे) प्राप्ते

देवी बोली,—वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें युगमें

देवताओंकी पूजा की जाती है। स्थूल-यान्त्रिक पीठका उदाहरण शव-साधन आदिको समझना उचित है। इस प्रकारसे पीठके अनेक भेद हैं। चिरस्थायी पीठोंमें और विशिष्ट तीर्थादिमें पीठाभिमानी देवता नित्य-रूपसे रहा करते हैं और उनसे बड़े-बड़े कार्य्य सिद्ध होते हैं। जैसे कि आजकल भी तारकेश्वर और वैद्यनाथ, श्रीनाथद्वारा आदि तीर्थोंमें अलौकिक बातें देखनेमें आती हैं। अतः पीठके साथ दैवजगत्का सम्बन्ध स्थापित रहता है इस कारण तीर्थोंके साथ देवासुर-संग्रामके सम्बन्धका वर्णन भी पाया जाता है ॥ ३६ ॥

टीका—तीस क्षणका एक अहोरात्र अर्थात् दिन होता है। इसी हिसाबसे मास, राशि आदिनिर्णय-द्वारा वर्षका हिसाब बाँधा गया है। पुनः मानुषी वर्षके हिसाबसे एक ब्रह्माण्डकी आयुका निर्णय किया गया है। शास्त्रोंमें लिखा है कि—

चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।
पितामहसहस्राणि विष्णोरेका घटी मता ॥

शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ॥ ४१ ॥

अष्टाविंशतिमे युगे शुम्भः निशुम्भः च अन्यौ महासुरौ उत्पत्स्येते ॥ ४०-४१ ॥

पुनः शुम्भ-निशुम्भ नामक अन्य महासुर उत्पन्न होंगे ॥ ४०-४१ ॥

विष्णोर्द्वादशलक्षाणि निमेषार्धं महेशितुः ।
दशकोट्यो महेशानां श्रीमातुस्त्रुटिरूपकाः॥

अर्थात् हजार महायुगका सृष्टिकर्त्ता भगवान् ब्रह्माका दिन होता है, भगवान् ब्रह्माके हजार दिनका स्थितिकर्त्ता भगवान् विष्णुकी एक घटी होती है और भगवान् विष्णुके द्वादश हजार दिनका ब्रह्माण्डके लय-कर्त्ता भगवान् शिवका आधा निमेष होता है और भगवान् शिवके दस करोड़ दिनका श्रीजगदम्बाकी त्रुटि होती है। त्रिकालदर्शी महर्षियोंकी समाधिगम्य इस गणनाके हिसाबसे भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिव यद्यपि जगत्के ईश्वररूप हैं तौभी उनके दिनमान तथा आयुका पता लग सकता है और यदि भगवान् शिवके स्थितिकालकी गणना इस हिसाब-से की जाय और सृष्टिके रहस्यको समझा जाय तो हमारे ब्रह्माण्डकी आयुका भी पता लग सकता है। सृष्टि चार प्रकारकी होती है। यथा—प्राकृतिक सृष्टि, ब्राह्मी सृष्टि, प्राजापत्य सृष्टि और बैजी सृष्टि। इन चारोंमें

नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा ।

(अहं) नन्दगोपगृहे यशोदागर्भसम्भवा जाता (सती) विन्ध्याचलनिवासिनी (विन्ध्याचलपर्वत-

मैं नन्दगोपके यहाँ यशोदाके गर्भसे उत्पन्न हूँगी

से प्राकृतिक सृष्टि वह है, जिसका अस्तित्व भगवान् ब्रह्माके आविर्भावसे पहले और भगवान् शिवके तिरो-भावके पीछे जबतक ब्रह्माण्डका शरीर पुनः परमाणुओं-में परिणत न हो जाय तबतक समझा जाता है। अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डभाण्डोदरी ब्रह्मशक्ति महामायाके एक ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, स्थिति और लयके कालका कुछ अनुमान करानेके लिये ऐसी संख्या शास्त्रोंमें पायी जाती है। मनुष्यके ४३२००० वर्षोंका कलियुग, ८६४००० मानववर्षोंका द्वापरयुग, १२९६००० मानववर्षोंका त्रेता-युग तथा मनुष्यके १७२८००० वर्षोंका सत्ययुग होता है। यह चारों मिलकर एक महायुग कहलाते हैं जिसकी गणना मनुष्यके वर्षके हिसाबसे ४३२०००० वर्षोंकी है। ऐसे ७१ महायुगोंका एक मन्वन्तर होता है जिसका मनुष्यवर्षके हिसाबसे ३०६७२०००० वर्ष होते हैं। प्रत्येक मन्वन्तरमें देवपदधारी मनु और उनके साथ-ही-साथ इन्द्रादि देवसंघ, ऋषिसंघ और पितृसंघ सब बदल जाते हैं। ऐसे १४ मन्वन्तरोंका भगवान् ब्रह्माका एक कल्प अर्थात् दिन होता है और इसी

ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥ ४२ ॥

वासिनी सती) ततः तौ (शुम्भनिशुम्भौ) नाशयिष्यामि ॥ ४२ ॥

एवं विन्ध्याचलमें रहकर उन दोनोंका विनाश करूँगी ॥४२॥

हिसाबसे १०० वर्षकी आयुका अनुमान करनेसे यह जाना जा सकता है, कि भगवान् ब्रह्माकी आयुका काल कितना हो सकता है। भगवान् ब्रह्माजीके प्रत्येक दिनमें सृष्टि होती है और प्रत्येक रातमें प्रलय होता है। भगवान् ब्रह्माकी रात्रिमें नीचेके सात लोक और ऊपरके तीन लोक तथा भगवान् विष्णुकी रात्रिमें नीचेके सात लोक और ऊपरके चार लोकतक नष्ट होजाते हैं। भगवान् रुद्रकी रात्रिमें ऊपरके पाँच लोकतक लय होजाते हैं, एवं रुद्रके लय होजानेपर सम्पूर्ण चतुर्दश भुवन जगत्के कारण ईश्वरमें लयको प्राप्त होते हैं। प्रथम चरित्रमें सृष्टिका जो वर्णन है, वह ब्रह्माण्डकी आदि सृष्टिका है, इस प्रकार त्रिदेवकी रात्रिके अवसानकी खण्डसृष्टिका नहीं है। एक भगवान् ब्रह्माकी आयुमें कई मनु बदलते हैं। कालके इसी हिसाबसे वर्त्तमान मन्वन्तरमें श्रीजगदम्बा पुनः स्थूलरूपमें व्रजमें प्रकट हुई थीं। जैसे ब्रह्मचक्रके द्वारा द्वितीय चरित्रके वर्णनके अनुसार देवलोकमें प्रकट हुई थीं, उसी प्रकार पूर्णावतार भगवान् श्री कृष्णचन्द्रकी रक्षाके निमित्तसे श्रीजगदम्बा व्रजमें प्रकट हुई थीं और

पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले ।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥ ४३ ॥

पुनः अपि अतिरौद्रेण (अतिभयानकेन) रूपेण पृथिवीतले अवतीर्य्य वैप्रचित्तान् (वैप्रचित्तनामकान्) दानवान् तु हनिष्यामि ॥ ४३ ॥

पुनः अतिभयानकरूपसे पृथ्वीतलमें अवतीर्ण होकर वैप्रचित्त नामक दानवोंका विनाश करूँगी ॥ ४३ ॥

दैवीवाणीद्वारा प्रवल असुरावतार कंसको भीति एवं कृपा दिखायी थी । तृतीय चरित्रके समय जैसा जगन्माताका स्थूलपीठ हिमालय बना था, उसी प्रकार इस समय स्थूलपीठ विन्ध्याचल बना था । द्वितीय शुम्भ-निशुम्भका वध जगदम्बा अपने अधिदैव स्वरूपसे सूक्ष्म दैवलोकमें करेंगी । जैसे मधुकैटभवध, महिषासुरवध और प्रथम शुम्भ-निशुम्भवधरूपी पहलेके तीनों चरित्र सूक्ष्म देवलोकव्यापी हैं, उसी प्रकार यह चरित्र मृत्युलोक और दैवलोक उभयसे सम्बन्ध रखनेवाला है; क्योंकि द्वितीय शुम्भ-निशुम्भवधका देवलोकसे सम्बन्ध है तथा भगवान् श्री कृष्णकी रक्षा-कार्य्यका सम्बन्ध मृत्युलोकसे है । श्रीजगदम्बाके चरित्रके विकाशसे ही भगवान् श्रीकृष्णके पूर्णावतारत्वकी सिद्धि होती है और इसी प्रकार इस युगमें विन्ध्याचलकी सिद्धि-प्रदायिनी शक्ति शास्त्रद्वारा प्रमाणित है ॥ ४०-४२ ॥

भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान् ।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥ ४४ ॥
ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः ।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥ ४५ ॥
भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ॥ ४६ ॥

तान् उग्रान् वैप्रचित्तान् महासुरान् भक्षयन्त्याः च (मम) दन्ता दाडिमीकुसुमोपमाः रक्ताः (रक्तवर्णाः) भविष्यन्ति, ततः स्वर्गे देवताः मर्त्यलोके मानवाः च मां स्तुवन्तः सततं रक्तदन्तिकां व्याहरिष्यन्ति (कथयिष्यन्ति) ॥ ४४-४५ ॥

भूयः च शतवार्षिक्यां (शतवर्षव्यापिन्यां) अनावृष्ट्यां (सत्यां) अनम्भसि (जलरहितायां) भूमौ मुनिभिः संस्तुता (सती) अयोनिजा सम्भविष्यामि ॥ ४६ ॥

उन भयानक दानवोंको भक्षण करनेसे हमारी दंतपंक्तियाँ अनारके पुष्पके समान रक्तवर्ण होजायँगी, तब स्वर्गमें देवतागण एवं मृत्युलोकमें मनुष्यगण स्तुति करते हुए मुझको 'रक्तदंतिका' नामसे अभिहित करेंगे॥४४-४५॥

पुनः सौ वर्षोंतक अनावृष्टि होनेसे पृथिवीके जल रहित होनेपर मुनिगण मेरी स्तुति करेंगे तब मैं विना गर्भके ही उत्पन्न हूँगी ॥ ४६ ॥

ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्याम्यहं मुनीन् ।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥ ४७ ॥
ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः ।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥ ४८ ॥
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि ॥ ४६ ॥
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ।

ततः नेत्राणां शतेन अहं मुनीन् निरीक्षिष्यामि, ततः मनुजाः (मनुष्याः) मां शताक्षीं (शतनयनीं) इति कीर्तयिष्यन्ति ॥ ४७ ॥

हे सुराः ! ततः आवृष्टेः (वृष्टिपर्य्यन्तं) अहं आत्मदेहसमुद्भवैः प्राणधारकैः शाकैः अखिलं (कृत्स्नं) लोकं भरिष्यामि (पोषयिष्यामि) तदा अहं शाकम्भरी इति विख्यातिं भुवि यास्यामि (प्राप्स्यामि) तत्र

एवं सौ नेत्रोंसे मुनियोंको देखूँगी, उससे मनुष्यगण मुझे शताक्षी नामसे कीर्तित करेंगे ॥ ४७ ॥

हे देवतागण ! उस समय मैं अपने देहसे नाना प्रकारके शाक उत्पन्न करके सबका पालन करूँगी, उन शाकोंके द्वारा वृष्टि होनेतक प्राणिगण जीवित रहेंगे, इसलिये उस समय मैं शाकंभरी नामसे विख्यात हूँगी ॥ ४८-४६ ॥

उस समय दुर्गम नामक महासुरका भी विनाश

दुर्गादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ॥ ५० ॥
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले।
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ॥ ५१ ॥
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः।
भीमादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ॥ ५२ ॥
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति।

(अनावृष्टिकाले) एव च दुर्गमाख्यं (दुर्गनामकं) महासुरं वधिष्यामि, तत् (तस्मात्) दुर्गा देवी इति विख्यातं नाम मे (मम) भविष्यति, पुनः च अहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले (हिमालये) मुनीनां त्राण-कारणात् रक्षांसि भक्षयिष्यामि (नाशयिष्यामि) तदा सर्वे मुनयः आनम्रमूर्त्तयः मां स्तोष्यन्ति, तत् (तस्मात्) भीमादेवी इति विख्यातं नाम मे (मम) भवि-ष्यति ॥ ४८-५२ ॥

यदा अरुणाख्यः (असुरः) त्रैलोक्ये महाबाधां

करूँगी, इसलिये मैं दुर्गादेवीनामसे विख्यात हूँगी। पुनः मैं अतिभयानक रूपसे हिमालयमें अवतीर्ण होकर मुनियोंकी रक्षाके निमित्त राक्षसोंका विनाश करूँगी, तब मुनिगण नम्रतासे मेरी स्तुति करेंगे, उस समय मैं भीमादेवीनामसे प्रसिद्ध हूँगी ॥ ५०-५२ ॥

अनन्तर अरुण नामक महासुर जब त्रिलोकमें

तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वासंख्येयषट्पदम् ॥ ५३ ॥
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ।

करिष्यति, तदा अहं असंख्येयषट्पदं भ्रामरं रूपं कृत्वा, त्रैलोक्यस्य हितार्थाय महासुरं (अरुणं) वधिष्यामि,

अत्यन्त बाधा उत्पन्न करेगा, तब मैं असंख्येय षट्पदयुक्त भ्रमररूप धारण करके उस महाअसुरको

टीका—ये सब चरित्र भविष्यमें प्रकटहोनेयोग्य और मृत्युलोकसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। उपनिषद्रूपी सप्तशती गीताके पूर्वकथित तीनों चरित्र दैवीलोकके चरित्र हैं। उसके बादकी जो भविष्य वाणी जगदम्बाने की है, उसमेंसे कुछ चरित्र इस कलियुगके प्रारम्भमें हो चुके हैं, जिनका सम्बन्ध श्रीभगवान्के पूर्णावतार श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाके साथ पाया जाता है। बाकी कहे हुए चरित्र भविष्यमें होनेयोग्य हैं । उनका ठीक समय निर्धारित नहीं है परन्तु इतना निश्चित है कि वर्तमान मन्वन्तरमें ही इस दैववाणीके अनुसार श्रीजगदम्बाकी वे दैवीलीलाएँ प्रकट होंगी ॥ ४३-५५ ॥

टीका—सृष्टिरूपी दृश्य-प्रपंचमें विद्यावैभव और अविद्यावैभव दोनोंकी आवश्यकता अपने-अपने अधिकारमें विद्यमान है। यदि अविद्याका वैभव न रहे तो जीवसृष्टि असम्भव हो जाय, भोगसम्बन्धीय लोक-

भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ॥५४॥

तदा लोकाः मां भ्रामरी इति च सर्वतः स्तोष्यन्ति ॥५३-५४॥

मारूँगी, उस समय लोग भ्रामरीरूपसे मेरी स्तुति करेंगे ॥ ५३-५४ ॥

समूहका अस्तित्व न रहे और कर्मश्रृंखला नष्ट होजाय। उसी प्रकार विद्याकी कृपा न रहे, तो मुक्तिकी तो बात ही क्या है, लोग ईश्वरके अस्तित्वको भी भूल जायँ। इस कारण मानना ही पड़ेगा कि, जैसे उजियालेके विना अन्धेरा और अन्धेरेके विना उजियालाका अस्तित्व नहीं जाना जा सकता, वैसे ही दोनोंके अधिकारका रहना अवश्यंभावी है । इसी प्रकार प्राकृतिक क्रिया की सामञ्जस्य-रक्षा अथवा ब्रह्माण्डकी सुरक्षाके लिये देवता और असुरोंको अपने-अपने अधिकारमें रहना ही उचित है। असुरगण जब देवताओंके अधिकारको छीनते हैं, तभी प्रकृतिराज्यमें असामंजस्य होकर ब्रह्माण्डमें विप्लव उपस्थित होता है। वह विप्लव केवल स्वर्गलोकमें ही नहीं होता, पितृलोक, मृत्युलोक आदिमें भी होता है, क्योंकि, यम, इन्द्र आदि सबके अधिकार छिन जाते हैं। उन अधिकारोंके छिन जानेसे मृत्युलोकमें आसुरी प्रकोप बढ़ जाता है। अतः इस प्रकारसे विप्लव होनेसे जब सूक्ष्मराज्यमें असामञ्जस्य होता है, तब

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥ ५५ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
नारायणीस्तुतिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इत्थं (अनेन प्रकारेण) यदा यदा दानवोत्था (असुरोद्भवा) बाधा (पीड़ा) भविष्यति, तदा तदा अहं अवतीर्य्य अरिसंक्षयम् (शत्रुविनाशं) करिष्यामि ॥ ५५ ॥

इस प्रकारसे जब-जब दानवोंके द्वारा पीड़ा उत्पन्न होगी तब-तब मैं अवतीर्ण होकर शत्रुओंका विनाश करूँगी ॥ ५५ ॥

नारायणीस्तुति नामक एकादश अध्याय समाप्त हुआ ।

स्थूल जगत्में भी असामञ्जस्य हो जाता है और उस समय जगदम्बाके आविर्भूत होनेकी आवश्यकता होती है ॥५५॥

देव्युवाच ॥ १ ॥

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः ।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ २ ॥
मधुकैटभनाशञ्च महिषासुरघातनम् ।
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद्वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ३ ॥
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः ।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४ ॥

देवी उवाच,—यः समाहितः (सन्) एभिः स्तवैः च नित्यं मां स्तोष्यते, अहं तस्य सकलां बाधां (आध्यात्मिकादिबाधां) असंशयं नाशयिष्यामि ॥ १-२ ॥

ये (मनुष्याः) मधुकैटभनाशं, महिषासुरघातनं तद्वत् (तथा) शुम्भनिशुम्भयोः वधं च कीर्तयिष्यन्ति ॥३॥

ये च एव अष्टम्यां चतुर्दश्यां नवम्यां च एकचेतसः (एकाग्रमनसः सन्तः) भक्त्या मम उत्तमं माहात्म्यं श्रोष्यन्ति च ॥ ४ ॥

देवी बोली,—जो व्यक्ति एकाग्रचित्त होकर इन स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करेगा, उसकी सब बाधा मैं दूर करूँगी ॥ १-२ ॥

जो व्यक्ति मधु-कैटभ एवं महिषासुरवधके विषयका मेरा चरित्र गान करेंगे एवं जो अष्टमी, चतुर्दशी तथा नवमी तिथिमें भक्तिपूर्वक हमारे इस श्रेष्ठ माहात्म्यको

न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः।
भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥ ५ ॥
शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः।
न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति ॥ ६ ॥
तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः।

तेषां किंचित् दुष्कृतं (पापं) न भविष्यति, दुष्कृतोत्था (पापजन्याः) आपदः च न (भविष्यन्ति) (तथा) दारिद्र्यं न इष्टवियोजनं (इष्टवियोगः) च न (भविष्यति) ॥ ५ ॥

तस्य (अध्येतुः श्रोतुः च) शत्रुतः दस्युतः राजतः शस्त्रानलतोयौघात् (शस्त्राग्निजलवेगात्) वा कदाचित् भयं न सम्भविष्यति ॥ ६ ॥

तस्मात् समाहितैः (सद्भिः) मम एतत् माहात्म्यं

श्रवण करेंगे, उनको कदापि पाप, पापजनित विपत्तियां एवं प्रियजनोंका वियोग नहीं होगा ॥ ३-५ ॥

एवं उनको शत्रुभय, दस्युभय, राजभय नहीं होगा तथा शस्त्र, अग्नि एवं जलवेगसे कदापि उनको भय उत्पन्न नहीं होगा ॥ ६ ॥

इसलिये सर्वदा मेरा यह माहात्म्य सावधानचित्तसे

श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥ ७ ॥
उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान्।
तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥ ८ ॥
यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ्नित्यमायतने मम।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सान्निध्यं तत्र मे स्थितम् ॥ ९ ॥

भक्त्या सदा पठितव्यं श्रोतव्यं च, हि (यस्मात्) तत् (मम माहात्म्यं) परं (उत्कृष्टं) स्वस्त्ययनं (कल्याणजनकं) ॥७॥

मम माहात्म्यं तु अशेषान् महामारीसमुद्भवान् उपसर्गान् तथा त्रिविधं उत्पातं शमयेत् ॥ ८ ॥

यत्र आयतने (गृहे) मम एतत् (माहात्म्यं) नित्यं सम्यक् पठ्यते, (अहं) सदा तत् (गृहं) न विमोक्ष्यामि, तत्र (गृहे) मे (मम) सान्निध्यं स्थितम् ॥ ९ ॥

भक्ति-पूर्वक श्रवण तथा पाठ करना चाहिये, यह बहुत कल्याणप्रद है ॥ ७ ॥

मेरा यह माहात्म्य पाठ और श्रवण करनेसे महामारी-जनित नाना प्रकारके उपसर्ग एवं आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक सब त्रिविध उत्पात नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

जिस गृहमें मेरा यह माहात्म्य सम्यक्रूपसे नित्य पाठ किया जाता है, उस गृहको मैं कदापि परित्याग नहीं करती हूँ, उस स्थानमें सर्वदा मेरा सान्निध्य रहता है ॥९॥

बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे ।
सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥ १० ॥
जानताजानता वापि बलिपूजां तथाकृताम् ।
प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥ ११ ॥
शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥ १२ ॥

बलिप्रदाने पूजायां अग्निकार्य्यें (होमयज्ञादौ) महोत्सवे मम एतत् सर्वं चरितं उच्चार्य्यं (पठितव्यं) श्राव्यं (श्रोतव्यं) च एव ॥ १० ॥

जानता अजानता वा अपि (जनेन) तथा कृतां बलिपूजां (बलियुक्त पूजां) तथा कृतं वह्निहोमं (च) अहं प्रीत्या प्रतीच्छिष्यामि (प्रतिग्रहिष्यामि) ॥ ११ ॥

शरत्काले या च वार्षिकी महापूजा क्रियते, तस्यां (पूजायां) मम एतत् माहात्म्यं भक्तिसमन्वितः (सन्)

बलिदान, पूजा, होमयज्ञादि तथा अन्यान्य महोत्सवोंमें मेरे ये सब माहात्म्य पाठ तथा श्रवण करना चाहिये ॥ १० ॥

जानकर या विना जाने भी मेरा यह माहात्म्य पाठ-पूर्वक बलि, पूजा तथा होमादि करनेपर मैं प्रेमपूर्वक ग्रहण करती हूँ ॥ ११ ॥

शरत्काल में प्रतिवर्ष जो मेरी महापूजा होती है,

सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः ।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥ १३ ॥
श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः ।
पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥ १४ ॥
रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते ।

श्रुत्वा मनुष्यः मत्प्रसादेन (मम कृपया) सर्वाबाधा विनिर्मुक्तः (सन्) धनधान्यसुतान्वितः भविष्यति, (तत्र) संशयः न ॥ १२-१३ ॥

मम एतत् माहात्म्यं तथा शुभाः उत्पत्तयः युद्धेषु पराक्रमं च श्रुत्वा पुमान् (पुरुषः) निर्भयः जायते ॥१४॥

मम माहात्म्यं शृण्वतां पुंसां रिपवः (शत्रवः)

उसमें भक्तिपूर्वक मेरा यह माहात्म्य सुननेपर मनुष्य मेरी कृपासे सब दुःखोंसे रहित होकर धन-धान्य-पुत्रादिका आनन्द प्राप्त करता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ १२-१३ ॥

मेरा यह माहात्म्य तथा मंगलमयी उत्पत्ति एवं मेरा युद्धसम्बन्धी पराक्रम श्रवण करनेसे मनुष्य भय-रहित होता है ॥ १४ ॥

मेरा यह माहात्म्य सुननेवाले व्यक्तियोंके शत्रुओंका

नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥ १५ ॥
शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने ।
ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥ १६ ॥
उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।
दुःस्वप्नश्च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥ १७ ॥

संक्षयं यान्ति, कल्याणं (मङ्गलं) च उपपद्यते, कुलं (गोत्रं) नन्दते च ॥ १५ ॥

सर्वत्र शान्तिकर्मणि तथा दुःस्वप्नदर्शने उग्रासु ग्रह-पीड़ासु च मम माहात्म्यं शृणुयात् ॥ १६ ॥

उपसर्गाः दारुणाः ग्रहपीड़ाः च शमं यान्ति, नृभिः दृष्टं दुःस्वप्नं च सुस्वप्नं उपजायते (शुभं फलं जनयति) ॥ १७ ॥

नाश हो जाता है, दिन-प्रति-दिन आनन्द एवं वंश-वृद्धिकी प्राप्ति होती है ॥ १५ ॥

सब प्रकारकी शान्तिक्रियामें, दुःस्वप्न देखनेमें एवं भयानक ग्रहपीड़ा आदिमें मेरा यह माहात्म्य श्रवण करना चाहिये ॥ १६ ॥

ऐसा होनेसे सब उपसर्गोंकी शान्ति होती है, ग्रहोंकी पीड़ा दूर होती है और दुःस्वप्न देखनेपर वह सुस्वप्नमें परिणत होता है ॥ १७ ॥

बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।
सङ्घातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ १८ ॥
दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ।
रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥ १९ ॥
सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ॥ २० ॥

(एतत् माहात्म्यं) बालग्रहाभिभूतानां (पूतनाद्यभिभूतानां) बालानां शान्तिकारकं, नृणां संघातभेदे (परस्परविरोधे) च उत्तमं मैत्रीकरणं (परस्परप्रणयजनकम्) ॥ १८ ॥

अशेषाणां दुर्वृत्तानां परं बलहानिकरं, पठनादेव रक्षोभूतपिशाचानां नाशनं (एतत् माहात्म्यं इत्यर्थः) (किं बहुना) एतत् मम सर्वं माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ॥ १९-२० ॥

मेरा यह माहात्म्य पूतनादि बालग्रहसे पीड़ित बालकोंकी रक्षा करता है एवं मनुष्योंमें परस्पर विवाद होनेपर उसको शान्त कर मित्रता उत्पन्न करता है ॥१८॥

यह माहात्म्य दुर्वृत्तोंके बलका नाश करता है तथा पाठमात्रसे ही राक्षस, भूत और पिशाच भाग जाते हैं ॥१९॥

अधिक क्या कहा जाय, मेरे ये सब माहात्म्य पाठ करनेसे मेरा सान्निध्यतक प्राप्त होता है ॥ २० ॥

पशुपुष्पार्घधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ।
विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ॥ २१ ॥
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ।
प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन्सकृदुच्चरिते श्रुते ॥ २२ ॥
श्रुतं हरति पापानि तथारोग्यं प्रयच्छति ।
रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम ॥ २३ ॥

पशुपुष्पार्घधूपैः च गन्धदीपैः तथा उत्तमैः विप्राणां भोजनैः होमैः प्रोक्षणीयैः (अभिषेकद्रव्यैः) अन्यैः च विविधैः भोगैः प्रदानैः (च) अहर्निशं वत्सरेण या मे प्रीतिः क्रियते, अस्मिन् उच्चरिते सकृत् (एकवारं) श्रुते (सति) सा (तादृशी प्रीतिः) क्रियते ॥ २१-२२ ॥

मम जन्मनां कीर्त्तनं श्रुतं (सत्) पापानि हरति, आरोग्यं तथा (च) प्रयच्छति (प्रददाति), भूतेभ्यः रक्षां (च) करोति ॥ २३ ॥

पशु, पुष्प, अर्घ, धूप, गन्ध, दीप, ब्राह्मणभोजन, होम, अभिषेकसामग्री और अन्यान्य भोज्य-द्रव्यादि-प्रदानपूर्वक एक वर्षतक प्रतिदिन पूजा करनेसे मैं जितना प्रसन्न होती हूँ, केवल एकबार यह चरित्र पाठ करने या सुननेसे मैं उतना ही प्रसन्न होती हूँ ॥२१-२२॥

मेरे जन्मविषयक उपाख्यान श्रवण करनेसे पापोंका विनाश होता है, आरोग्यकी प्राप्ति होती है, एवं सब हिंस्र प्राणियोंसे रक्षा होती है ॥ २३ ॥

युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ।
तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ॥ २४ ॥
युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ।
ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ॥२५॥
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः ।
दस्युभिर्वावृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः ॥ २६ ॥

युद्धेषु दुष्टदैत्यनिबर्हणं मे (मम) यत् चरितं, तस्मिन् श्रुते (सति) पुंसां वैरिकृतं भयं न जायते ॥२४॥

युष्माभिः याः च स्तुतयः कृताः, ब्रह्मर्षिभिः च याः (स्तुतयः कृताः) ब्रह्मणा, च (याः) कृताः, ताः (स्तुतयः) तु शुभां मतिं प्रयच्छन्ति ॥ २५ ॥

अरण्ये प्रान्तरे वा अपि दावाग्निपरिवारितः दस्युभिः वा आवृतः शून्ये शत्रुभिः गृहीतः वा अपि सिंहव्याघ्रानुयातः

युद्धके समयका दुष्टदैत्योंके विनाशसम्बन्धीय जो मेरा चरित्र है, उसको श्रवण करनेसे शत्रुजनित भय कभी नहीं होता है ॥ २४ ॥

हे देवतागण ! तुम लोगोंने, ब्रह्मर्षियोंने एवं स्वयं ब्रह्माने जो मेरी स्तुति की है, उसको श्रवण करनेसे कल्याणमयी मति उत्पन्न होती है ॥ २५ ॥

अरण्यमें, प्रान्तरमें, डाकुओंके द्वारा घिर जानेपर, शत्रुओंके द्वारा आक्रान्त होनेपर, सिंह-व्याघ्रके द्वारा

सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः।
राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा ॥ २७ ॥
आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे।
पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे ॥ २८ ॥
सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा।
स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत सङ्कटात् ॥ २९ ॥
मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा।

वा, वने वनहस्तिभिः वा (अनुयातः) क्रुद्धेन राज्ञा च आज्ञप्तः वध्यः (वधार्थं आदिष्टः) वन्धगतः (कारागतः) अपि वा, महार्णवे पोते स्थितः (सन्) वातेन आघूर्णितः वा भृशदारुणे संग्रामे शस्त्रेषु पतत्सु च घोरासु सर्वा-वाधासु वेदनाभ्यर्दितः (वेदनापीड़ितः) अपि वा मम एतत् चरितं स्मरन् नरः सङ्कटात् मुच्यते ॥ २६-२९ ॥

मम चरितं स्मरतः (जनात्) मम प्रभावात् सिंहाद्याः

आक्रान्त होनेपर, क्रुद्ध राजाके द्वारा बाँधनेकी आज्ञा देनेपर या बँध जानेपर, महासमुद्रमें नौकापर जाते हुए वायुद्वारा चालित होनेपर, भयानक युद्धक्षेत्रमें, भीषण शस्त्र-प्रहार होनेके समय या अन्यान्य सब घोर विपत्तियोंके समय मेरे इस चरित्रको स्मरण करनेसे मनुष्य सब संकटोंसे छुटकारा पाता है ॥ २६-२६ ॥

मेरा यह चरित्र स्मरण करनेसे मेरे प्रभावद्वारा

दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥ ३० ॥

ऋषिरुवाच ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा।
पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३२ ॥

दस्यवः वैरिणः (शत्रवः) तथा (च) दूरात् एव पलायन्ते ॥ ३० ॥

ऋषिः उवाच, चण्डविक्रमा सा भगवती चण्डिका इति उक्त्वा पश्यतां सर्वदेवानां (समीपे) तत्र एव अन्तरधीयत (अन्तर्दधौ) ॥ ३१-३२ ॥

सिंहादि हिंस्रजन्तु, दस्यु एवं शत्रुगण दूरसे ही भाग जाते हैं ॥ ३० ॥

ऋषि बोले,-प्रचण्डपराक्रमा भगवती चण्डिका इस प्रकार कह कर देवताओंके देखते-देखते वहीं अन्तर्हित होगयीं ॥ ३१-३२ ॥

टीका-श्री सप्तशती गीतारूपी ब्रह्ममयी सर्वशक्तिमती भगवती जगदम्बाका अलौकिकचरित्र किसप्रकारसे मंत्ररूप है और कलियुगमें वैदिक मन्त्रोंसे भी अधिक शक्तिशाली हैं, इसका कुछ दिग्दर्शन पहले कराया गया है। ऐसे मन्त्रोंसे श्रद्धावान् साधक सब कुछ लाभ कर सकता है। अतः ऊपर लिखित फलश्रुतियोंके विषयमें कुछ सन्देह ही नहीं है। केवल समाहित मनसे मन्त्रशुद्धि,

तेऽपि देवा निरातङ्काः स्वाधिकारान्यथापुरा।
यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः॥ ३३ ॥

ते देवाः अपि निरातङ्काः (निर्भयाः सन्तः) सर्वे विनिहतारयः (विनष्टशत्रवः) (अतः) यज्ञभागभुजः (सन्तः) पुरा यथा (पूर्ववत्) स्वाधिकारान् चक्रुः ॥ ३३ ॥

तब देवतागण भी शत्रु-रहित होकर निर्भय हो पूर्ववत् अपने अपने-अधिकारमें अधिष्ठित हुए एवं अपना-अपना यज्ञभाग ग्रहण करने लगे ॥ ३३ ॥

क्रियाशुद्धि और द्रव्यशुद्धि-सहित साधनकी अपेक्षा है और श्रद्धा ही सिद्धि प्राप्तिका-मूलमन्त्र है ॥ १-३० ॥

टीका—आकर्षणरूपी रज और विकर्षणरूपी तमोगुण का जहाँ समन्वय होता है, वहाँ जगत्-धारक और रक्षक सत्त्वगुणका उदय होता है। वही स्थिति-कारक भगवान् विष्णुका अधिष्ठानपद है। सत्त्वगुणकी प्रधानता ही धर्मका स्वरूप है। जब देवताओंकी शक्ति और असुरोंकी शक्तिका समन्वय होता है, अर्थात् दोनों ही अपने-अपने स्थान और पदपर रहते हैं, तभी धर्मका अभ्युत्थान रहता है। जब असुरोंका प्रावल्य होकर यह सामञ्जस्य नष्ट होजाता है, तभी धर्मकी ग्लानि हो जाती है। श्रीजगदम्बाकी कृपासे देवताओंकी जय होनेसे धर्मविप्लवकारी आसुरी शक्ति नष्ट हुई, देवता और

दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ।

शेषाः (अवशिष्टाः) दैत्याः च जगद्विध्वंसके महोग्रे

अवशिष्ट दैत्यगण भी देवीके द्वारा देवताओंके शत्रु

असुर अपने-अपने लोकोंमें प्रतिष्ठित हुए, धर्मकी पुनः प्रतिष्ठा हुई, तब देवताओंको यज्ञभाग मिलने लगा। धर्म और यज्ञ ये दोनों पर्य्यायवाचक शब्द हैं । जो धर्म्मकार्य्य संकल्पशुद्धिद्वारा श्रीभगवान्के चरणोंमें पहुँचाया जाय और जिसकी शक्ति देवलोकमें पहुँचकर उनके प्रसन्नता और सम्बर्धनका कारण हो सके उस धर्म्मकार्य्यको यज्ञ कहते हैं। अधर्मका नाश और धर्मकी स्थापना, सृष्टिकी सामञ्जस्य-रक्षा और धर्माधर्मरूपी कर्मकी सदसद्गतिकी सुरक्षा ठीक-ठीक होनेसे देवताओंकी पुष्टि होती है और वे बलवान् होकर ब्रह्माण्डकी सुरक्षामें तत्पर होते हैं यही यज्ञभागका अध्यात्म स्वरूप है। मृत्युलोकमें पुरुषधर्म, नारीधर्म, प्रवृत्तिधर्म, निवृत्ति-धर्म, साधारणधर्म, विशेषधर्म और वर्णाश्रमधर्म-सदाचार आदिकी सुरक्षा होनेसे देवाधिदेव भगवान् विष्णुप्रमुख सब देवता प्रसन्न और सम्वर्द्धित होते हैं। अर्थात् चाहे शारीरिक कर्म हो चाहे वाचनिक कर्म हो चाहे मानसिक कर्म हो चाहे बौद्धिक कर्म हो, जो शुभ कर्म श्रीजगदम्बाके चरणोंमें पहुँचे और जिसकी शक्ति

जगद्विध्वंसके तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे ॥ ३४ ॥
निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥ ३५ ॥
एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः ।
संभूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥ ३६ ॥

अतुलविक्रमे तस्मिन् देवरिपौ शुम्भे युधि (युद्धे) देव्या निहते (सति) महावीर्य्ये निशुम्भे च (निहते सति) पातालं आययुः गतवन्तः) ॥ ३४-३५ ॥

हे भूप ! सा भगवती देवी नित्या अपि एवं पुनः पुनः सम्भूय (आविर्भूय) जगतः परिपालनं कुरुते ॥ ३६ ॥

जगत्-विध्वंसी अतुलपराक्रमशाली शुम्भ-निशुम्भके मारे जानेपर पातालमें चले गये ॥ ३४-३५ ॥

हे भूपते ! राजन् ! देवी भगवती नित्या सनातनी होनेपरभी इस प्रकार बार-बार अवतीर्ण होकर जगत्-का पालन करती हैं ॥ ३६ ॥

देवलोकके सम्वर्द्धनका कारण हो, वही कर्म-व्यवस्था यज्ञभाग-प्राप्तिका अधिदैव स्वरूप है। और श्रौत-स्मार्त यज्ञकी सहायतासे देवताओंके मुखरूपी अग्निदेवके द्वारा यज्ञभागका देवलोकमें पहुँचना, यह यज्ञभागका अधिभूत स्वरूप है ॥ ३३ ॥

तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते ।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥ ३७ ॥
व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर ! ।
महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥ ३८ ॥
सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा ।

तया (देव्या) एतत् विश्वं मोह्यते, सा एव विश्वं प्रसूयते, सा तुष्टा (भक्त्या तोषिता) याचिता (सती) विज्ञानं ऋद्धिं (सम्पदं) च प्रयच्छति (ददाति) ॥३७॥

हे मनुजेश्वर ! महामारी स्वरूपया तया महाकाल्या महाकाले (प्रलयकाले) एतत् सकलं ब्रह्माण्डं व्याप्तम् ॥३८॥

सा एव काले महामारी, सा एव अजा (जन्मरहिता सती) सृष्टिः (सृज्यरूपा) भवति, सनातनी सा एव, काले

उन्हीं देवीके द्वारा यह विश्वब्रह्माण्ड मोहित होरहा है, वे ही जगत्की सृष्टि करती हैं, उन्हींके निकट प्रार्थना करनेपर वे प्रसन्न हो ज्ञान एवं सम्पत्ति प्रदान किया करती हैं ॥ ३७ ॥

हे राजन् ! इन्हीं महाकालीके द्वारा जगत् परिव्याप्त हो रहा है । प्रलयके समय वे ही महामारीरूपसे अवस्थान करके सबको अपनेमें मिला लेती हैं, पुनः सृष्टिके समय वे ही सबकी सृष्टि करती हैं, फिर वे ही स्थितिके समय सबका पालन करती हैं, वे नित्या सनातनी हैं । वृद्धिके

स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥ ३९ ॥
भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे ।
सैवाभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥ ४० ॥
स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा ।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्म्मे तथा शुभाम् ॥ ४१ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
फलश्रुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

(पालनसमये) भूतानां स्थितिं (पालनं) करोति ॥३८॥

सा एव भवकाले (वृद्धिकाले) नृणां गृहे वृद्धिप्रदा लक्ष्मीः, तथा सा एव अभावे अलक्ष्मीः (सती) विनाशाय उपजायते ॥ ४० ॥

(सा) पुष्पैः धूपगन्धादिभिः तथा (च) सम्पूजिता (तथा) स्तुता (सती) वित्तं पुत्रान् तथा धर्मे शुभां मतिं च ददाति ॥ ४१ ॥

समय वृद्धि प्रदान करनेमें समर्थ लक्ष्मीरूपिणी हैं पुनः अभावके समय अलक्ष्मीरूपा होकर विनाश किया करती हैं ॥ ३८-४० ॥

पुष्प, धूप एवं गन्धादिद्वारा पूजा एवं स्तुति करनेसे वे धर्मबुद्धि, धन एवं पुत्रादि प्रदान करती हैं ॥ ४१ ॥

फलश्रुति नामक द्वादश अध्याय समाप्त हुआ ।

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

एतत्ते कथितं भूप ! देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवं प्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥ २ ॥
विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया ॥ ३ ॥

ऋषिः उवाच,—हे भूप ! उत्तमं एतत् देवीमाहात्म्यं ते (तुभ्यं) कथितं, यया इदं जगत् धार्य्यते, सा देवी एवम् प्रभावा (एतादृशमाहात्म्या) ॥ १-२ ॥

भगवद्विष्णुमायया (तथा) विद्या (ज्ञानलक्षणा) तथा एव क्रियते (उत्पाद्यते) ॥ ३ ॥

ऋषिने कहा, हे भूप ! ये सब देवीका माहात्म्य मैंने तुमसे कहा। वे देवी ऐसी प्रभावशालिनी हैं, जिन्होंने इस जगत्को धारण कर रक्खा है ॥ १-२ ॥

उन विष्णुमाया देवीके प्रसन्न होनेसे ही स्वरूप-ज्ञान प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

टीका—ब्रह्मशक्ति महामाया जो अघटन-घटनापटीयसी हैं और सर्वशक्तिमयी हैं वे अविद्यारूप धारण कर जीवको मोहित करती हैं, एवं विद्यारूप धारण कर जीवके मोहको दूर करती हैं। उसीसे एक ओर बन्धन, दूसरी ओर मुक्ति, एक ओर अज्ञान, दूसरी ओर ज्ञान, एक ओर अन्धकार दूसरी ओर प्रकाश, एक ओर आसुरीशक्ति दूसरी ओर दैवीशक्ति इत्यादि परस्पर

तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ।
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे ॥ ४ ॥
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् ।
आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥ ५ ॥

तया (देव्या) त्वं एषः वैश्यः च तथा एव अन्ये विवेकिनः च अपरे (अविवेकिनः) (प्राक्) मोहिता; (वर्त्तमाने च) मोह्यन्ते च एव, मोहं एष्यन्ति (प्राप्स्यन्ति) ॥ ५ ॥

हे महाराज ! तां परमेश्वरीं शरणं उपैहि (प्राप्नुहि) सा एव आराधिता (सती) नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा (भवति) ॥ ५ ॥

उन्होंने ही तुमको, इस वैश्यको, तथा अन्यान्य विवेकी, अविवेकी सबको मोहित किया था, अब भी कर रही हैं और भविष्यमें भी करेंगी ॥ ४ ॥

हे महाराज ! तुम लोग उन्हीं परमेश्वरीका शरण लो, उनकी आराधना करनेसे वेही भोग, स्वर्ग, एवं अपवर्ग—मुक्ति प्रदान करती हैं ॥ ५ ॥

विरोधी भाव सृष्टिमें दिखायी पड़ते हैं । सप्तशती गीता के प्रथम चरित्रमें एक ओर मधु-कैटभको मोहित कर उनके मुखसे वर दिलवा देना और दूसरी ओर भगवान् विष्णुके शरीरसे निकल कर उनको प्रकृतिस्थ कर देना महामायाके द्वन्द्व भावोंका परिचायक है ॥ २-४ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ६ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ।
प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं संशितव्रतम् ॥ ७ ॥
निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ।
जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ! ॥ ८ ॥
संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ।
स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ॥ ९ ॥

मार्कण्डेयः उवाच, हे महामुने ! (भागुरे !) नराधिपः सः सुरथः सः वैश्यः च तस्य (मेधसः) इति (एवं) वचः श्रुत्वा महाभागं संशितव्रतं तमृषिं प्रणिपत्य अतिममत्वेन राज्यापहरणेन च निर्विण्णः (कृतनिर्वेदः सन्) सद्यः (तत् क्षणमेव) तपसे (तपः कर्तुं) जगाम ॥६–८॥

सः (नृपः) वैश्यः च अम्बायाः सन्दर्शनार्थं नदीपुलिनसंस्थितः परं देवीसूक्तं जपन् तपः तेपे (कृतवान्) ॥९॥

मार्कण्डेय बोले,—राज्य हार जानेसे दुःखी नरपति सुरथ एवं अतिमोहसे निर्विण्ण-मानस मेधस नामक वैश्य, मुनिकी इस प्रकारकी बात सुनकर अतिप्रभावसम्पन्न, व्रतधारी उन ऋषिको प्रणाम कर तपस्या करने चले गये और जगन्माताके दर्शनकी अभिलाषासे नदीके तीरपर देवीसूक्त का जप करते हुए तपस्या करने लगे ॥ ६–९ ॥

तौ तस्मिन्पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम्।
अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः॥ १०॥

तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः महीमयीं मूर्त्तिं कृत्वा पुष्पधूपाग्नितर्पणैः तस्याः (देव्याः) अर्हणां (पूजां) चक्रतुः॥ १०॥

उन दोनोंने उस नदीके तीरपर देवीकी मिट्टीकी प्रतिमा बनाकर पुष्प, धूप एवं होमादिद्वारा पूजा करना प्रारम्भ किया॥ १०॥

टीका—वेद और शास्त्रोंमें सोलह दिव्यदेश माने गये हैं, मूर्ति अर्थात् प्रतिमा उन्हींमेंसे एक है। सर्वव्यापक जगत्पिता परमात्माकी चाहे पुरुषरूपसे उपासना करे, चाहे स्त्रीरूपसे उपासना करे, सनातनधर्मी उपासक इन्हीं जल, अग्नि, पट, मूर्ति, मण्डल, यन्त्र, हृदय, मूर्द्धा आदि सोलह दिव्य देशोंमेंसे किसीको पीठ बनाकर उपासना किया करते हैं। वे मूर्तिकी उपासना नहीं करते हैं, मूर्तिमें पीठ बनाकर उपासना करते हैं। जैसे गौके सारे शरीरमें रसरूपसे दुग्ध रहनेपर भी स्तनद्वारा ही वह क्षरित होता है, उसी प्रकार चिन्मयी ब्रह्मशक्ति सर्वव्यापक होनेपरभी दिव्य देशोंमें आविर्भूत होती हैं। यही मूर्तिपूजाका रहस्य है, यही मूर्त्तिपूजाकी परम उपकारिता और

निराहारौ यतात्मानौ तन्मनस्कौ समाहितौ ।
ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ॥ ११ ॥

तौ निराहारौ यतात्मानौ तन्मनस्कौ समाहितौ (सन्तौ) उक्षितं (बहिष्कृतं) निजगात्रासृक् (निजगात्ररक्तं) बलिं च एव ददतुः ॥ ११ ॥

वे निराहार रहकर, आत्म-संयमपूर्वक सब इन्द्रियोंका निग्रह कर मनको एकमात्र भगवतीमें लीन करके अपने शरीरके रक्तका बलिदान करते हुए तपस्या करने लगे ॥ ११ ॥

महत्त्व है । बलिके विषयमें भी शंका हो सकती है। इस लिये समाधान किया जाता है। उपासनाके निमित्त त्याग-विशेषको बलि कहते हैं । बलिका अध्यात्मरूप आत्मबलि, उसका अधिदैवस्वरूप सूक्ष्म और स्थूल सम्बन्धीय त्याग तथा उसका अधिभूतरूप पशु-बलि अथवा उसका अनुकल्प कूष्माण्ड-बलि आदि है। मनुष्य प्रवृत्तिके वश होकर मांस आदि भक्षणकी इच्छा रखता है। ऐसे अधिकारीके लिये पशुबलि विहित है। मध्यम अधिकारीके लिये अधिदैव बलि विहित है, जैसा कि इन दोनोंने किया था अथवा काम क्रोधादिकी बलि जो मानसपूजामें किया जाता है। उत्तम अधिकारीके लिये अध्यात्मबलि अर्थात् जैव अहंकारकी बलि देना शास्त्र-सम्मत है ॥ १०-११ ॥

एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ।
परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥ १२ ॥

देव्युवाच ॥ १३ ॥

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप ! त्वया च कुलनन्दन ! ।
मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥ १४ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ १५ ॥

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ।

त्रिभिः वर्षैः एवं समाराधयतोः यतात्मनोः (तयोः) जगद्धात्री चण्डिका परितुष्टा (सती) प्रत्यक्षं प्राह ॥ १२ ॥

देवी उवाच,—हे भूप ! त्वया यत् प्रार्थ्यते, हे कुल-नन्दन ! त्वया च (यत्-प्रार्थ्यते), मत्तः (मम सकाशात्) तत् प्राप्यतां, (अहं) परितुष्टा तत् सर्वं ददामि ॥१३-१४॥

मार्कण्डेय उवाच,—ततः नृपः अन्यजन्मनि अवि-

इसी प्रकार तीन वर्षतक संयतात्मा हो आराधना करनेपर जगद्धात्री चण्डिकादेवी प्रसन्न हो सामने आकर बोलीं ॥ १२ ॥

हे भूप! हे कुलनन्दन वैश्य ! मैं प्रसन्न हूँ, तुम दोनों के जो-जो प्रार्थनीय हों, उन्हें मुझसे प्राप्त करो, मैं सब कुछ प्रदान करनेको प्रस्तुत हूँ ॥ १३-१४ ॥

मार्कण्डेयने कहा,—तब राजा सुरथने जन्मान्तर

अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥ १६ ॥
सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः ।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥ १७ ॥
देव्युवाच ॥ १८ ॥

भ्रंशि राज्यं, अत्र एव बलात् हतशत्रुबलं निजं राज्यं च वव्रे ॥ १५-१६ ॥

ततः सः प्राज्ञः वैश्यः अपि निर्विण्णमानसः (सन्) मम इति अहं इति सङ्गविच्युतिकारकं ज्ञानं (तत्त्वज्ञानं) वव्रे (प्रार्थयामास) ॥ १७ ॥

देवी उवाच,—नृपते ! भवान् स्वल्पैः अहोभिः

में भी अक्षुण्ण राजत्व एवं इस जगत्‌में शत्रुओंका विनाश कर राज्यपानेकी प्रार्थना की । अनन्तर समाधि नामक उस वैश्यने संसारके प्रति अत्यन्त विरक्त होनेसे पुत्र, कलत्र एवं देहादिमें आसक्तिके नाश करनेवाले परमज्ञानके लिये प्रार्थना की ॥ १५-१७ ॥

देवी बोली,—हे भूपते ! तुम शीघ्र ही अपना राज्य

टीका—ऐशगतिका वर्णन पहले संक्षेपरूपसे आ चुका है । मनुष्यलोकके उन्नत जीव जो कृष्णगतिके फंदे से बच जाते हैं, दूसरी ओर उन्नत वासना रहनेसे उच्चदेवपदके अधिकारी होते हैं, वे इस प्रकारसे मनुत्व,

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ॥ १९ ॥
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥ २० ॥

(दिवसैः) स्वं राज्यं प्राप्स्यते, तत्र (राज्ये) रिपून् हत्वा तव राज्यं अस्खलितं भविष्यति ॥ १८-२० ॥

प्राप्त करोगे, एवं शत्रुओंका नाश कर निर्विघ्नभावसे उसका भोग करोगे ॥ १८-२० ॥

इन्द्रत्व आदि देवपदोंको प्राप्त करते हैं, और क्रमशः आगे बढ़ते-बढ़ते ऐशगतिद्वारा मुक्त हो जाते हैं जैसा कि पहले कहा गया है। पुण्यात्मा मनुष्य साधारणतः पितृलोक, भुवलोक आदिमें जाकर स्वर्गसुख भोग करके पुनः आवा-गमन-चक्रसे मृत्युलोकमें आ जाते हैं। यह साधारण कृष्ण-गतिकी अवस्था है, परन्तु जो जीव उग्र तपस्याके बलसे उन्नत देवपदोंके अधिकारी बन जाते हैं, उन्हींकी गतिको ऐशगति कहते हैं और उनका पुनः मृत्युलोकमें लौटना प्रायः नहीं होता है। राजा सुरथको यही गति प्राप्त हुई है। वे मनुनामक देवपद प्राप्त करेंगे और क्रमशः श्री-जगदम्बाकी कृपासे ऐशगतिके द्वारा अग्रसर होंगे। यह मनुष्यके लिये असाधारण गति है। बड़े शक्तिशाली तथा तपस्वी उपासक ही ऐसी श्रेष्ठगतिको प्राप्त कर सकते हैं। समाधि नामक वैश्यका भविष्य भी बहुत प्रशंसनीय है।

मृतश्च भूयः संप्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः ॥ २१ ॥
सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ॥ २२ ॥

मृतः च भूयः (पुनः) देवात् विवस्वतः (सूर्य्यात्) जन्म संप्राप्य भवान् सावर्णिकः नाम मनुः भुवि भवि-ष्यति ॥ २१-२२ ॥

शरीरान्तके बाद पुनः सूर्य्यदेवसे जन्मलाभ करके संसारमें सावर्णि नामक मनुरूपसे प्रसिद्ध होगे ॥ २१-२२॥

यद्यपि वैश्यजाति तृतीय श्रेणीमें है और वैश्यधर्म अर्थप्रधान होनेसे वे मुक्तिके अधिकारी नहीं होते हैं, परन्तु अपनी उग्रतपस्या तथा त्यागवृत्ति और उपासनाके बलसे एक जन्ममें ही समाधिने ऐसी उच्चगतिकी प्राप्ति की, जो देवताओंको भी दुर्लभ है और वर्णगुरु ब्राह्मणके लिये भी सुलभ नहीं है, क्योंकि, आत्मज्ञानका अधिकारी ब्राह्मण चतुर्थ आश्रम अवलम्बन कर अन्तमें मुक्त होता है। पूर्वजन्मार्जित जाति, आयु और भोगकी प्राप्तिके द्वारा मनुष्य चाहे किसी वर्णमें जन्म ग्रहण करे, परन्तु कर्म और उपासना, तपस्या और ज्ञानार्जन आदिके द्वारा वह जन्मान्तरमें जैसा चाहे वैसे ही उन्नत अधि-कारोंको प्राप्त कर सकता है। विशेषतः भक्ति और

वैश्यवर्य ! त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ॥२३॥
तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥ २४ ॥
मार्कण्डेय उवाच ॥ २५ ॥
इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ॥ २६ ॥
बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ॥ २७ ॥

हे वैश्यवर्य ! (वैश्यश्रेष्ठ !) त्वया यः च वरः अस्मत्तः (ममसकाशात्) अभिवाञ्छितः, संसिद्ध्यै तं (वरं) प्रयच्छामि, तव ज्ञानं भविष्यति ॥ २३-२४ ॥

मार्कण्डेय उवाच, देवी तयोः (नृपवैश्ययोः) यथाभिलषितं इति वरं दत्त्वा सद्यः (तत्क्षणं) ताभ्यां भक्त्या अभिष्टुता (संस्तुता सती) अन्तर्हिता बभूव ॥२५-२७॥

हे वैश्यश्रेष्ठ ! तुमने मेरे निकट जिस वरकी प्रार्थना की है, सो मैंने प्रदान किया; तुमको आत्मज्ञान प्राप्त होगा ॥ २३-२४ ॥

मार्कण्डेय बोले,—इस प्रकारसे उन दोनोंको यथाभिलषित वर प्रदान कर एवं उनके द्वारा भक्तिपूर्वक स्तुता हो देवी तत्क्षणात् अन्तर्हित होगयीं ॥ २५-२७ ॥

उपासनाकी अलौकिक महाशक्तिका आश्रय लेनेसे किसीको भी निराश होनेकी सम्भावना नहीं रहती है। यही वेद और शास्त्रका सिद्धान्त है ॥ १८-२४ ॥

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥ २८ ॥
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥ २९ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
सुरथवैश्ययोर्वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

यदक्षरं परिभ्रष्टं मात्राहीनञ्च यद्भवेत् ।
पूर्णं भवतु तत्सर्वं त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥ १ ॥
यदत्र पाठे जगदम्बिके ! मया विसर्गविन्द्वक्षरहीनमीरितम् ।
तदस्तु सम्पूर्णतमं प्रसादतः सङ्कल्पसिद्धिस्तु सदैव जायताम् २
प्रसीद भगवत्यम्ब ! प्रसीद भक्तवत्सले !
प्रसादं कुरु मे देवि ! दुर्गे देवि ! नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥
यस्यार्थं पठितं स्तोत्रं तवेदं शङ्करप्रिये ! ।
तस्य देहस्य गेहस्य शान्तिर्भवतु सर्वदा ॥ ४ ॥

एवं (उक्तप्रकारेण) क्षत्रियर्षभः (क्षत्रियश्रेष्ठः) सुरथः देव्याः (देवीसकाशात्) वरं लब्ध्वा सूर्य्यात् जन्म समासाद्य (प्राप्य) सावर्णिः मनुः भविता (भविष्यति) ॥ २८-२९ ॥

इस प्रकार क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ राजा सुरथ देवीके द्वारा वर प्राप्त करके सूर्य्यसे जन्म लेकर सावर्णि नामक मनु होंगे ॥ २८-२९ ॥

इति श्री सप्तशती गीताके मूल, अन्वय, मन्त्रार्थ तथा
मातृमहिमाप्रकाशिनी नाम्नी टीका समाप्त ।

श्री जगन्मात्रे नमः

वाणी पुस्तकमालाद्वारा प्रकाशित

अनुपम धार्मिक पुस्तकें।

१—ईशोपनिषद् ॥)
२—केनोपनिषद् ॥)
३—कठोपनिषद् २)

उपनिषदोंकी दुरूहता किसीसे छिपी नहीं है। इनके गूढ़ रहस्योंका जैसा उद्घाटन श्रीमत् शंकरप्रभुने अपने भाष्योंमें किया है, वह अनुपमेय है । परन्तु वह भाष्य संस्कृतमें होनेके कारण केवल हिन्दी जाननेवाले लोगोंको उसका ज्ञान प्राप्त करना सर्वथा कठिन था । अतः सरल और सुगम बनानेके विचारसे उपनिषदोंकी ये टीकाएँ प्रस्तुत की गयी हैं। इसमें मूल फिर उसके बाद अन्वय, मन्त्रार्थ, शंकर-भाष्य तथा भाष्यका हिन्दी अनुवाद और तत्पश्चात् 'उपनिषद् सुबोधिनी' नामक सुन्दर और सरल टीकाद्वारा उनके भावोंको जन-साधारणके समझनेके उपयोगी बना दिया गया है एवं अस्पष्ट स्थलोंको सुस्पष्ट और सुबोध बना दिया गया है। यह टीका सर्वथा वैज्ञानिक और समस्त भारतीय भाषाओंमें अपने ढंगकी अनोखी हुई है। धर्ममें श्रद्धा रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको इन महिमामय ग्रन्थोंका अवश्य अवलोकन करना चाहिये ।

सप्तशती गीता (दुर्गा)

यों तो इसके अनेक संस्करण अनेक स्थानोंसे प्रकाशित हुए

आपको दिखायी पड़े होंगे, किन्तु यह संस्करण जो 'वाणी-पुस्तकमाला' द्वारा प्रकाशित हुआ है, सचमुच अद्वितीय है। मूल और फिर अन्वय तथा इसके बाद उसका सरल और सुन्दर हिन्दी भाषामें अनुवाद करके इसका जैसा सौन्दर्य्य बढ़ाया गया है वह तो है ही, साथ ही यह एक ऐसी टीकाके संयुक्त है, कि पढ़ने या पाठ करनेसे माँ दुर्गाका आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक रहस्य अनायास समझमें आ जाता है। हर प्रकारकी आशङ्काओंको इस ग्रन्थका पाठ विनष्ट कर देनेवाला है। किसी भी भाषामें अबतक दुर्गा सप्तशतीका ऐसा प्रकाशन आपको उपलब्ध नहीं हुआ होगा। दुर्गा-पाठ करनेवाले प्रत्येक विद्वान्, पण्डित और हिन्दू सद्गृहस्थको यह ग्रन्थ अपने घरमें रखकर लाभ उठाना चाहिये। अजिल्द १) सजिल्द १।)

सती सदाचार ॥)

दाम्पत्य जीवनको सुन्दर और सरस बनानेवाली यह आदर्श पुस्तक है। अधिक कहना व्यर्थ है। इस पुस्तकको आप स्वयं पढ़ें, अपनी गृहिणीको पढ़ावें, बालक और बालिकाओंको दें। किसी भी प्रकारका संकोच नहीं। इसके अध्ययनके द्वारा गार्हस्थ्यधर्ममें सुख और सौन्दर्य्यकी वृद्धि होगी और जीवन सुनहला हो चमकने लगेगा। मूल्य ऊपर लिखा हुआ, केवल लागत मात्र।

धर्मतत्त्व ।॥)

धर्माधर्मसम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक हिन्दूका अवश्य कर्तव्य है। इस ग्रंथ में धर्म तथा उसके अङ्गोपाङ्गपर संक्षेपसे बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है। अतः प्रत्येक गृहस्थके लिये यह बड़ा उपयोगी ग्रन्थ है। ऐसे स्कूल और कालेज तथा पाठशालाएँ, जिनमें धार्मिक

शिक्षा देनेका नियम है, इस धर्मग्रन्थसे काफी लाभ उठा सकते हैं। स्त्रीपुरुष, बालक-बालिकाओं यानी सभी वर्गके लोगोंके लिये यह समान हितकारी है। धर्म-ज्ञानकी ज्योतिको घर-घरमें जगानेके लिये यह सर्वाङ्ग सुन्दर एवं उपयोगी ग्रन्थ है।

भारत धर्म समन्वय ॥।)

सनातनधर्म पृथिवीके सब धर्ममार्गोंका कितना सुहृद् है, किस प्रकार वह किसी भी धर्मका विरोधी नहीं है, उसके सिद्धान्त किस रूपमें और धर्मोंके सहायक हैं, इसका यदि ज्ञान करना हो तो इस पुस्तकको अवश्य पढ़ें। परधर्म विद्वेष दूर करने तथा सनातनधर्मके उदार स्वरूपको सबके सामने रखनेके लिये एक पूज्य महात्माके द्वारा इस पुस्तककी रचना हुई है। इसमें धर्मका सार्वभौम रूप, धर्मकी दार्शनिक व्याख्या, साधारण धर्म, विशेषधर्म-समन्वय आदि स्तम्भोंको पढ़कर आपका हृदय सनातनधर्मकी महत्तापर मुग्ध हो जायगा। सभी श्रेणीके धर्म-प्रेमी विद्वानों और विद्यार्थियोंके लिये भी यह ग्रन्थ परम उपयोगी सिद्ध होगा।

परलोक तत्त्व ॥)

परलोक एक ऐसा स्थान है, जहाँ मृत्युके बाद सभीका पहुँचना अनिवार्य्य है। ऐसे स्थानकी रहस्यमयी बातोंको जाननेके लिये किसके हृदयमें कौतूहल उत्पन्न नहीं होता। किन्तु अबतक कोई ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ था, जो इस विषयपर पूर्ण प्रकाश डालता। इस पुस्तकके द्वारा यह कमी दूर हो गयी। थोड़ा भी हिन्दी पढ़ा-लिखा मनुष्य इस पुस्तकके द्वारा उस आश्चर्य्यमय लोककी बातों-को समझ अपनी चिन्ता मिटा सकता है।

आचार चन्द्रिका ॥)

यह पुस्तक ब्रह्मीभूत श्री १०८ श्रीस्वामी दयानन्दजी द्वारा प्रणीत है। धर्महीन पाश्चात्य शिक्षाके विषमय फलके कारण 'आर्य्य-जीवन' में प्राचीन आदर्शोंका लोप-सा दिखायी पड़ता है। कोई भी बालक या बालिका धर्म-शिक्षाके अभावके कारण अपना जीवन आर्य-आदर्शके अनुकूल बनानेमें समर्थ नहीं है। अतः सदाचार-प्रतिपालन, ईश्वरभक्ति, गुरुजन-श्रद्धा, मातृ-पितृ-भक्ति, सच्चरित्रता, आस्तिकता, परार्थपरता एवं ज्ञानार्जनस्पृहा उत्पन्न करनेकी दृष्टिसे इस पुस्तककी रचना हुई है। पुस्तक अतीव उपयोगी है। बालक और बालिकाओंके अतिरिक्त सयाने लोगोंको भी यह पुस्तक मार्ग-प्रदर्शकका काम देनेवाली है।

धर्म-प्रवेशिका ।)

सर्वसाधारणमें धर्मका प्रारम्भिक ज्ञान करानेवाली ऐसी कोई दूसरी पुस्तक नहीं। इसमें धर्मका स्वरूप, पुण्य और पाप, धर्मके अङ्ग और उपाङ्ग, वेद और शास्त्र, इहलोक और परलोक, ईश्वर, देवता और अवतार, उपासना और पूजा, गृहस्थके कर्त्तव्य आदि शीर्षक देकर छोटे-छोटे निबन्धरूपमें धर्मके प्रत्येक अङ्गपर सरल हिन्दी भाषामें ऐसा प्रकाश डाला गया है, कि एक बालक भी इसे पढ़कर हिन्दूधर्मका अच्छा ज्ञाता बन सकता है। अधिक कहना व्यर्थ है, पुस्तक देखनेसे ही प्रकट होगा।

व्रतोत्सव कौमुदी ।=)

ऐसा कौन हिन्दू होगा, जिसके घरकी महिलाएँ तथा बालिकाएँ व्रत करनेकी अभिलाषा नहीं रखती हैं। वे परम्परागत व्यवहारा-

नुसार व्रत तो करती हैं किन्तु अधिकांशको इस बातका पता ही नहीं रहता कि किस व्रतके करनेकी क्या विधि है, उसे क्यों किया जाता है, उसके करनेसे क्या लाभ होता है, आदि आदि। इस अनभिज्ञताके कारण व्रतके नियमोंके यथाविधि पालनमें त्रुटि रहती ही है। इस पुस्तकमें हिन्दू घरोंमें होने वाले प्रायः सभी व्रतोंकी विधियाँ उसके माने जानेके कारण आदिपर भलीभाँति प्रकाश डाला गया है। घर-घरमें इसका प्रचार हो, इसलिये मूल्य केवल लागत मात्र ही रखा गया है।

पूजा और प्रार्थना =)॥

इस पुस्तकमें गणेश, विष्णु, दुर्गा, काली आदि अनेक देव और देवियोंकी प्रार्थना और पूजाकी पद्धतिपर स्पष्ट प्रकाश डाला गया है। इसकी उत्तमताके विषयमें कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। पुस्तक प्रत्येक हिन्दू गृहस्थमात्र तथा विद्यार्थियोंके कण्ठ करने योग्य है।

वेदान्त दर्शन ।=)

महर्षि वेदव्यासका यह संसार-प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसका अध्ययन जिसने नहीं किया वह दयनीय हिन्दू है। इसके सुप्रसिद्ध और सार-भूत चतुःसूत्रीका ऐसा सरल और सुगम भाष्य, वह भी शंकर-भाष्यके अनुकूल हिन्दीमें कहीं प्रकाशित नहीं हुआ होगा। हमारा सबसे अनुरोध है, कि वे एक-एक पुस्तक अवश्य खरीदें।

मार्कण्डेय पुराण

यह पुस्तक आर्य्य महिला पुराणमालाद्वारा प्रकाशित है। यह भी महर्षि वेदव्यासका संसारप्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसका प्रथम खण्ड, द्वितीय

खण्ड और तृतीय खण्ड हिन्दीमें छापा गया है। भाषा बड़ी सरल और सुन्दर है। टीका भी अत्युत्तम कोटिकी है। मूल्य प्रति खण्ड १)

धर्म विज्ञान

सनातन धर्मके विविध अङ्गोंपर दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विवेचनका यदि ज्ञान प्राप्त करना हो तो इस पुस्तकको अवश्य खरीदें। धर्म सम्बन्धी कोई भी बात जो मनुष्य जीवनमें सम्बन्ध रखने वाली है, इसमें छूटने नहीं पायी है। संक्षेपमें गागरमें सागर भर दिया गया है, इतना ही कहना पर्य्याप्त है। इसका दूसरा भाग भी छप कर तैयार हो रहा है। प्रथम खण्ड जो लगभग ४०० पृष्ठके है मूल्य २) रुपया।

भारतवर्षका इतिवृत्त ।)

प्राचीन भारतका यह अपूर्व इतिहास है। इसमें ब्रह्माण्ड की सृष्टिसे लेकर महाभारत युद्धके पूर्व पर्य्यन्त प्राचीन भारतके सम्बन्धमें जानने योग्य सभी विषय शास्त्र और युक्तिसे प्रतिपादित किये गये हैं। वर्त्तमान हिन्दी साहित्य और आधुनिक ऐतिहासिक गवेषणशैलीमें यह ग्रन्थ युगान्तर उत्पन्न करनेवाला है। अवश्य एकबार पढ़ें।

कन्या शिक्षा सोपान -)

कोमलमति कन्याओंको धर्मशिक्षा देनेके लिये यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। इस पुस्तककी बहुत कुछ प्रशंसा हुई है। हिन्दूमात्रको अपनी-अपनी कन्याओंको धर्म-शिक्षा देनेके लिये यह पुस्तक अवश्य खरीदनी चाहिये।

कुमारिलभट्ट नाटक ॥)

यह हिन्दीमें बिल्कुल नवीन शैलीका नाटक है। इसमें बौद्ध

धर्माचार्योंका कर्मकाण्डकी ओटमें किये गये अत्याचारोंका वर्णन और महात्मा कुमारिलभट्टद्वारा वैदिक धर्मको प्रतिष्ठाका मार्मिक चित्र अङ्कित किया गया है। वर्णन-शैली और भाषा अति सुन्दर है।

महिला प्रश्नोत्तरी -)

इस पुस्तकमें प्रश्नोत्तर रूपसे महिलाओंके जाननेयोग्य सनातन धर्मके अनेक गूढ़ विषय जैसे धर्म, ईश्वर-उपासना-रहस्य, महिलोचित आचार-व्यवहार आदिका अत्यन्त सरल भाषामें वर्णन है। मूल्य सर्वसुलभ।

सदाचार प्रश्नोत्तरी -)॥

पाश्चात्य शिक्षाके फलसे उत्पन्न कदाचारों को देखकर सदाचार के विषयमें एक भक्तने शंकाएँ कीं, जिसका उत्तर श्रीभारतधर्म-महामंडलके प्रतिष्ठाता पूज्यपाद श्री १०८ श्रीस्वामीजी महाराजने दिया है। आचार सम्बन्धी प्रधान-प्रधान सभी बातोंका बड़े उत्तम ढंगसे शंका समाधान किया गया है। पुस्तक छोटी होती हुई भी बड़े कामकी है।

भारतकी देवियाँ

यह पुस्तक दो खण्डोंमें प्रकाशित है। इसमें प्रायः भारतकी जितनी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध देवियाँ हुई हैं, उनका जीवन चरित्र कथा-विस्तारके साथ है। बालिकाओं और महिलाओंको तो इसे अवश्य ही पढ़ना चाहिये। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह सर्वसाधारण जनके भी बड़े कामकी है। मूल्य प्रति खण्ड ॥।)

कर्म रहस्य

यह पुस्तक अभी हालही में प्रकाशित हुई है । कर्मसम्बन्धी बड़ा सुन्दर विवेचन है । इसमें कर्मका स्वरूप, कर्मसे सृष्टि, कर्मके भेद, कर्मका संग्रह, कर्मका परिणाम, कर्मसे धर्म कर्मसे अधर्म, कर्मसे जाति, कर्मसे आयु, कर्मसे भोग, कर्मसे प्रकृति, कर्मसे प्रवृत्ति, कर्मसे संस्कार, कर्मसे शक्ति, कर्मसे काल, आदि शीर्षक देकर एक पूज्य महात्मा द्वारा अनेक निबन्ध लिखे गये हैं । यह जीवन कर्ममय है या यह कहिये कि कर्महीसे जीवन है; अतः जीवन-प्राण कर्म सम्बन्धी सभी बातें मनुष्यमात्रको ही जाननी चाहिये । इस पुस्तकमें कर्मके विषयकी सभी बातोंपर पूर्ण प्रकाश डाला गया है और इसके अध्ययनके द्वारा जीवन बहुत कुछ सफल बनाया जा सकता है । मूल्य लागतमात्र ॥=)

कुछ अन्य

श्रीव्यास शुक सम्वाद ... ... ।)

परलोक प्रश्नोत्तरी ... ... ―)

तीर्थ देव पूजन रहस्य ... ... ―)

सरल साधन प्रश्नोत्तरी ... ... ―)

पुस्तकोंके मिलनेका पता—

मैनेजर—'वाणी पुस्तक माला'

'आर्य महिला कार्यालय'

जगत गंज, बनारस कैंट ।

श्री आर्य्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्

प्रधान कार्य्यालय, जगतगञ्ज, बनारस कैंट।

यह अखिलभारतवर्षीय संस्था सनातनी आर्य्यजातिके मंगलार्थ और विशेषतया आर्य्यमहिलाओंकी सब प्रकारकी उन्नति और रक्षाके अर्थ स्थापित हुई है। महापरिषद्के अनेक कार्य-विभागोंमें निम्न-लिखित कार्य-विभाग हैं।

(१) आर्य्यमहिला पत्रिका विभाग, (२) पुस्तक प्रकाशन विभाग, (३) आर्य्यमहिला महाविद्यालय विभाग, (४) अन्नसत्र विभाग, (५) धर्मसेविका विद्यापीठ विभाग।

महापरिषद्के साधारण मेम्बर होनेका चन्दा पाँच रुपया है। मेम्बरोंको महापरिषद्की मुखपत्रिका 'आर्य्यमहिला' बिना मूल्य ही दी जाती है। इसके अतिरिक्त महापरिषद् द्वारा प्रकाशित सभी पुस्तकें भी उन्हें कम मूल्यमें मिलती हैं। अतः इस संस्थाके सदस्य बननेसे अबला जातिकी रक्षा और शिक्षा तथा उन्नतिमें सहायक बननेका पुण्यलाभ तो होता ही है, साथ ही उनकी गृहदेवियों तथा बालक-बालिकाओंको भी सदाचारपरायण एवं धार्मिक बनानेके लिये सद्-साहित्यग्रन्थोंकी प्राप्ति सरल और सुगम हो जाती है। आर्य्य स्त्री और पुरुषमात्र सभीको इस पुण्यकार्य्यमें सम्मिलित होकर धर्म और यश प्राप्त करना चाहिये।

मंत्री—

श्री आर्य्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्

"आर्य्यमहिला"

सचित्र

(मासिक पत्रिका)

श्री आर्य्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्की यह मुखपत्रिका श्रीकाशी धामसे आज लगभग २५ वर्षोंसे प्रकाशित होकर महिला-संसारके उपकारमें संलग्न है। गार्हस्थ्यधर्मका सच्चा पाठ सिखाने-वाली, बालक और बालिकाओंको संयमशील, सदाचारी और नीतिज्ञ बनानेवाली यह एकमात्र पत्रिका है। यदि आप निश्चिन्ततापूर्वक अपने घरको स्वर्गोपम बनाना चाहते हैं, तो इस पत्रिकाको अवश्य अपने घरमें स्थान दें। प्रतिवर्ष इसका एक सुन्दर और सचित्र एवम् महदुपयोगी विशेषांक भी प्रकाशित होता है और ग्राहकोंको विना मूल्य दिया जाता है। नमूनेके लिये पत्र लिखें। वार्षिक चन्दा ५) विद्यार्थियों तथा सार्वजनिक संस्थाओंसे केवल ४)

मैनेजर—"आर्य्य महिला"
जगतगंज, बनारस कैंट।

धर्मसेविका विद्यापीठ

हिन्दू संस्कृति-रक्षाके लिये यह अपने ढंगकी अनोखी संस्था स्थापित हो चुकी है। इसका उद्देश्य धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्रमें सेवा करनेके लिये सुयोग्य स्त्री कार्य्यकर्त्रियोंको तैयार करना है। इसमें गवर्नमेंट संस्कृत कालेज काशीके शास्त्रीतक की पढ़ाई होगी। साथ ही अंग्रेजी, हिन्दी तथा शास्त्रीय विषयोंकी भी अच्छी शिक्षा दी जायगी। इसमें विशेषकर त्रिवर्णकी कम उम्रवाली विधवाएँ भर्त्ती की जायेंगी, जो अपना जीवन त्यागमय, सादा एवं पवित्र बिताना चाहती हैं और जो किसी भी प्रान्तीय भाषामें लोअर मिडल पास हों या उतनी योग्यता रखती हों। शिक्षाकाल सात वर्षका है। शिक्षा प्राप्त करते समय छात्राओंको १०) से १२) मासिक छात्रवृत्ति दी जायगी। शिक्षा समाप्तिपर आजीवन उनके भरण-पोषणका प्रवन्ध किया जायगा और उन्हें देशसेवा, धर्मसेवा तथा जातिसेवाके कार्योंमें लगाया जायगा।

इस विद्यापीठमें कन्यायें भी भर्त्ती की जायँगी, परन्तु उनका व्ययभार उनके अभिभावकोंके ही ऊपर रहेगा। योग्यता, जाति, उम्र एवं अभिभावकके नाम सहित प्रार्थना-पत्र नीचे लिखे पतेपर भेजना चाहिये।

संचालिका—

'आर्य्यमहिला' कार्य्यालय,

जगतगंज, बनारस कैंट।

सूर्योदय

अखिल भारतवर्षीय संस्कृत विश्वविद्यालयकी ओरसे निकलनेवाला संस्कृत-भाषाका एकमात्र सुप्रसिद्ध मासिक पत्र है। इसकी एक बड़ी भारी विशेषता यह है कि प्रत्येक तीसरे महीनेका एक अंक त्रैभाषिक संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दीमें विशेषांक रूपमें भी प्रकाशित होता है अर्थात् वर्षमें इसके चार विशेषांक प्राप्त होते हैं। इसकी लेख-प्रणाली अत्यन्त सरल है। भारतके सब प्रान्तोंमें इसका बहुत प्रचार है। डाइरेक्टर शिक्षाविभाग यू० पी० तथा बम्बईने इसे स्कूल और कालेजोंके लिये स्वीकृत किया है। जो लोग संस्कृतभाषाका पूर्ण अभ्यास करना चाहते हैं, उन्हें इससे बड़ी सहायता मिलेगी और समय समय पर इसमें प्रकाशित होनेवाले अपूर्व संस्कृत ग्रन्थ भी उनको अनायास प्राप्त होंगे। नमूनाके लिये आज ही पत्र लिखें। वार्षिक मूल्य ३) विद्यार्थियों तथा पुस्तकालयोंसे १)

मैनेजर—
'सूर्योदय'
महामण्डलभवन, जगतगंज, बनारस कैंट।

श्री भारतधर्म महामण्डल

अखिल भारतवर्षीय हिन्दू जातिकी विराट धर्मसभा श्रीभारतधर्म-महामण्डलद्वारा प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयके सहयोगी सभ्य (फेलो मेम्बर) जो बनते हैं, उनको केवल यही स्वीकार करना पड़ता है, कि अपने घरके बालक-बालिकाओंको बालपनसे ही धर्म-शिक्षा देवेंगे। ऐसे मेम्बरोंको ८-१० ऐसी पुस्तिकाएँ दी जाती हैं, जो बालक और बालिकाओंको प्रारम्भिक धर्म-शिक्षा देनेमें काम आवें। प्रत्येक हिन्दू गृहस्थको इस धार्मिक विश्वविद्यालयका सदस्य बनना उचित है।

हिन्दू जातिका सामाजिक संगठन

हिन्दू जातिके सामाजिक संगठन, धर्मोन्नति और ऐक्यके उद्देश्यसे श्रीमहामण्डलने जनरल मेम्बर होनेका बहुत सुगम उपाय निकाला है। प्रत्येक हिन्दू नर-नारीमात्र ही महामण्डलके सदस्य हो सकते हैं। प्रत्येक मेम्बरको एक खास फार्म भरकर भेजना होता है, अथवा पत्र-द्वारा सूचित करना होता है, कि वे जनरल मेम्बर होना चाहते हैं। जनरल मेम्बरोंको केवल १) साल चन्दा देना पड़ता है। उनको एक त्रैभाषिक और त्रैमासिक पत्र बिना मूल्य मिलता है। इस पत्रके द्वारा समाज संगठन और धर्मोन्नति तथा शिक्षाके विषयोंमें सदस्योंको सहायता मिलती है। सदस्योंको एक सदस्य-मानपत्र मिलता है तथा अन्यान्य सुविधाएँ भी प्राप्त होती हैं।

मंत्री—श्री भारतधर्म महामण्डल,

प्रधान कार्य्यालय, जगतगंज,

बनारस कैंट।

अवश्य पढ़िये

श्रीआर्य्य-महिला-महाविद्यालय, काशी।

सुप्राचीन कालसे काशी समग्र भारतकी विद्याका केन्द्र रही है और अब भी वह युक्तप्रान्तमें शिक्षाके क्षेत्रमें सभी नगरोंसे आगे बढ़ी हुई है। ऐसे पुनीत स्थानमें महिलाओंकी अध्यापनविद्या, धात्रविद्या, धर्मोपदेश एवं अन्य उपयोगी शिक्षा देनेवाले एक भी विद्यालयका न होना हमारा एक महान् राष्ट्रीय अभाव था। इसी अभावकी पूर्तिके उद्देश्यसे एक दाताके द्वारा ट्रस्ट बनाकर दान किये हुये विशाल भवनमें इस आर्य्यमहिला महाविद्यालयका कार्य आरम्भ किया गया है। इसका सम्पूर्ण प्रबन्ध प्रतिष्ठित महिलाओंके द्वारा ही होता है। इस समय इस विद्यालयके दो विभाग रक्खे गये हैं—एक हाई-स्कूल यानी इन्ट्रेंस तक और दूसरा नार्मल-स्कूल। प्रत्येक विभागमें पाठ्यक्रमके साथ-साथ धर्म और स्त्री-उपयोगी कलाओंकी शिक्षा पूर्णरूपसे दी जाती है। इस विद्यालय द्वारा धर्मप्रचारिकायें, स्वदेशसेविकायें और उपदेशिकायें भी तैयार की जा रही हैं। ग़रीब तथा योग्य छात्राओंकी छात्रीसहायक फण्डसे यथाशक्ति सहायता की जाती है। शहरमें रहनेवाली लड़कियोंको घरसे लानेके लिये लारीका प्रबन्ध किया गया है। लड़कियोंके लिये बोर्डिङ्ग याने छात्रावासमें रहनेका भी प्रबन्ध किया गया है। गरीब लड़कियोंके लिये या जो छात्रायें स्वदेश एवं स्वधर्म-सेवाका व्रत लेंगी, उनके भोजन एवं वास-स्थानका प्रबन्ध विद्यालयकी ओरसे क दिया जायगा। जनतासे प्रार्थना है कि वह इस अपूर्व अवसरसे लाभ उठावें।

सेक्रेटरी—आर्य्यमहिला महाविद्यालय,

पशाचमोचन, बनारस सिटी।